# रीतिकालीन चरितकाव्यों में इतिहास

**(Reetikalin Charitkavyon Mein Itihas)**

**History in the Charitkavya of the Reeti Age**

पीएच. डी. (हिन्दी) की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध–प्रबंध


शोध–निर्देशक

**प्रो. देवेन्द्र कुमार चौबे**

शोधार्थी

**स्तुतिराय**



भारतीय भाषा केन्द्र

भाषा, साहित्य और संस्कृति अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली–110067


2018

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
भारतीय भाषा केन्द्र
Centre of Indian Languages
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
School of Language, Literature & Culture Studies
नई दिल्ली –110067, भारत New Delhi - 110067, India.

Date: 23/07/2018

## DECLARATION

I hereby declare that the research work done in this Ph.D. thesis entitled **"Reetikalin Charitkavyon Mein Itihas" (History in the Charitkavya of the Reeti Age)** by me is the original research work and it has not been previously submitted for any other degree in this or any other University/Institution.

Stuti Rai

**STUTI RAI**
(Research Scholar)

23/7/18

**PROF. DEVENDRA KUMAR CHOUBEY**
(Supervisor)
CIL/SLL&CS/JNU

**PROF. GOBIND PRASAD**
(Chairperson)
CIL/SLL&CS/JNU

GRAM: JAYENU, Tel: (91 – 011) 26741557, 26742676 Ext.: 4217, (D) 26704217; Telefax: (91-011) 26704217, Email: chair_cil@mail.jnu.ac.in, jnucil@gmail.com

# विषय सूची


| | | |
|---|---|---|
| **भूमिका** | | **i- xii** |
| **प्रथम अध्याय :** | साहित्य और इतिहास : इतिहास का अर्थ, इतिहास लेखन एवं हिन्दी साहित्य | **1-37** |
| **द्वितीय अध्याय :** | केशवदास की रचनाओं में इतिहास : मुगल एवं ओरछा राज्य के परिप्रेक्ष्य में | **38-74** |
| **तृतीय अध्याय :** | भूषण और लाल कवि की रचनाओं में इतिहास : औरंगजेब, शिवाजी और छत्रसाल के विशेष सन्दर्भ में | **75-138** |
| **चतुर्थ अध्याय :** | श्रीधर एवं सूदन की रचनाओं में इतिहास : मुगल शासन में उत्तराधिकार की समस्या तथा क्षेत्रीय शक्तियों का प्रभुत्व | **139-191** |
| **पंचम अध्याय** | पद्माकर की रचनाओं में इतिहास : मुगल साम्राज्य का पतन और अंग्रेजों के आने की आहट | **192-222** |
| **उपसंहार** | | **223-232** |
| **प्राथमिक ग्रंथ सूची** | | **233** |
| **सहायक ग्रंथ सूची** | | **234-239** |
| **मानचित्र** | | |

# भूमिका

रीतिकालीन कविता का समय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सम्वत् 1700 से 1900 (1643 ई0 से 1843 ई0) तक माना है। भारत में राजनैतिक इतिहास की दृष्टि से यह समय मुगल साम्राज्य के समय से जुड़ा है। 1526 ई0 में मुगल साम्राज्य की स्थापना हो चुकी थी और 1700 ई0 तक आते–आते मुगल साम्राज्य अपने पतन की तरफ अग्रसर हो चला था। 15वीं शती का समय भारत में हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल काल का उत्तरार्द्ध समय था जो रीतिकाल की पूर्ववर्ती काव्यधारा थी। भक्तिकालीन कविता में तत्कालीन भारत की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक स्थितियां अभिव्यक्त हुई हैं। वह कविता भारत में मुस्लिम आगमन और उसकी स्थापना को प्रतिबिम्बित करती है। इस समय भारत में हिन्दू–मुस्लिम संस्कृतियों के संक्रमण का दौर हमें देखने को मिलता है। भारतीय इतिहास में पहली बार सत्ता के केन्द्र में मुस्लिम शासन लागू हुआ था। 1600 ई0 तक आते आते एक केन्द्रीकृत सत्ता की भारत में स्थापना हो चुकी थी और भारत के अधिकांश राजे–रजवाड़े मुगल साम्राज्य का अंग बन चुके थे। एक ओर जहाँ भक्तिकालीन कवियों में शासन और सत्ता के प्रति निरपेक्ष भाव दिखता है। वहीं रीतिकाल में परिस्थितियां भिन्न थीं। रीतिकाल के अधिकांश कवि राज्याश्रयों में रहते थे। सत्ता से उनका सीधा सम्बंध था। राज्याश्रय में रहने के कारण वो सीधे–सीधे भारत की राजनीतिक परिस्थितियों से जुड़े हुए थे और जो भी उसमें बदलाव आते थे उससे उनका सीधा सरोकार था। रीतिकालीन कविता पर बहुधा यह आरोप लगाया जाता है कि बाहर के जीवन जगत से इन कवियों का कोई सरोकार नहीं रहता था और वे राजाओं के चरितगान और नायिकाभेद में डूबे हुए थे। इस तरह का आरोप स्वयं हिन्दी के बड़े–बड़े आचार्यों ने लगाये हैं। अगर इस बात में सच्चाई भी है तो भी हमें एक बार इस युग पर नजर डाल लेनी चाहिए कि इस बात में कितनी सच्चाई है। कहीं ऐसा तो नहीं कि हम एक मान्य अवधारणा के आधार पर सम्पूर्ण रीतिकालीन साहित्य कि अनदेखी कर रहे हैं। पूरी रीतिकालीन कविता को दरबारी, नायिकाभेद या व्याकरण

शिक्षा से सम्बन्धित कविता मानकर उसे केवल वहीं तक सीमित कर दिया गया है। उस युग में ऐतिहासिक रचनाओं की एक समृद्ध परंपरा रही है। हम उन ऐतिहासिक रचनाओं पर दृष्टिपात करते हैं तो पाते हैं कि वह भी उतनी ही महत्वपूर्ण हैं जितनी कि अन्य रचनाएं।

रीतिकाल के जन्म के समय से ही इन कृतियों का प्रणयन शुरु हो चुका था। केशवदास (1600 ई0) से लेकर जोधराज (1828 ई0) तक ये ऐतिहासिक कृतियां अपने समय के तत्कालीन इतिहास से सीधे टकराती हैं। रीतिकाल की समय सीमा में भगवानदास तिवारी ने अपनी पुस्तक में 211 कवियों एवं उसकी रचनाओं का वर्णन किया है। इससे पता चलता है कि एक बड़ी संख्या में ऐतिहासिक रचनाएं इस युग में रची गयी। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इन पर कार्य करने की आवश्यकता इसलिए भी है क्योंकि ये रचनाएं अकबर से लेकर मुगल साम्राज्य के पतन तक के राजनैतिक परिदृश्यों को अपने भीतर समेटती हैं। अतः तत्कालीन इतिहास के सन्दर्भ में इसे रखकर देखने से मुगलकाल के इतिहास में नए तथ्यों के आधार पर उस काल का एक नया इतिहास सामने आ सकता है।

भारतीय मनीषा में इतिहास को लेकर हमेशा से एक अलग दृष्टिकोण रहा है। यह दृष्टिकोण उसके जीवन जगत से अपने विशिष्ट लगाव के कारण निर्मित हुआ है। यूरोपीय संस्कृति से अलग संस्कृति का अपना यह अलग दृष्टिकोण वर्तमान समय में अपने लिए अलग मूल्यांकन की अपेक्षा रखता है। जब आधुनिक भारत में पश्चिमी दृष्टिकोण से इतिहास की भारतीय अवधारणा को परखा गया तो पश्चिमी विद्वानों द्वारा यह आरोप लगाया गया कि भारत में इतिहास लेखन की कोई परम्परा नहीं थी लेकिन यह सत्य नहीं था। बाद के विद्वानों ने संस्कृत वाङ्मय का विश्लेषण करके उनकी ऐतिहासिकता को पुष्ट करने की कोशिश की। वस्तुतः प्राचीन समय में साहित्य ने ही इतिहास को स्वयं में समेट कर उसे दर्शाया। वेदों में भी ऐतिहासिक सूत्र खोजे गए। आज इस बात को अधिकांश विद्वान स्वीकार करते हैं कि विभिन्न काल खण्डों में लिखे गए पुराण अपने इतिहास का प्रकटीकरण करते हैं। इन पुराणों के अलावा महाकवि कालिदास, भवभूति, भारवि एवं

बाणभट्ट जैसे कवियों ने भी अपनी रचनाओं में अपने समय के सूत्र छोड़े हैं। आज इतिहास में यह माना जाता है कि केवल तथ्यों पर आधारित इतिहास ही इतिहास नहीं होता। साहित्य में जो समाज चित्रित होता है वह कल्पना से गढ़ा हुआ भले हो लेकिन अपने काल से निरपेक्ष भी नहीं होता। उसमें आये हुए समाज में उसके युग की स्पष्ट छाप होती है। इसलिए जिस युग को इतिहास रहित माना जा रहा है उसके इतिहास को उस युग के साहित्य के माध्यम से उसे पहचानने की दृष्टि विकसित करने की आवश्यकता है।

अभी तक जिस ऐतिहासिकता की चर्चा ऐतिहासिक ग्रंथों के रूप में की जा रही थी उसमें यह बात महत्व की है कि इनमें से अधिकांश ग्रंथ साहित्यिक कृतियों के रूप में प्रतिष्ठित हैं। रामायण, महाभारत जैसे पुरावृत्त, कालिदास की रचनाएं, बुद्धचरित, हर्षचरित, विक्रमोभ्युदय, पृथ्वीराज विजय, पृथ्वीराज रासो ये सभी रचनाएं साहित्यिक ग्रंथ हैं। इस तरह हम देखते हैं कि इतिहास साहित्य की परंपरा से जुड़ा उसके एक अंग के रूप में आया है।

यहां तक संस्कृत, पालि, प्राकृत साहित्य में आये ऐतिहासिक साक्ष्यों पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट होता है कि भारत में प्राचीन काल में साहित्य और इतिहास परस्पर गुंथे हुए थे। ये कवि थे और इनकी इतिहासदृष्टि वर्तमान काल की इतिहासदृष्टि से अलग थी। अपनी पूर्ववर्ती परंपरा के अनुसार हिन्दी कवियों ने भी अपनी इतिहासदृष्टि का निर्माण किया। प्राचीन भारत की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थितियों के अनुशीलन के लिए प्राचीन साहित्य का अनुशीलन करने का प्रयास हुआ है। प्राचीन साहित्यिक स्त्रोतों से भारतीय इतिहास को खोज निकालने का सराहनीय प्रयास पश्चिम के कुछ विद्वानों ने किया है। पार्जिटर, पुसालकर, एवं हाजरा जैसे विद्वानों ने इन स्त्रोतों से ऐतिहासिक तथ्यों को खोज निकालने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की है।

सन् 1000 के बाद से हिन्दी साहित्य का इतिहास मिलना शुरू हो जाता है। हिन्दी साहित्य में प्रभूत मात्रा में ऐसी कविता मिलती है जिसका सीधा सम्बंध इतिहास से है। मुस्लिम सत्ता की स्थापना के बाद भारत की तत्कालीन छोटी–छोटी राजनैतिक शक्तियां केन्द्रीय सत्ता से

संघर्ष करती रहीं इन्हीं राजदरबारों में खासकर राजपूत राजाओं ने अपने दरबार में चारण कवियों को जगह दी। ये चारण कवि अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में गीत गाते थे तथा वीरता का वर्णन बढ़ा–चढ़ा कर किया करते थे। उस युग में कविता की यह एक प्रमुख प्रवृत्ति थी। इसी को देखकर हिन्दी साहित्य के प्रमुख इतिहासकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस युग को वीरगाथाकाल नाम दिया।

आदिकाल से ही हिन्दी साहित्य में कविता और इतिहास का जुड़ाव मिलता है। इस काल में दलपति विजय की खुम्माण रासो, नरपति नाल्ह की बीसलदेव रासो, चन्द बरदाई की पृथ्वीराज रासो, भट्टकेदार की जयचंद्र प्रकाश, मधुकर कवि की जयमयंक जसचन्द्रिका, जगनिक का परमाल रासो एवं श्रीधर का रणमल्लछंद है। एतिहासिक दृष्टि से इनमें कई कमियां मिलती हैं, तथ्यों तथा दिनांकों में गड़बड़ी है इस वजह से इतिहासकार इन्हें ऐतिहासिक रूप में स्वीकार करते हुए हिचकिचाते हैं। इसका सबसे बड़ा उदाहरण चन्दबरदाई का पृथ्वीराज रासो है। इस ग्रंथ की ऐतिहासिकता की छानबीन करते हुए शुक्लजी ने इसे जाली ग्रंथ ठहराया है। किन्तु कुछ ऐतिहासिक साक्ष्यों के पुष्ट न होने के बावजूद उसमें  आए हुए नाम एवं अन्य सन्दर्भ सत्य हैं। साहित्यिक स्त्रोतों से ऐतिहासिक साक्ष्य प्राप्त कर उसकी विवेचना करना एक इतिहासकार का काम है न कि उसके कुछ गलत तथ्यों के आधार पर उसे अनैतिहासिक करार देना। राजपूताने के साहित्यिक स्त्रोतों की मदद से कर्नल टॉड ने राजपूताने का इतिहास लिखा है।

भक्तिकालीन कविता का महत्व इस विषय में निर्विवाद है कि उसका सम्बंध अपने समय के महान भक्ति आंदोलन से था। चारण कवियों का प्रशस्तिगान भक्तिकालीन कविता में मद्धम पड़ गया। यह कविता आम जनता की आवाज बनकर मुखर हुई। तत्कालीन निरंकुश राजनीतिक सत्ता के साथ उसका सम्बंध सदैव निरपेक्ष भाव का रहा तभी कुंभन दास जैसे कवि को कहना पड़ा–

"संतन को कहा सीकरी सों काम

आवत जात पनहिया टूटी बिसरि गयो हरि नाम"

इस युग के कवि को किसी सम्राट के समक्ष अपनी राजभक्ति दिखाने की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि ये पहले भक्त और संत थे, कवि बाद में थे। इन्हें सांसारिक भौतिक वस्तुओं और सम्मान की कोई चाहत नहीं थी। अगर इन कवियों ने किसी की प्रशस्ति गाई भी तो वो थी ईश्वर की राजसत्ता की। तुलसीदास का रामचरित मानस इस तरह का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। इस युग में ऐतिहासिक वृत्त को लेकर लिखी गई महत्वपूर्ण कृति है मलिक मुहम्मद जायसी की पद्मावत। पद्मावत का रचनाकाल 1540 ई0 माना जाता है। उस समय दिल्ली की गद्दी पर शेरशाह सूरी था। लेकिन जायसी अपने समय से पूर्व की कथा को लेकर चलते हैं। वह रत्नसेन, पद्मावती एवं अल्लाउद्दीन की कथा को अपना आधार बनाते हैं।

रीतिकालीन कविता में बड़ी संख्या में ऐसा काव्य रचा गया है जिसका सम्बंध तत्कालीन राजसत्ता से है। इसमें तत्कालीन इतिहास की झलक हमें प्राप्त होती है लेकिन भारतीय इतिहासकारों ने इस ऐतिहासिक साक्ष्य को अनदेखा किया है जिसकी वजह से यह प्रचुर सामग्री उपेक्षित पड़ी है। तत्कालीन ऐतिहासिक रचनाओं को ये इतिहासकार संदिग्ध मानते हैं। उनका मानना है कि इनमें घटनाओं को बढ़ा चढ़ाकर दिखाया गया है तथा अतिशयोक्ति अधिक है। केवल सतीश चन्द्र तथा हरबंश मुखिया जैसे कुछ आधुनिक इतिहासकारों ने कुछ ऐतिहासिक काव्यों का इतिहास के सन्दर्भ में प्रयोग किया है। केशव, भूषण, गोरेलाल, श्रीधर तथा पद्माकर जैसे कवियों की ऐतिहासिक रचनाओं का विश्लेषण इतिहासकारों द्वारा नहीं किया गया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में भी सम्पूर्ण रीतिकालीन कविता को दरबारी तथा घोर श्रृंगारिक कहकर उसका मूल्यांकन उसी तरह से किया गया तथा ऐतिहासिक वृत्तों को आश्रयदाता की प्रशंसा कहकर उसका ऐतिहासिक प्ररिप्रेक्ष्य में गंभीर विवेचन करने का प्रयास करने की आवश्यकता नहीं समझी गयी।

रीतिकालीन कविता का अध्ययन तत्कालीन इतिहास के संदर्भ में करना कई नये तथ्यों को सामने ला सकता है इस युग की किन परिस्थितियों में ऐसी कविताओं की रचना संभव हुई इसकी पृष्ठभूमि की जांच से यह साफ हो जाता है किसी भी समय का साहित्य अपने युग

से निरपेक्ष नहीं हो सकता। वह युगीन परिस्थितियों व संदर्भों से प्रेरित होकर ही रूप तथा आकार ग्रहण करता है। तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक परिस्थितियां उसे बहुत दूर तक प्रभावित करती हैं। रीतिकालीन कविता और तत्कालीन इतिहास का परस्पर कैसा अन्तर्सबन्ध विकसित हुआ है? क्या केशव, भूषण, गोरेलाल, सूदन, तथा पद्माकर जैसे कवियों में राजनीतिक परिदृश्य किस तरह से आया है? राजनीतिक सत्ता से सम्बन्ध रखते हुए कवियों ने सृजनशीलता को महत्व दिया है अथवा ऐतिहासिक कर्म को महत्वपूर्ण माना है। तथ्यों के प्रकटीकरण में इन्होंने कितनी वस्तुनिष्ठता बरती है या कहीं निरंकुश सत्ता ने उन्हें प्रभावित तो नहीं किया? इस युग की अधिकांश कविता क्षेत्रीय शक्तियों से सम्बन्धित है। केशव जहांगीर के दरबार में जाने से पहले इन्द्रजीत सिंह एवं वीरसिंह बुन्देला के राजकवि रह चुके थे। भूषण छत्रसाल एवं शिवाजी के दरबार में, गोरेलाल छत्रसाल के तथा श्रीधर फर्रूखसियर, सूदन सुजानसिंह एवं पद्माकर कई राजाओं के दरबार में रहे थे तो इसमें यह देखना आवश्यक है कि मुगलों के पतन के समय क्या 17वीं सदी में क्षेत्रीय राष्ट्रीयताओं का उदय हो रहा था जिन्हें इन कवियों ने अपनी रचनाओं में दर्ज किया है या फिर केवल आश्रयदाताओं की झूठी प्रशंसा है। यदि वह राष्ट्रीयता है तो क्या आधुनिक राष्ट्रीय अवधारणा के अनुरूप था या उसका स्वरुप केवल क्षेत्रीय ही था? रीतिकालीन कवियों ने अपनी काव्यकृति में ऐतिहासिक चरित्र को कितना सच के करीब रखा है या उनकी इतिहास दृष्टि कितनी प्रखर है यह उस समय के तत्कालीन इतिहास लेखन और प्रमुख इतिहासकारों द्वारा लिखे इतिहास से उनकी तुलना कर पता लगाया जा सकता है।

आदिकाल तथा रीतिकाल में एक बड़ी संख्या में ऐतिहासिक चरितकाव्यों की रचना हुई है। लेकिन उसकी ऐतिहासिकता की छानबीन अभी बाकी है। वर्तमान में तो लगभग पूरा रीतिकाल ही उपेक्षा का शिकार है। इसे दरबारी या अश्लील साहित्य कहकर सीधे–सीधे उसकी उपेक्षा की जा रही है। आज उस कविता का विभिन्न कोणों एवं परिप्रेक्ष्यों में बात करना तो बहुत दूर की बात है जबकि अधिक जरूरत इसी बात की है। इस काल में जो

ऐतिहासिक रचनाएं लिखी गई हैं उनका सीधा सम्बंध तत्कालीन राजसत्ता से है। इन रचनाओं में रीतिकालीन मुख्य प्रवृत्तियों से अलग कई प्रवृत्तियां मिलती हैं जिनका ऐतिहासिक महत्व है। केशव, भूषण, गोरेलाल, श्रीधर, सूदन, पद्माकर प्रमुख हैं इनके अलावा भी एक बड़ी संख्या में कवियों ने ऐतिहासिक महत्व की कृतियों का प्रणयन किया है।

इन कवियों ने ऐसी कविताएं रची हैं जिससे उस युग की राजनीतिक परिस्थितियों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इस शोध ग्रंथ में राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में ही इन काव्यग्रंथों का अध्ययन किया गया है क्योंकि ये कवियों के आश्रयदाताओं के ही जीवन पर आधारित हैं। इन ग्रंथों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि इन्हें केवल आश्रयदाता की झूठी प्रशंसा कहकर खारिज नहीं किया जा सकता है। यह कविता इस बात की परिचायक है कि उस समय राजसत्ता का प्रभाव सामाजिक क्षेत्र में पूरी तरह से स्थापित हो चुका था और उसको जनसाधारण की ओर से चुनौती नहीं मिल रहीं थीं जबकि कविता के दूसरे अन्य युगों में हम कविता को राजसत्ता का विरोधी पाते हैं। वहाँ एक राजसत्ता को दूसरी राजसत्ता ही चुनौती दे रही थी और उन्हीं राजसत्ताओं के पास रहकर ये कवि कविता रच रहे थे।

रीतिकाल में केशवदास से ही ऐसी रचनाओं का प्रणयन आरंभ हो गया। केशव ने पहले ***रत्नबावनी, वीरसिंहदेवचरित***लिखा उसके बाद ***जहांगीरजसचंद्रिका***लिखी। भूषण शिवाजी और छत्रसाल जैसे वीरों का गुणगान कर रहे थे और औरंगजेब की कट्टर नीतियों आलोचना कर रहे थे। यहां एक बात ध्यान देने लायक है कि केशव एवं श्रीधर के अलावा किसी भी ब्रजभाषा के कवि ने मुगल सम्राटों को अपना काव्यनायक नहीं बनाया है। गंग, रहीम जैसे कवियों ने भी इन पर कोई प्रशस्तियां नहीं लिखी हैं। हालांकि अकबर के वे राजदरबारी कवि थे। इसके बाद ब्रज का कोई महत्वपूर्ण कवि कुछ अपवादों को छोड़कर मुगल राजदरबार में नहीं रहा। इस बदलाव से सत्ता की राजनीति को देखा जा सकता है कि जहांगीर के समय तक जब तक सहिष्णुता की नीति अपनायी गई तब तक ब्रज के कवियों

में उतना धार्मिक आधार पर विरोध नहीं मिलता और जैसे ही औरंगजेब ने अपनी नीतियां बदली, इन कवियों ने धार्मिक आधार पर उसका काफी विरोध किया। औरंगजेब के सिंहासनारूढ़ होते ही मुगल साम्राज्य में विद्रोह शुरू हो गए तथा अनेक क्षेत्रीय शक्तियों का उदय हुआ। ये क्षेत्रीय शासक स्थानीय बोलियों का सम्मान करते थे जिससे ये कवि उन राजदरबारों में गए। शिवाजी तथा छत्रसाल द्वारा भूषण का आदर जगप्रसिद्ध है। महाराष्ट्र में शिवाजी का उदय हो रहा था तो उत्तर में छत्रसाल जैसे राजाओं का उदय हो रहा था। ये दोनों ही शासक मुगल साम्राज्य को कड़ी चुनौती दे रहे थे। भूषण तथा गोरेलाल जैसे कवियों की रचनाएं इस युग की महत्वपूर्ण ऐतिहासिक साक्ष्य हैं जिनके महत्व को हिन्दी साहित्य के प्रमुख इतिहासकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी स्थापित किया है। ऐतिहासिक चरितावलियों से इतर श्रृंगार की कविता करने वाले कवि भी इन परिस्थितियों से निरपेक्ष नहीं थे तभी बिहारी जैसे कवि को लिखना पड़ा–

''सुकृति स्वारथ न श्रम वृथा, देखि बिहंग बिचारि।

बाज पराए पानि परि तु पंछीन नु मारि।।'' (बिहारी सतसई)

या उनका राजा जयसिंह को राज–काज में प्रवृत्त करने के लिए दी गई झिड़की–

''नहीं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास इहिं काल।

अली कली ही सों बिध्यों आगे कौन हवाल।।'' (बिहारी सतसई)

इनके अलावा अन्य कवियों में भी इस तरह की तत्कालीन राजनीतिक चेतना का प्रमाण मिलता है।

इस काल के कवियों में केशवदास, भूषण, गोरेलाल, श्रीधर तथा सूदन एवं पद्माकर की कृतियों का विश्लेषण करते हुए हमें यह देखना होगा कि इतिहासकारों द्वारा इन रचनाकारों पर लगाये गये आरोप कितने सही हैं? जैसा की यदुनाथ सरकार ने भूषण की रचनाओं की ऐतिहासिकता पर सवाल उठाया है कि वह विश्वास योग्य ऐतिहासिक साक्ष्य नहीं है; तो यह कितना सच है? उन्होंने अपनी पुस्तक 'शिवाजी' में यह स्थापना की है कि हिन्दी में

भूषण ग्रन्थावली ऐतिहासिक दृष्टि से किसी काम की नहीं है और हिन्दी इतिहासकारों के खोज का हवाला देकर उन्होंने भूषण को शिवाजी के बाद का कवि ठहरा दिया है। यह उदाहरण तो केवल एक बानगी भर है अधिकांश इतिहासकारों ने रीति साहित्य का सार्थक इस्तेमाल करने की कोशिश नहीं की है और उस युग के इतिहास को जानने के लिए केवल अरबी–फारसी ग्रन्थों में उपलब्ध इतिहास का सहारा लिया है। वे स्त्रोत जिन्हें आधार बनाया गया है वे ग्रन्थ भी राजदरबारों में ही लिखे गये हैं और इनके लेखकों पर भी राजदरबार के पक्ष में लिखने का दबाव रहता था इस तरह से उन्हें भी हम बिल्कुल सत्य या वस्तुनिष्ठ नहीं मान सकते।चरितकाव्य सम्बंधी कृतियों के अध्ययन से मुगलकाल के इतिहास में नया क्या जुड़ता है यह भी हम जान सकेंगे।

अपने इन्हीं कुछ प्रश्नों के साथ मैंने अपने शोध ग्रंथ को पांच अध्यायों में विभाजित कर उनका अध्ययन करने का प्रयास किया है। अपने प्रथम अध्याय में मैंने इतिहास क्या है और इसका साहित्य से क्या संबंध है इस प्रश्न पर विचार किया है। साथ ही रीतिकाल के सन्दर्भ में हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों की ऐतिहासिक दृष्टियों की चर्चा करना अपेक्षित था जिससे कि रीतिकालीन कविता के उपेक्षापरक दृष्टिकोण को समझा जा सके। विक्टोरियाई नैतिकता के चश्में से देखने वाले बीसवीं सदी के हिन्दी आचार्यों ने रीतिकाल के खिलाफ जो मोर्चा बनाया वह काफी हद तक कामयाब रहा और अभी भी रीतिकालीन कविता को इतिहास में सम्मानजनक स्थान प्राप्त नहीं हो सका है। केवल कुछ गिने–चुने कवियों के आधार पर ही आज भी उसका मूल्यांकन होता है।

अपने दूसरे अध्याय में मैंने रीतिकालीन आचार्य केशवदास के वीर चरितात्मक काव्यों ***वीरसिंहदेवचरित, रतन बावनी*** और ***जहांगीर–जस–चन्द्रिका*** का अध्ययन तत्कालीन ब्रजभाषा के राजदरबार के साथ उसके सम्बंधों की शुरूआत के परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास किया है जो उस समय की महत्वपूर्ण काव्यभाषा के रूप में उभर रही थी। इस सम्बंध में केशवदास का महत्व निश्चित रूप से विवादरहित देना चाहिए कि उन्होंने ब्रजभाषा को राजदरबारों में प्रतिष्ठित किया और साहित्यिक रूप से भी अन्य क्षेत्रीय बोलियों की अपेक्षा

उसे अन्यतम स्थान दिलवाया। केशवदास ने तत्कालीन मुगल शासक अकबर के समय का भी अच्छा चित्रण अपने प्रबंधकाव्य में किया है जो उनके चरितात्मक काव्य से स्पष्ट हो जाता है।

तीसरे अध्याय में भूषण और लालकवि की इतिहास दृष्टि पर प्रकाश डाला गया है जिसके माध्यम से तत्कालीन शासक औरंगजेब के काल पर प्रकाश पड़ता है। भूषण के काव्य से मराठा शक्ति एवं लालकवि के छत्रप्रकाश से बुंदेलखंड में छत्रसाल जैसे क्षेत्रीय नायकों के उद्‌भव पर रोशनी पड़ती है जो आगे चलकर मुगल साम्राज्य के लिए महत्वपूर्ण चुनौती के रूप में उभरे। औरंगजेब के साथ इन भारतीय हिन्दू राजाओं का सम्बंधों की विवेचना ही इस अध्याय में अपेक्षित है।

चौथे अध्याय में श्रीधर और सूदन की ऐतिहासिक रचनाओं की छानबीन की गयी है। श्रीधर के काव्य ***जंगनामा*** में औरंगजेबोत्तर उत्तराधिकार युद्ध का उल्लेख है तथा इस बात पर भी उसमें विशेष चर्चा की गयी है कि किस तरह से मुगल दरबार में अमीरों की स्थिति में बदलाव आ रहा था और उनमें शक्ति बढ़ाने की होड़ लग गयी थी। साथ ही वजीर का पद भी काफी शक्तिशाली हो गया और वह बादशाह को नियंत्रित करने की स्थिति में आ गया।

इसी तरह सूदन के ***सुजानचरित*** में जाटों का राजनैतिक उत्थान देखने को मिलता है जो 18 वीं सदी के महत्वपूर्ण राजनैतिक शक्ति के रूप में भारतीय फलक पर अचानक उद्‌भूत हुए थे। महाराजा सूरजमल ने जाटों को सफल नेतृत्व प्रदान कर जाट राज्य को उसके शक्ति के चरम पर पहुंचा दिया था। सूदन कवि ने सूरजमल की सात जंगों का उल्लेख अपने काव्य ग्रंथ में किया है जिसका ऐतिहासिक अध्ययन इस अध्याय में किया गया है।

पांचवे अध्याय में पद्‌माकर की ऐतिहासिक कृति ***हिम्मतबहादुर विरूदावली*** के माध्यम से तत्कालीन भारतीय परिदृश्य को समझने की कोशिश की गयी है। बुंदेलखंड राज्य अवध एवं मराठाओं के बीच का शक्ति संघर्ष का क्षेत्र बनकर उभरा था जिसकी परिणति मराठा–बुंदेल संघर्ष के रूप में हुआ। यह युद्ध ही ***हिम्मतबहादुर विरूदावली*** का ऐतिहासिक

परिप्रेक्ष्य है। इसके अलावा कवि पद्माकर का अनेक आश्रयदाताओं के पास जाना उस समय के राजदरबारों एवं उनके राजाओं की प्रशंसात्मक सूचना प्रदान करता है। पद्माकर के द्वारा रचित कुछ छंदों के माध्यम से हमें अंग्रेजों के विषय में भी जानकारी प्राप्त होती है जो हिन्दी कवियों में कहीं अन्यत्र नहीं मिलती। पद्माकर इस शोध ग्रंथ के अन्तिम विवेच्य कवि हैं जिनकी ऐतिहासिक दृष्टि पर प्रकाश डालना अपेक्षित था।

इस शोध ग्रंथ को पूरा करने में जिन संस्थानों या गुरूजनों का योगदान रहा वे धन्यवाद के पात्र हैं। इस शोध की अध्ययन सामग्री पुराने समय से सम्बन्धित थी अतः इसके लिए हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, साहित्य अकादमी, दिल्ली, इंदिरा गांधी कला केन्द्र, दिल्ली, मारवाणी लाइब्रेरी दिल्ली जैसे पुस्तकालयों से मुझे विशेष मदद मिली। इसके अलावा इतिहास की पुस्तकों के लिए जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की इग्जिम लाइब्रेरी (Exim Library) से मुझे काफी मदद मिली, इसके बाद जे. एन. यू. का केन्द्रीय पुस्तकालय, दिल्ली विश्वविद्यालय का केन्द्रीय पुस्तकालय, बनारस एवं इलाहाबाद विश्वविद्यालयों के केन्द्रीय पुस्तकालयों से भी मुझे अध्ययन सामग्री प्राप्त करने में विशेष मदद मिली। इन सभी संस्थानों के कार्यालयी सदस्यों के सहयोगपूर्ण रवैये के बिना यह सम्भव नहीं था। अतः उन सभी को धन्यवाद।

शोध कार्य प्रांरभ होने के पूर्व से ही प्रो0 मैनेजर पाण्डेय ने मेरे विषय क्षेत्र में काफी दिलचस्पी दिखाई और समय–समय पर मेरा मार्गदर्शन भी किया। इसके अलावा उन्होंने मुझे कई पुस्तकों के विषय में भी बताया जो मेरे विषय से सम्बंधित थीं और मेरे विशेष काम की थीं। अतः उन्हें सादर धन्यवाद। मेरे पूर्व शोध–निर्देशक प्रो0 रामबक्ष का सहयोग विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिसके बिना यह शोध आकार नहीं ले सकता था। मुझे रीतिकाल में शोध करने की प्रेरणा उन्हीं से मिली है और आज भी वह मुझे प्रोत्साहित करते रहते हैं। मेरे वर्तमान शोध निर्देशक प्रो0 देवेन्द्र कुमार चौबे का मागदर्शन भी महत्वपूर्ण रहा और उन्होंने शोधकार्य के दौरान मुझे शोध कार्य सम्बंधी बहुमूल्य सुझाव दिये

और उसके तकनीकी पहलुओं के प्रति मुझे जागरूक किया। अतः इन सभी गुरूजनों को सादर धन्यवाद।

परिवार और मित्रों के सहयोग के बिना यह शोध ग्रंथ कभी पूरा नहीं हो पाता जिसके लिए वह सभी धन्यवाद के पात्र हैं। अंत में उन सभी को धन्यवाद जिन्होंने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मेरी सहायता की।

स्तुति राय

# प्रथम अध्याय

## इतिहास और साहित्य : इतिहास का अर्थ, इतिहास लेखन एवं हिन्दी साहित्य


1.1 इतिहास की अवधारणा और इतिहास लेखन की परम्परा

1.1.1 प्राचीन भारतीय इतिहास दृष्टि

1.1.2 पश्चिमी इतिहास लेखन की परम्परा और इतिहास दृष्टि

1.1.3 चीनी और इस्लामिक इतिहास लेखन

1.2 भारत में पेशेवर इतिहास लेखन परम्परा की शुरूआत

1.3 साहित्य में इतिहास की अभिव्यक्ति

1.4 भारतीय इतिहास का मध्यकाल और हिन्दी साहित्य

1.5 हिन्दी साहित्येतिहास लेखन और रीतिकाल

# इतिहास और साहित्य : इतिहास का अर्थ, इतिहास लेखन एवं हिन्दी साहित्य

## 1.1 इतिहास की अवधारणा और इतिहासलेखन की परम्परा

आधुनिक युग में इतिहास की अवधारणा व्यापक और सुचिंतित व्याख्या का रूप धारण कर चुकी है। अपने पुरातन अवधारणा को पीछे छोड़ इतिहास की व्यापकता को इस बात से भी समझा जा सकता है कि ज्ञान के लगभग हर विषय का अपना इतिहास है जो उस ज्ञान को सम्पूर्ण बनाने का कार्य करता है। इतिहास ज्ञान के सभी अनुशासनों के बीच आवाजाही करता है और उनके बीच एक संतुलन बनाने का कार्य करता है। इतिहास शब्द ही अपने आप में अतीत का बोध कराने की सूचना देता है। इसकी व्युत्पत्तिपरक व्याख्या इति + ह + आस अर्थात् 'ऐसा ही हुआ था'। अर्थात् इसका सम्बंध अतीत में घट चुकी घटनाओं के सम्बंध में सूचना प्रदान करना है।[1] अंग्रेजी में इसका समानार्थी शब्द 'हिस्ट्री' है जो यूनानी भाषा के 'हिस्टोरिया' शब्द से निकला है जिसका तात्पर्य शोध, खोज या जानकारी होता है।[2]

इतिहास का सीधा सम्बन्ध मानवीय घटनाओं एवं उनके क्रियाकलापों से जुड़ा हुआ है। अतः यह पूर्ण रूप से मानवीय क्रियाकलाप है; यह अन्ततः मनुष्यता को ही अपना लक्ष्य घोषित करता है। मनुष्य को ऐतिहासिक प्राणी कहने के पीछे यही तर्क काम करता है कि मनुष्य जाति का अपना एक इतिहास है जिसमें सभी मनुष्य जन्म लेते हैं, उसी में जीवन–यापन करते हैं और अन्ततः स्वयं उसी में विलीन हो जाते हैं। मनुष्य की स्वाभाविक विशेषता रही है कि वह अपने आस–पास की चीजों को देखकर उनके बारे में जानने की इच्छा रखता है। उसकी यही प्रवृत्ति उसे इतिहास की तरफ खींचकर ले जाती है। हर व्यक्ति अपनी वर्ग चेतना के अनुसार अपने समकालीन इतिहास को समझने की कोशिश करता है और उन्हें अतीत से जोड़कर देखने–समझने का प्रयास करता है। मनुष्य की यही गतिविधियां इतिहास को मानवीय क्रियाकलाप बनाती हैं।

किसी देश या समाज में रहने वाले व्यक्ति अपने अतीत को जानने के लिए क्रियाशील होते हैं तो उनके सामने अलग–अलग तरह की गतिविधियां दिखायी पड़ती हैं जिन्हें वह ग्रहण कर उन्हें समझ पाने की कोशिश करते हैं। व्यक्ति की वर्गीय चेतना या उसके समाज की

विभिन्नतायें अतीत में घट चुकी घटनाओं को देखने का परिप्रेक्ष्य भी उसी तरह से बदलने का कार्य करती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि अलग–अलग व्यक्ति या समाज या समुदाय इतिहास को अलग–अलग तरह से देखते हैं जिसकी वजह से दृष्टियों में भिन्नता के दर्शन होते हैं। इतिहास को देखने–समझने की दृष्टियों में जो विभिन्नताएं मिलती हैं वह इतिहास को व्यापक बनाने का कार्य करती हैं। किन्तु कई बार इतिहास की ऐसी दृष्टियां जो एक क्षेत्र या संस्कृति विशेष के लिए उपयोगी होती हैं वह दूसरे क्षेत्र या संस्कृति के लिए उतनी उपयोगी नहीं होती क्योंकि उनका सामाजिक ढाँचा उनकी तरह नहीं होता। उदाहरण के लिए यूरोपीय इतिहास दृष्टि भारतीय समाज को समझने के लिए नाकाफी साबित हुई है।

औपनिवेशिक काल के इतिहासकार भारतीय इतिहास को पूर्वाग्रह भरी दृष्टि से देखते हैं और उसका मूल्यांकन करते हैं। अपने यहां विकसित इतिहास दृष्टि के अनुरूप भारतीय इतिहास दृष्टि न देखकर वह भारतीयों को इतिहास दृष्टि शून्य घोषित कर देते हैं जबकि यह पूर्ण सत्य नहीं है। भारतीय दृष्टि इतिहासशून्य नहीं रही है भले ही वह इतिहास को देखने की आधुनिक अवधारणा के दायरे में नहीं आती। भारत के बीसवीं सदी के इतिहासकारों ने औपनिवेशिक इतिहासकारों की दृष्टि का विरोध करते हुए भारतीयों की इतिहासदृष्टि पर प्रकाश डालने की कोशिश की है जो यह साबित करने के लिए काफी है कि भारतीय लोग इतिहास को समझते थे और अपने दृष्टिकोण के अनुसार ही उन्होंने उसका पल्लवन किया। परन्तु कुछ शुरूआती राष्ट्रवादी इतिहासकार इतिहास को दूसरी अतिवादिता पर ले कर गये जिसने इतिहास का अतिरंजित रूप ही प्रस्तुत किया जिसने आगे चलकर इतिहास लेखन को काफी प्रभावित किया। पहले यह देखना आवश्यक है कि प्राचीन भारतीयों में इतिहास की क्या अवधारणा थी जिसकी वजह से औपनिवेशिक इतिहासकारों की तरफ से उस पर आरोप लगाये गये।

### 1.1.1 प्राचीन भारतीय इतिहास दृष्टि

भारत में विशुद्ध इतिहास ग्रंथों की अनुपलब्धता को देखकर ही विदेशी इतिहासकारों द्वारा इस तरह के आरोप लगाये गये हैं किन्तु इतिहास की अवधारणा हमारे यहां प्राचीन समय से ही विद्यमान रही है। प्राचीन भारतीय इतिहासदृष्टि को समझने का महत्वपूर्ण स्त्रोत उस समय का साहित्य है। साहित्यिक स्त्रोतों की उपयोगिता पर इतिहासकारों द्वारा सवाल उठाकर उसे समझने का प्रयास नहीं किया गया है। 19 वीं सदी के औपनिवेशिक इतिहासकारों का मानना था भारतीयों में इतिहास के प्रति कोई चेतना नहीं थी। साहित्यिक स्त्रोतों में मौजूद इतिहास सम्बंधी वक्तव्यों को पर्याप्त नहीं माना गया और साहित्य में कल्पना और मिथकों के प्रयोग से ऐतिहासिकता पर पड़े प्रभाव के कारण इतिहास की वस्तुनिष्ठता और वैज्ञानिकता में बाधा मानकर उसको उपेक्षित किया गया। इतिहासकारों के इस रवैये ने लम्बे समय तक साहित्यिक स्त्रोतों को इतिहास से दूर रखा और उनका उपयोग अभी तक नहीं हो पाया है। चूंकि भारत में इतिहास लेखन की पश्चिमी परम्परा नहीं मिलती अतः भारतीयों को इतिहासदृष्टि से शून्य मान लिया गया। परन्तु 20 वीं सदी के भारतीय राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने पश्चिमी विद्वानों के इस दृष्टिकोण का विरोध किया और इस तथ्य को स्थापित किया कि भारतीय मनीषा इतिहास शून्य नहीं रही है। भारतीयों में इतिहास लेखन के प्रति उदासीनता के कारण उसका विशिष्ट कालचिन्तन, धार्मिक कर्मकाण्डों के प्रति अतिशयता एवं शासकों की उपेक्षा प्रमुख रहे।[3] स्थायी मूल्यों के प्रति भारतीयों के प्रेम ने इतिहास लेखन को असम्भव बनाया। पुराणों में इतिहास मिलते हुए भी वह धार्मिक कर्मकाण्डों का ग्रंथ माना जाता है। पुराणों में मौजूद इतिहास बहुत कुछ धार्मिक आवरण में लिपटा हुआ है।

पुराणों से पहले वैदिक साहित्य में ***ऋग्वेद*** के ***दशम मण्डल*** के एक सूक्त में यास्क की टिप्पणी है कि इसमें ऋक्, गाथा और इतिहास का सम्मिश्रण है। ऋग्वेद में राजाओं की छिटपुट स्तुतियां उसके ऐतिहासिक स्वरूप के सबसे पुराने नमूने हैं। इन्हीं ऐतिहासिक सूक्तों ने आगे चलकर गाथा, नारशंसी, वंशानुचरित जैसे ऐहिकतामूलक एक नवीन शाखा का अलग–अलग रूप धारण कर लिया। इनमें नारशंसी में लौकिक इतिहास के सम्बंध में कहा गया है कि इस विधा में नरों का गुणगान किया गया है–

*''येन नराह प्रशस्यंते स नारशंसो मंत्राः''*[4] (निरूक्त मंत्र संख्या 9.9)

अर्थात् जिसमें नरों के गौरव का गुणगान या नरों की प्रशंसा हो वे नारशंसी मंत्र हैं। नरों के गुणगान का तात्पर्य ऐतिहासिक चरित्रों के वर्णन से है जो इतिहास की विषयवस्तु है। इसके बाद मुख्य रूप से उल्लेखनीय पुराण आते हैं। पुराण अतिशयोक्तियों एवं चमत्कारों से भरपूर हैं। अतः उनकी प्रामाणिकता को लेकर संदेह जताये जाते रहे हैं। पुराणों में 19 वीं सदी तक कुछ–न–कुछ जोड़ा जाता रहा है जो उनकी प्रामाणिकता पर प्रश्नचिन्ह् लगा देता है। हालांकि ये अतीत का ही बोध कराने के लिए लिखे गये हैं। पुराण शब्द की व्याख्या निम्नलिखित रूप में की गयी है–

''पुराण का अर्थ है– प्राचीन जनश्रुति। अमरसिंह अपनी कृति ***नामलिंगमअनुशासनम् अमरकोश*** में कहते हैं–

*'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च*

*वंशानुचरितम चैव पुराणं पंचलक्षणम्।'*

अर्थात् ब्रह्मांड की उत्पत्ति, प्रत्येक कल्प या कालचक्र के अंत में ब्रह्मांड का धीरे धीरे चरणबद्ध विकास और पुनर्रचना, देवताओं और ऋषियों की वंशावलियां, युगों के चक्र जिनमें मानवजाति का नए सिरे से सृजन होता है और प्राचीनतम कालों से शासन करते आ रहे लोगों की व्यवस्थित वंशावलियां या वंशवृक्ष –ये प्राचीन जनश्रुति के पांच घटक संलक्षण हैं।''[5]

पुराणों की यह व्याख्या इस बात को दर्शाती है कि पुराणों का गहरा सम्बन्ध अतीत की घटनाओं से था। एफ. ई. पार्जिटर नामक विद्वान ने पुराणों का गहरा अध्ययन किया था। इस विषय पर उनकी दो पुस्तकें उपलब्ध हैं–***द पुराण टेक्सट आफ डाइनेस्टीज आफ द कलि एज (1913), एवं इंडियन हिस्टोरिकल ट्रेडिशन (1922)।*** पार्जिटर का विश्वास है कि प्राचीन जनश्रुतियों के आधार पर पुराणों में अतीत की घटनाओं को अंकित कर लिया गया है। इतिहासकारों के काम के मुख्य पुराण ***मत्स्य पुराणऔर विष्णु पुराण***हैं। विष्णु पुराण में इतिहास के विषय में कहा गया है–

*''आर्व्यादिबहुव्याख्यानैर्देवार्षिचरिताश्रयम्।*

*इतिहासमिति प्रोक्तं भविष्यादभुतयुक्।।'*[6]

इसमें ऋषियों एवं महापुरूषों के चरितगान को इतिहास रूप में स्वीकार करते हुए घटना की अपेक्षा चरित्र पर बल दिया गया है। ये चरितगान विभिन्न वंशों के राजाओं की केवल स्तुतियां ही नहीं हैं बल्कि ये प्राचीन काल के राजनैतिक तंत्र को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इन्हीं वंशावलियों के आधार पर प्राचीन भारत का इतिहास रचा गया है। महाभारत काल से शुरू होकर ये वंशावलियां आंध्र राजवंश तक का विवरण प्रस्तुत करती हैं। प्राचीन राजवंशों में शिशुनाग वंश, नन्द वंश, मौर्य वंश एवं कण्व वंश तक का विवरण क्रमवार रूप से मिलता हैं। वंशानुचरित को पेश करने में ***विष्णु पुराण*** सबसे अच्छा उदाहरण है। इसके अलावा पुराणों में तत्कालीन समय की धार्मिक, सामाजिक परम्पराओं के भी उल्लेख मिलते हैं। प्रसिद्ध इतिहासकार रोमिला थापर का इस सम्बन्ध में कहना है–

''इस प्रकार हम देखते हैं कि वंशाचरितखंड उस ऐतिहासिक मोड़ पर पुराणकारों की दृष्टि में सामाजिक और आर्थिक संबंधों की स्थिति के अनुरक्षण का एक अभिलेख है। इसमें ऐतिहासिक यथार्थ स्थिति का आकलन है। इसे एक विशिष्ट विधा में लिपिबद्ध किया गया है जिसमें अतीत का रूपांकन होने के साथ–साथ तत्कालीन सामाजिक आचारों या संस्थाओं की अनुशास्ति का अधिकार पत्र भी है। यही नहीं भविष्य के राजवंशों की वैधता और प्रतिष्ठा के दावों के लिए भी आधारभूमि बना दी गयी है।''[7]

पुराणों के साथ–साथ ऐतिहासिक साक्ष्य वाले साहित्य लेखन का एक अन्य रूप एक नवीन प्रविधि के साथ उभरा जिसे चरितकाव्य कहा गया। पुराणों के लेखकों से अलग इसके लेखकों का संबंध तत्कालीन राजदरबारों से रहा। हालांकि कुछ लेखकों ने राजदरबारों के बाहर भी इस तरह का साहित्य लेखन किया। ये चरितकाव्य किसी प्रसिद्ध शासक या प्रसिद्ध व्यक्ति के चरितगान से सम्बन्धित थे। चरितकाव्य लेखन में बौद्ध समुदाय का विशेष योगदान रहा। सम्भवतः अश्वघोष का ***बुद्धचरित*** इस तरह का पहला सफल प्रयास है।[8] इसमें बुद्ध के ऐतिहासिक चरित्र को केन्द्र बनाकर इसकी रचना की गयी है। इन चरितकाव्यों की विशेषता यह भी रही कि इन्होंने बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। बौद्धों के अलावा अन्य ब्राह्मण ग्रन्थों एवं जैन धर्म के रचयिताओं ने भी इस प्रविधि को अपनाया और इसका विकास किया। चरितगान परम्परा का ही अंग 'प्रशस्तियां' हैं जो आधुनिक इतिहासकारों के लिए महत्वपूर्ण ऐतिहासिक साक्ष्य का काम

करती हैं। उदाहरण के लिए हाथी गुंफा में खारवेल और जूनागढ में रूद्रदामन जैसे शासकों की प्रशस्तियां प्रमुख हैं।[9]

चरितकाव्यों में संस्कृत भाषा के महान गद्य रचयिता बाणभट्ट की प्रसिद्धकृति ***हर्षचरित***है। इसका रचनाकाल ईसा की सातवीं सदी है। इस कृति में रचनाकार ने कन्नौज के शासक हर्षवर्धन के जीवन का चरितगान किया है। इसमें हर्ष के शासनकाल के शुरूआती वर्षों की ही जानकारी हमें प्राप्त हो पाती है। कवि बाण का प्रमुख उद्देश्य इस कृति में इतिहास प्रस्तुत करना नहीं बल्कि राज्य में राजशत्रुओं से घिरे हर्षवर्धन का उन परिस्थितियो से सामना एवं उनसे अपने राज्य की रक्षा के प्रयत्न को दर्शाना था। अपने राजा की विशिष्टताओं को कृति में विशेष स्थान दिया गया है। पिता की मृत्यु के पश्चात् हर्ष का राज्यारोहण हुआ था। मालवानरेश हर्ष की बहन को परेशान करता रहता था। हर्ष द्वारा अपनी बहन के राज्य की रक्षा एवं राज्यश्री को वापस उसका राज्य देकर हर्ष द्वारा अपने कर्तव्य की पूर्ति को कवि ने दिखलाया है। उसके पश्चात यह रचना समाप्त हो जाती है। इस छोटी आख्यायिका में भी तत्कालीन विषय में महत्वपूर्ण जानकारियां मिलती हैं। निश्चय ही हर्ष के शासनकाल के अध्येताओं के लिए यह साहित्यिक कृति महत्वपूर्ण है।

हर्ष के चरित के अलावा वाक्पति राज की रचना ***गौड़वाह***है।यह कृति आठवीं शती में लिखी गयी। इसमें कन्नौज के राजा यशोवर्मन द्वारा गौड़ के एक शासक पर विजय की कहानी है। वाक्पति राज की यह रचना अधूरी ही उपलब्ध है। यशोवर्मन की मृत्यु सन् 740 में हुयी थी इसीलिए इस कृति में यही तक का विवरण मौजूद है। इस कृति के अलावा पद्यमुक्त रचित ***नवसाहसांकचरित*** नामक कृति भी है जिसका समय 1005 ई0 के लगभग माना जाता है। इसमें किंवदन्तियां मौजूद हैं जो मालवानरेश नवसाहसांक से सम्बन्धित हैं। इस कृति में इतिहास की मात्रा अत्यंत न्यून है।

उपरोक्त साहित्यिक कृतियों के अतिरिक्त कुछ साहित्यिक कृतियां ऐसी भी हैं जिसमें इतिहास की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक है। ऐसी साहित्यिक कृतियों में ***बिल्हण की विक्रमांकदेवचरित, सोमेश्वर तृतीय की विक्रमांकाभ्युदय, जयानक की पृथ्वीराजविजय एवं रामचरित है।*** हालांकि इन कृतियों के रचनाकारों को इतिहासकार की संज्ञा नहीं दी जा सकती परन्तु उसमें मौजूद ऐतिहासिक साक्ष्यों की उपेक्षा भी ठीक नहीं होगी। बिल्हण ने ***विक्रमांकदेवचरित*** को 1083–89 ई0 के बीच लिखा था।[10] चालुक्य नरेश विक्रमदेव के

सम्बंध में चरितकार ने चमत्कारों एवं अलौकिक घटनाओं का विस्तार से वर्णन किया है तथा यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि उसका राजा दैवीय इच्छा का परिणाम है। बिल्हण ने अपने संरक्षणकर्ता के जीवन के उज्जवल पक्षों को विशेष रूप से उद्धृत किया है जबकि नकारात्मक पक्षों को ढँकने की कोशिश की है। विक्रमदेव ने अपने भाई के विरूद्ध राजद्रोह किया तब बिल्हण ने उसका पुरजोर समर्थन किया जबकि अपने एक और भाई द्वारा राजद्रोह करने पर वह उसकी घोर निंदा करते हैं। इस तरह के प्रसंगों में बिल्हण आश्रयदाता का अंधभक्त और पक्षपाती नजर आता है।[11]

सोमेश्वर तृतीय और जयानक की रचनायें भी बिल्हण की रचना की तरह ही अतिश्योक्तियों से भरपूर हैं। सोमेश्वर ने ***विक्रमांकाभ्युदय*** नामक गद्य वृत्त लिखा है जो कल्याणी का चालुक्यनरेश था।[12] वह विक्रमादित्य षष्ठम का पुत्र था। विक्रमांकाभ्युदय में उसने अपने पिता की जीवनी प्रस्तुत किया है। सन् 1925 में इस कृति की खोज हुई थी। यह एक अपूर्ण कृति है जिसके तीन अध्याय प्राप्त हैं। इन अध्यायों में कृतिकार ने कर्नाटक के जन–जीवन पर भी विस्तार से लिखा है। तत्कालीन समय के ऐतिहासिक विवरणों के अलावा पूर्ववर्ती चालुक्यों का इतिहास मिलता है। जयानक की ***पृथ्वीराज विजय*** में भारत में मुस्लिम आक्रमण 1191–92 के तराइन युद्धों का विवरण मिलता है। इस कृति में भी दैवीय घटनाओं एवं चमत्कारों का वर्णन मिलता है। परन्तु इस कृति में मौजूद तथ्य तत्कालीन तथ्यों से काफी मेल खाते हैं। अतः इस कृति को इतिहासकारों ने प्रमाणिक माना है।[13]

***रामचरित*** बंगाल के पाल शासकों में एक रामपाल को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। रामपाल के अलावा अन्य पाल शासकों का भी चित्रण इस कृति में हुआ है। पाल शासकों के समय में हुए विद्रोह के बारे में केवल इसी कृति में हमें विवरण प्राप्त होते हैं। इस कृति में इतिहास की मुख्य विशेषता वस्तुनिष्ठता का पालन हुआ है जो उस समय के इतिहास को देखते हुए एक सराहनीय प्रयास कहा जा सकता है।

ये कुछ महत्वपूर्ण साहित्यिक ऐतिहासिक कृतियां हैं जिनकी मदद से प्राचीन काल के इतिहास की झलकियां हमें देखने को मिलती हैं। इतिहासकार वी. एस. पाठक ने इनमें से कुछ कृतियों का अध्ययन करके उनकी ऐतिहासिकता पर प्रकाश डालने का सराहनीय प्रयास किया है जो यह साबित करता है कि अगर सही तरीके से प्रयास किया जाये तो

भारतीय साहित्यिक रचनाकारों के माध्यम से उस समय के इतिहास को सामने लाया जा सकता है।

### 1.1.2 पश्चिमी इतिहासलेखन और उसकी इतिहास दृष्टि

भारत में इतिहास दृष्टि के विकसित न होने के आरोप के परिप्रेक्ष्य में पाश्चात्य इतिहास दृष्टि पर भी एक नजर डाल लेना आवश्यक है क्योंकि उसी दृष्टि के आधार पर भारत की प्राचीन इतिहासदृष्टि का पश्चिमी विद्वान मूल्यांकन करते आये हैं। पश्चिम में इतिहास लेखन का प्राचीनतम साक्ष्य यूरोप में मिलता है। हिरोदोतस (456 से 545 ई0 पू0) ने इतिहास की पहली बार व्याख्या की।[14] उसने इतिहास को एक खोज के रूप में इसकी व्याख्या की। इस व्याख्या से इतिहास का सम्बन्ध 'यथार्थ' से जुड़ गया क्योंकि खोज या अनुसन्धान वास्तविक तथ्यों या घटनाओं की खोज एवं उसके अध्ययन पर आधारित ज्ञान है। अतः इतिहास का सम्बन्ध सत्य आधारित घटनाओं या निष्कर्षों से है। इस प्रकार यह वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित ज्ञान है।

हिरोदोतस के पश्चात दूसरा महत्वपूर्ण इतिहास लेखन का प्रयास थूसीडाइडिस की रचनाओं में मिलता है। थूसीडाइडिस का समय 460 से 396 ई0 पू0 है। वह एथेंस का निवासी था। उसके समय में पेलोपोनेशियाई युद्ध हुआ था। लगभग उसी के दौरान थूसीडाइडिस ने इतिहास लेखन आरंभ किया। उसकी यह कृति का नाम ***पेलोपोनेशियाई युद्ध का इतिहास*** है। यह कृति अधूरी है क्योंकि इसके पूर्ण करने से पहले ही लेखक की मृत्यु हो गयी। थूसीडाइडिस ने इतिहास में वैज्ञानिक पद्धति के इस्तेमाल पर विशेष जोर दिया था। उसने स्त्रोतों के उपयोग उनकी स्पष्टता को ध्यान में रखकर किया। इसी कारण से इतिहास की वैज्ञानिक पद्धति का उसे जनक कहा जाता है। थूसीडाइडिस किसी भी घटना के तह तक जाने के लिये आंकड़ों की तह तक जाकर निष्पक्षता से जांच करता है उसके उपरांत ही वह निष्कर्ष की तरफ बढ़ता है।

यूनानी इतिहास लेखन के पश्चात् सिकन्दर महान का युग शुरू होता है। पश्चिमी इतिहास लेखन में इस युग को हेलोनिस्टिक काल की संज्ञा दी गयी है जो रोमन विजय

तक फैला हुआ है। इस बीच में इतिहासलेखन की एक नयी प्रविधि विकसित हुई। सिकन्दर की जीतों ने विश्व के एक बड़े हिस्से को एक राजतंत्र के नीचे खड़ा कर दिया। यूरोप और एशिया का बहुत बड़ा हिस्सा अब एक ईकाई के रूप में देखा जाने लगा। इस ईकाई ने एक विस्तृत ऐतिहासिक दृष्टिकोण को जन्म दिया जिसे हेलेनिस्टिक कहा गया। यूनानी चिन्तन अपनी प्रादेशिक विशिष्टता को त्यागकर पूरे विश्व चिन्तन को अपनाकर एक नए रूप में अवतरित हुआ।

हेलेनिस्टिक काल का महानतम इतिहासकार पोलिबियस है जिसका समय 208 से 120 ई0 पू0 है। उसने ***हिस्ट्रीज*** नामक विशाल ग्रंथ लिखा है जो 40 भागों में विभाजित है। पोलिबियस का मानना था कि व्यक्तिगत तौर पर किया गया अनुसन्धान ही इतिहास की नींव हैं। पोलिबियस के पश्चात रोमन इतिहास लेखन में केटो, टैसियस जैसे अन्य इतिहासकार भी हुए।

ईसा की पहली शताब्दी में रोमन इतिहास में एक नया मोड़ आया जो इतिहासदृष्टि के परिप्रेक्ष्य में अच्छा नहीं कहा जा सकता। कुछ इतिहासकार अवश्य हुए हैं किंतु उनके लेखन में हेलेनिस्टिक युग के इतिहासकारों का अनुसरण अधिक पाया जाता है। ईसा की पहली सदी में ही 'सर्वव्यापी इतिहास ' यूनीवर्सल हिस्ट्री' का प्रचलन शुरू हो गया। सम्राट आगस्टस के युग में डियोडोरस नामक इतिहासकार ने ***बिब्लियोथिका यूनिवर्सेलिस***नामक इतिहास लिखा।[15] एक अन्य सर्वव्यापी इतिहास उसी युग में दमिश्क के इतिहासकार निकोला द्वारा ***यूनीवर्सल हिस्ट्री***नाम से लिखा।

रोमन इतिहासलेखन के बाद यूरोपीय इतिहास चिंतन में एक लंबे समय के लिए ठहराव आ गया जो 13वीं सदी के पुनर्जागरण में आकर ही खत्म हो पाया। यूरोपीय पुनर्जागरण ने इतिहास लेखन में नयी जान फूंक दी। हालांकि इस बीच कुछ इतिहासग्रंथ जरूर लिखे गये लेकिन धार्मिक रंग में रंगा होने के कारण उसमें इतिहास कम चमत्कार एवं अतिशयोक्तियों का अंबार लगा रहता था और वह भी वृत्तांत, इतिवृत्त और साहित्य के रूप में लिखा जा रहा था।

पश्चिमी इतिहास लेखन में एक नवीन मोड़ का वाहक 15वीं सदी का यूरोप का पुनर्जागरण बना। पुनर्जागरण ने यूरोपीय समाज को नये सिरे से सोचने समझने की शक्ति प्रदान की।

शताब्दियों से मठीय संस्कृति में जकड़ा यूरोप जैसे सोते से जाग गया था। प्राचीन ग्रीक, रोमन संस्कृति को पुनः व्यवस्थित किया गया। । नये अनुसंधान हुये एवं उन्हें तर्क की कसौटी पर परखकर उनका मूल्यांकन शुरू हुआ। इतिहासलेखन भी पुनर्जागरण से प्रभावित हुआ। पुनर्जागरण की विशेषताओं यथा जिज्ञासा, प्रश्नाकुलता, तार्किकता जैसे गुणों ने इतिहासलेखन में भी अपना स्थान बनाया। धार्मिकता एवं चमत्कारों की जगह सही आंकड़ों की विवेचना एवं वैज्ञानिकता की प्रवृत्ति उस समय के इतिहास में दिखने लगती है।

### 1.1.3 चीनी और इस्लामी इतिहास लेखन

यूरोपीय, ग्रीक रोमन इतिहास चिंतन के समानान्तर ही अन्य विश्व के भागों में भी इतिहास लेखन हो रहा था। इसमें चीनी और इस्लामी इतिहासलेखन काफी महत्वपूर्ण विकसित इतिहासदृष्टि से युक्त था। चीन का इतिहासलेखन काफी पुराना है। चीन को इतिहासकारों का स्वर्ग कहा गया है। प्राचीन चीनी इतिहासलेखों में उसे यह उपाधि मिली है। प्रमुख चीनी इतिहासलेखकों में कन्फूसियस (551–478 ई0 पू0), त्सो चुआन (कनफूसियस के 100 साल बाद), स्जूमा चियन (145–85 ई0 पू0) , पान कू और स्जूमा क्वांग (1019–1086 ई0) प्रमुख हैं। चीनी इतिहासलेखन की प्रमुख शैली 'पाठ आधारित आलोचना' थी।[16] हालांकि इन इतिहासकारों में उपदेशात्मकता की प्रवृत्ति अधिक थी जो उनके इतिहासलेखन की कमजोर कड़ी है फिर भी चीनी इतिहासकारों ने अपने समय के इतिहास को दर्ज कर उसे सुरक्षित रखने में अपना योगदान दिया।

चीनी इतिहासकारों के मुकाबले इस्लामी इतिहास चिंतन अधिक व्यापक इतिहासदृष्टि के साथ अवतरित हुआ। यह इतिहासदृष्टि इस्लामी साम्राज्यवाद के साथ–साथ विकसित हुयी। सर्वप्रथम इस्लामी चिन्तन ईरान में विकसित हुआ और वहीं से वह अरब साम्राज्य के सम्पर्क में आने पर विकसित हुआ। इस्लामी इतिहासलेखन की अवस्था पर ई0 श्रीधरन लिखते हैं–

''मध्यकाल का मुस्लिम ऐतिहासिक साहित्य न सिर्फ परिमाण बल्कि विविधता में भी महान था। इसमें प्रचुर आयामों वाले सार्वभौम इतिहास, मुस्लिम आधिपत्य वाले, राजवंशों के इतिहास, नगरों के वृत्तांत, जीवनियां एवं यात्रा साहित्य शामिल हैं।''[17]

पैगम्बर मुहम्मद की यात्राओं को दर्ज वाला पहला इतिहासकार मुहम्मद बिन इस्हाक था। इसकी मृत्यु सन् 767 ई0 में हुयी थी। इसने दमिश्क के शाही खानदान का भी इतिहास लिखा। अबू इब्न याह्या (760–837 ई0) ने अब्बासी साम्राज्य का इतिहास लिखा। इन शुरूआती इतिहासकारों के अलावा प्रमुख इस्लामी इतिहासकारों में अल–बरूनी (973–1048 ई0) था जिसने ***किताबुल–हिंद*** नामक इतिहास ग्रंथ रचा। यह महमूद गजनवी के साथ भारत आया था। भारत के सम्बंध में इसकी पुस्तक तत्कालीन इतिहास का प्रमुख स्त्रोत है। अलबरूनी के बाद मोरक्को निवासी इब्न बतूता दिल्ली सल्तनत में आया था। उसका प्रमुख इतिहासग्रंथ ***रिहला***है।

अरबी इतिहासलेखकों में इब्न खालदून का नाम महत्वपूर्ण है। इसका समय 1332–1406 ई0 है। इब्न खालदून की इतिहासदृष्टि बहुत परिष्कृत और साफ–सुथरी है। इतिहासकारों के बीच उसके द्वारा लिखित ***मुकदमा***आज भी प्रशंसनीय है। अपनी इस कृति में इब्न खालदून ने इतिहास में आस्था, नैतिकता, इतिहासकारों द्वारा आने वाली गड़बड़ियां, इतिहास के स्वरूप एवं समाज की संस्कृति के अंगों पर विद्वतापूर्ण मत रखे हैं। इब्न खालदून इतिहास की गतिशीलता और परिवर्तन के बिन्दुओं को पहचानने पर जोर देता है जो काल की एक महत्वपूर्ण विशेषता है।[18]

इसके बाद इस्लामी इतिहासलेखन में कई इतिहासकारों ने अपना योगदान दिया जिनकी चर्चा यहां अपेक्षित नहीं है। इतिहासलेखन की अपनी इस परम्परा को मुस्लिम आक्रमणकारी पूरे विश्व में इसका प्रसार करने में सफल हुए और जहां भी गये वहां यह इतिहास फला–फूला। भारत में भी इंडो–इस्लामिक इतिहासलेखन ऐसे ही आया जिसका वर्णन आगे किया जायेगा।

## 1.2 भारत में पेशेवर इतिहास–लेखन की परम्परा की शुरूआत

साहित्य से इतर भारत में पेशेवर इतिहासकार के रूप में राजतंरंगिणि के रचनाकार को पहला पेशेवर इतिहासकार माना गया है। इतिहासकार की प्रतिष्ठाप्राप्त कश्मीरी इतिहासकार कल्हण आदिकालीन इतिहासकार हैं। आधुनिक इतिहास के लगभग सारे तत्व

कल्हण द्वारा लिखित ग्रंथ ***राजतरंगिणी*** में मिलता है। उस समय के इतिहासलेखक से जितनी अपेक्षाएं की जा सकती हैं वह कल्हण पूरा करते हैं। कल्हण ने इस पुस्तक में कश्मीरी राजाओं का इतिहास प्रस्तुत किया है। पूरी कृति आठ भागों में विभाजित है जो ईसा पूर्व 1184 से 1148–49 तक के समय को समेटे हुये है। एक इतिहासकार के रूप में कल्हण पर बात करते हुए ई0 श्रीधरन लिखते हैं–

''सामान्यतः प्राचीन भारतीय लेखक अतीत की घटनाओं को पूरी तरह मानवीय मानने या उन्हें किसी तिथि क्रम या कालक्रम व्यवस्था में देखने के अभ्यस्त नहीं थे इन दोनों आधारों पर कल्हण अधिकांश अवसरों पर खरे उतरते हैं।''[19]

अपने इतिहास के लिए कल्हण ने प्रामाणिक स्त्रोतों का अध्ययन किया है एवं उनके कालक्रम पर बारीकी से ध्यान दिया।कल्हण ने सही मायने में भारत में इतिहास लेखन की नींव डालीं इसके बाद से ही भारतीय इतिहास लेखन में एक नया दौर शुरू हुआ। साहित्यिक इतिहास से परे हटकर इतिहास की गंभीरता को समझा जाने लगा। मुस्लिम आक्रमणकारियों ने भारत में राजनीतिक दखल देना शुरू कर दिया था। जिससे एक भारी उथल–पुथल का दौर का दौर चला। भारत में धीरे–धीरे मुस्लिम सत्ता स्थापित हो गयी। तत्पश्चात् यहां के मुस्लिम शासकों ने इतिहास लेखन को प्रोत्साहित किया एवं उसे राज्याश्रय प्रदान किया। मुस्लिम शासकों की इस नीति ने इतिहासलेखन को प्रोत्साहित तो किया परन्तु उसे प्रभावित भी किया। राज्याश्रय में कवियों की भांति राजदरबार में अब इतिहासकार भी रखा जाने लगा। इस तरह से राजदरबारों में काफी महत्वपूर्ण स्थान रखने लगे।

भारत में मुस्लिम इतिहासलेखन इतिहासबोध की क्षमता से युक्त था। सल्तनत काल में सर्वप्रथम हमारे सामने मिन्हाज–उस–सिराज नामक इतिहासकार का ***तबकात–ए–नासिरी***नामक इतिहास ग्रंथ आता है। यह इतिहास ग्रंथ राजवंशों का इतिहास है। इसे दिल्ली सल्तनत के सुल्तान नासिरूद्दीन के समय में लिखा गया। **मिन्हाज–उस–सिराज ने भारत में इंडो–इस्लामिक इतिहासलेखन की नींव डाली।** उसका यह इतिहास हालांकि मुस्लिम राजाओं के इतिहास को ही सामने प्रस्तुत करता है परन्तु सही मायनों में इतिहास चेतना से प्रभावित है। इससे पहले भारत में इतिहास लेखन की अलग चेतना विद्यमान नहीं थी। सल्तनत काल में मिन्हाज उस सिराज के बाद इसी तरह

के इतिहासलेखन का प्रभाव बढ़ा। परवर्ती इतिहासकारों ने मिन्हाज उस सिराज की लेखनशैली को ही अपनाया और इसी की तरह के इतिहासलेखन की तरफ प्रवृत्त हुये। यहां यह ध्यान देने योग्य बात है कि इस्लामिक राज्य में इतिहासलेखन की चेतना पहले से ही विद्यमान थी। केवल दिल्ली के बादशाहों ने इसे प्रोत्साहन देकर उसे बढावा दिया। राजदरबारों से सम्बन्धित आंकड़ों तक इतिहासलेखकों की सीधी पहुंच रहती थी और सारी घटनाओं के वे प्रत्यक्षदर्शी होते थे जिससे इतिहास में वास्तविक घटनाएं देखने को मिलने लगी। किन्तु राजदरबारों में लिखा गया इतिहास भी विवादों से परे नहीं है। बहुधा हमें यह देखने को मिलता है कि इतिहासलेखन पर तत्कालीन शासक का प्रभाव अत्यधिक रहता था और वह इतिहास को अपने पक्ष में तोड़–मरोड़ कर इतिहास में लिखवा सकता था।

इंडो–इस्लामिक लेखन का अगला महत्वपूर्ण इतिहासकार याह्या बिन अहमद सरहिन्दी था। इसके इतिहास ग्रंथ का नाम ***तारीख–ए–मुबारकशाही*** है जिसमें दिल्ली सल्तनत के सुल्तान सैयद वंश के शासकों का वर्णन मिलता है। यह स्मृति एवं ऐतिहासिक कृतियों के आधार पर लिखा गया कालक्रमानुसार इतिहास ग्रन्थ है। उनकी इतिहासदृष्टि पर ई0 श्रीधरन टिप्पणी करते हुए लिखते हैं कि सरहिन्दी की दृष्टि में इतिहास घटनाओं की अलग–अलग प्रस्तुति है जिनकी कोई सावयवी भूमिका नहीं होती। वे शायद ही कभी कारणमूलक व्याख्या की बजाय दैवी कृपा की विवेचना करते हैं।[20]

इतिहास के सन्दर्भ में सरहिन्दी की यह मान्यता उनके लेखन को दूर तक प्रभावित करती नजर आती है। वह अतीत की घटनाओं की विवेचना अपने धार्मिक दृष्टिकोणों से परे हटकर कर पाते हैं। हालांकि वह बार–बार इस बात का उल्लेख करते हैं कि 'केवल अल्लाह ही सच जानता है'[21]। फिर भी उनके द्वारा दी गयी घटनायें मानवीय हैं और किसी भी शासक के उत्थान–पतन को मानवीय प्रतिक्रिया के रूप में ही देखते हैं एवं उसकी विवचना करते हैं। उपदेशात्मक प्रवृत्ति मिन्हाज उस सिराज की ही तरह सरहिन्दी में भी मिलती है। लोक के चरित्र–चित्रण का प्रयास सरहिन्दी ने नहीं किया है, केवल शासक वर्ग तक ही स्वयं को सीमित रखा है। दरअसल राज्याश्रय में पले–बढ़े इतिहासकार का जनमानस के बारे में मौन रहना उस युग के लिये असामान्य बात नहीं थी। धार्मिक निष्पक्षता का भी पालन प्रायः नहीं मिलता। अतः बहुसंख्यक हिन्दू जनता के लिए तत्कालीन

इतिहासकारों में कोई संवेदना हमें देखने को नहीं मिलती। हालांकि बाद में अमीर खुसरो इसके अपवाद हैं।

अमीर खुसरो को पेशेवर इतिहासकार नहीं माना जाता क्योंकि वह मुख्य रूप से कवि हैं। किन्तु राजदरबार से गहरा नाता होने के कारण खुसरो की रचनाओं में तत्कालीन समय की अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से मिलती है। उसकी कुछ किताबें इतिहासकारों के लेखकों के लिए भारी महत्व की है जैसे कि***किरान–उस–सदाइन*** **(1285),** ***मिफताह–उस–फुतुह*** **(1291),** ***आशिका*** **(1320),** ***तुगलकनामा, इन–उस–फुतुह*** **(1321) आदि।** अपने पूर्ववर्ती अन्य इतिहासकारों से अलग अमीर खुसरो ने भारतीय संस्कृति को अपनी पुस्तकों को अपनी पुस्तकों में स्थान दिया है। यहां के लोगों, पेड़–पौधों, कहानियों, गीतों, कहावतों, मुहावरों, पहेलियों, भाषाओं, जीव–जन्तुओं का उदाहरण मिलता है। मध्यकालीन भारत में अमीर खुसरो एक महान व्यक्तित्व को लेकर अवतरित हुआ जिसकी छाप उसके तत्कालीन समय के साथ–साथ परवर्ती समय में भी देखी जा सकती है। अमीर खुसरो कवि के रूप में हिन्दी कवियों कबीर एवं जायसी के अग्रज नजर आते हैं जिनका प्रभाव सदियों तक देखा गया और जो आज भी प्रासंगिक हैं।

अमीर खुसरो की ही तरह हसन निजामी ***ताज–उस–मा–आथिर*** का लेखक एवं इसामी ***फुतूह–उस–सलातीन*** का लेखक ने भी ऐतिहासिक रूप–रेखा में अपने ग्रंथों की रचना की। परन्तु अमीर खुसरो की तरह भारतीय संस्कृति के रंग इनकी पुस्तकों में नहीं मिलते। दोनों की ही कृतियां साहित्यिक कोटि के अन्तर्गत लिखी गयी हैं जिसमें हसन निजामी ने मुहम्मद गौरी की विजयों का वर्णन किया है। जबकि इसामी ने मुहम्मद तुगलक के समय से बहमनी सल्तनत तक का वर्णन अपनी कृति में दिया है। चूंकि दोनों ही कृतियां साहित्यिक रूप में लिखी गयी हैं तो उसमें ऐतिहासिकता को अक्षुण्ण रखने पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है।[22] परन्तु इनमें मौजूद साहित्यिक तथ्य तत्कालीन इतिहास से मेल खाते हैं और इसी वजह से आधुनिक इतिहासकार इन दोनों को इतिहासकार के रूप में देखते आये हैं।

सल्तनत काल का शुरूआती महत्वपूर्ण इतिहासकार शम्सुद्दीन सिराज अफीफ है। उसकी पुस्तक का नाम ***तारीख–ए–फिरोजशाही***है जो सल्तनत के सुल्तान फिरोजशाह की प्रशस्ति है। अफीफ ने तथ्यों तक अपनी पहुंच का अच्छा इस्तेमाल किया है और तत्कालीन समय

का बरीकी से अध्ययन  कर उसे अपनी पुस्तक में उतारा है। ***तारीखे–ए–फिरोजशाही*** में फिरोज तुगलक के जनकल्याणकारी योजनाओं को, दरबारी एवं प्रशासनिक कार्यों का विवरण हमें मिलता है जो इतिहासकार की पैनी नजर से होकर गुजरा है।

फिरोज तुगलक ने अपने लम्बे कार्यकाल में कई जनकल्याणकारी योजनाओं की शुरूआत की थी जैसे अस्पतालों का निर्माण, नहरों का निर्माण, गरीबों व अनाथों के लिए खैरात विभाग की स्थापना आदि कार्य महत्वपूर्ण रूप से हुए थे।[23] अफीफ ने उसके इन कार्यों के लिए उसकी प्रशंसा की है। फिरोज तुगलक को एक बहुत बड़ा साम्राज्य उत्तराधिकार में मिला था जिसे वह अपने अंतिम समय तक आते–आते सम्भाल नहीं पाया। राज्य में भ्रष्टाचार और सैनिक अक्षमता धीरे–धीरे उजागर होती जा रही थी जिसे सुल्तान नियंत्रित नहीं कर पा रहा था। फिरोज तुगलक ने उलेमाओं और प्रशासनिक अधिकारियों के भ्रष्टाचार की तरफ से अपनी आंखें फेर ली थी जिसकी वजह से साम्राज्य को नित नयी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था। फिरोज तुगलक  की अतिशय उदारता की नीति को अफीफ ने साम्राज्य की शक्ति क्षीण होने का प्रमुख कारण माना है। हालांकि अफीफ ने अपनी कृति को प्रशंसात्मक रूप में ही लिखा है और फिरोज तुगलक के जीवन की उपलब्धियों को बढ़ा–चढ़ाकर प्रस्तुत किया है जिससे वह एक आदर्श के रूप में फिरोज तुगलक को प्रस्तुत कर सके। अपनी इस सोच को साकार करने में अफीफ सफल रहा किन्तु इतिहासकार के रूप में यह उसकी कमजोरी भी है। अफीफ ने अपने इतिहास में जिन आदर्शों की स्थापना की वह नैतिक और धार्मिक अधिक थी इसीलिए इतिहासकार हार्डी इन कृतियों को ऐतिहासिक जीवनियों के रूप में दोषपूर्ण रचनायें मानते हैं। वे कहते हैं–''कि फिरोज तुगलक आदर्श गुणों के आवरण में लिपटा दर्जी की कठपुतली प्रतीत होता है।''[24]

सल्तनत काल का अन्य महत्वपूर्ण इतिहासकार जियाउद्दीन बरनी है जिसका समय 1285 से 1359 है। जियाउद्दीन बरनी ने ***तारीख–ए–फिरोजशाही*** नामक ग्रंथ लिखा। अपने समय के सभी इतिहासकारों में बरनी सर्वाधिक तीक्ष्ण इतिहासदृष्टि रखने वाला इतिहासकार है जिसके कारण उसके इतिहास का सर्वाधिक महत्व है। हालांकि बरनी अपना इतिहास ग्रंथ वृद्धावस्था में लिख पाया था तो तिथि सम्बन्धित भूलें काफी मिलती हैं। किन्तु उसकी विश्लेषण क्षमता काफी हद तक व्यवहारिक है। अपनी युगीन परम्परा के अनुसार उसने भी

उपदेशात्मकता और धार्मिकता पर विशेष ध्यान दिया है। इतिहास प्रस्तुति में बरनी ने अपने स्त्रोतों का बढ़िया इस्तेमाल किया है। वह स्वयं मुहम्मद बिन तुगलक का करीबी मित्र रह चुका था इसीलिये बड़े नजदीक से साम्राज्य से जुड़े तथ्यों पर उसकी आसानी से पहुंच थी बाकी वह अपनी स्मरणशक्ति के आधार पर ही अपना इतिहास ग्रंथ लिख सका था। इतिहासकार हरबंस मुखिया कहते हैं –

''कालक्रम के प्रति बरनी की इस उदासीनता के लिये उसकी कम होती याद्दाश्त को ही नहीं गलत ठहराया जा सकता बल्कि यह इतिहास की उपदेशात्मक प्रकृति में उनके विश्वास से उत्पन्न हुयी है। इतिहास कुछ निश्चित शिक्षाएं देता है और यदि घटनाओं का वर्णन कालक्रम के अनुसार नहीं होता है तब भी ये शिक्षाएं बोधगम्य होती हैं।''[25]

बरनी का मानना था कि ''इतिहास मानवीय क्रियाकलापों का विशाल दृश्यपटल है जो जीवन यात्रा में मनुष्य के लड़खड़ाते कदमों का दिशानिर्देश करने के लिए उसके समक्ष उद्घाटित होता है।''[26]

इतिहास के अपने दर्शन का प्रचार–प्रसार करने के लिए ये कृति लिखी गई थी। बरनी की समाज की संकल्पना अभिजात्यवादी थी। निचले लोगों के लिए बरनी का रवैया घृणास्पद था। उसका मानना था कि वो लोग घृणा के ही काबिल होते हैं।[27]

यह पुस्तक राजवंशीय और शासनकाल पर आधारित है जिसमें बलबन से लेकर फिरोजशाह तुगलक तक के शासनकाल का वर्णन मिलता है। यह दिल्ली सल्तनत का सबसे महत्वपूर्ण भाग है।

व्यक्तिपरकता बरनी के इतिहास ग्रंथ का सबसे कमजोर पक्ष है। बरनी की दृष्टि धार्मिक उपदेश की रही है। बरनी सच्चे मुसलमानों का खून बहाने और नास्तिकों तथा काफिरों के प्रति लगाव रखने के कारण मुहम्मद तुगलक की भर्त्सना करते हैं। बरनी तथ्यों की कारणमूलक व्याख्या करता है और उसी के अनुरूप तथ्यों को सामने लाता है यह तथ्य बरनी की प्रगतिशील सोच को उजागर करता है।

## मुगलकालीन इतिहासलेखन

भारत में जब कविता जनसामान्य के नजदीक पहुंच रही थी तब यहां का इतिहासलेखन अभी भी राजसत्ता की छत्रछाया में फल–फूल रहा था। सल्तनत के बाद मुगल साम्राज्य की स्थापना हुयी और इस नये साम्राज्य स्थापना ने सल्तनत कालीन इतिहासलेखन से प्रेरणा लेते हुये भी प्रगतिशील इतिहासलेखन का दृष्टिकोण अपनाया।

मुगल साम्राज्य के शासक भी इतिहासलेखन में पर्याप्त रूचि लेते थे और उन्होंने अपने दरबार में इतिहासलेखकों को प्रश्रय दिया। मुगल सम्राट अपनी प्रकृति में भारतीय जनता के प्रति उदार थे व उन्होंने क्षेत्रीय शक्तियों को अपने अधीन रखकर भी उन्हें पर्याप्त स्वतंत्रता दी जिससे एक बार फिर क्षेत्रीय शक्तियों के दरबार में भी कलाओं को पर्याप्त संरक्षण मिला। स्थापत्य, चित्रकला, संगीत, जैसे ललित कलाओं को संरक्षण मिला। स्वयं कई शासक भी कलाओं में अपना निजी दखल रखते थे साथ ही कवियों, इतिहासकारों, चित्रकारों, संगीतकारों को संरक्षण भी प्रदान करते थे। खासकर मुगलकालीन बादशाह जहांगीर तक का दौर कलाओं के लिए सुनहरा वक्त था। शाहजहां के बाद से परिस्थितियां थोड़ी भिन्न होने लगी परन्तु फिर भी उसने कलाओं के प्रति उदार रवैया अपनाया। औरंगजेब के शासनकाल में उसकी अपनी विशिष्ट धार्मिक मान्यताओं के कारण कलाओं को राजकीय संरक्षण मिलना बंद हो गया तब भी क्षेत्रीय राजाओं के यहां फलती–फूलती रहीं।

सल्तनत काल की ही तरह मुगलकालीन इतिहासकारों ने इतिहासलेखन को पर्याप्त महत्व दिया। **अधिकतर इतिहासलेखन फारसी प्रभाव के अन्तर्गत आधिकारिक इतिहास या नामा के रूप में इतिहास लेख का एक नया रूप प्रचलित हुआ।** अकबर ने अपने नये साम्राज्य का इतिहास लिखने के लिए अधिकारियों की नियुक्ति या अन्य लोगों को अनुबन्धित करने की प्रक्रिया आरम्भ की और उन्हें इस उद्देश्य से राज्य के अभिलेखागार में जाकर आवश्यक जानकारियां एकत्र करने की अनुमति दी' इस तरह के नये प्रयोगों से यह फायदा हुआ कि इतिहासकार भी पेशेवर हो गये और इतिहास सम्बन्धी स्त्रोतों पर उनकी नजदीकी पहुंच हो गयी जिसका इस्तेमाल वह अपनी सुविधानुसार कर सकते थे।

मुगलकालीन इतिहासकारों के रूप में सर्वप्रथम हमारे सामने बाबर उपस्थित होता है जो भारत में मुगल साम्राज्य का स्थापक भी था। बाबर ने अपनी आत्मकथात्मक कृति ***बाबरनामा*** में भारतीय प्रकृति एवं यहां के समाज के बारे में अपनी बेबाक टिप्पणियां की हैं। उसमें मौजूद उसके निजी विचार ऐतिहासिक घटनाओं के माध्यम से उस कृति को एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्त्रोत के रूप में उसे असंदिग्ध बनाते हैं। बाबर ने यहां के लोगों के प्रति जो टिप्पणी किया है वह दर्शनीय है–

''उनके किसान और निम्न वर्गों के लोग नंगे घूमते–फिरते हैं। वे एक तरह की चीज बांधते हैं जिसे वे लंगोटी कहते हैं...औरतें भी एक तरह का पहनावे के रूप में इस्तेमाल करती हैं जिसका एक सिरा वे अपने कमर के इर्द–गिर्द लपेट लेती हैं और दूसरा सिरे को सिर के उपर रखती हैं।''[28]

बाबर की भारतीय लोगों के बारे में यह मान्यता थी कि भारतीय लोग ज्यादातर घुलने–मिलने में यकीन नहीं रखते और केवल स्वयं तक सीमित रहते है। बाबरनामा से हमें यह पता चलता है कि इसका लेखक स्वयं भारतीय परिस्थितियों से तालमेल तो बैठा लेता है किन्तु उसे अपने देश की स्मृति बनी रहती है और वह अंत समय में वहीं जाने की इच्छा रखता है। भारत में बाबर को राजनैतिक सफलताएं अपेक्षाकृत आसानी से मिल गयी क्योंकि भारतीय राजनीति उस समय गहरे उथल–पुथल का सामना कर रही थी और भारत में राष्टीय एकता नाम की कोई अवधारणा उस समय तक विकसित नहीं हुई थी। भारत में धार्मिक तौर पर भी यहां के लोग बंटे हुए थे। बाबर ने अपनी आत्मकथा में इन सब परिस्थितियों की चर्चा की है एवं घटनाओं के कालक्रम के अनुसार उसका वर्णन किया है।

जैसा कि पहले ही उल्लेख हो चुका है कि अकबर ने अपने समय में पेशेवर इतिहासलेखन की नींव डाली एवं इतिहासलेखन पर अपने विशिष्ट धर्म, दर्शन एवं इतिहास सम्बन्धी मान्यताओं पर प्रकाश डाला। हालांकि इस सबके लिए वह सम्भवतः दबाव नहीं डालता लेकिन उस पूरे युग पर उसके व्यक्तित्व की छाप मिलती है। उसके दरबार में अबुल फजल, फैजी, बदायूंनी, ख्वाजा निजामुद्दीन अहमद जैसे प्रतिभाशाली इतिहासकार रहते थे तथा बादशाह ने इनको इतिहास लिखने का आदेश दिया था। इसके अलावा कुछ स्वतंत्र इतिहास लेखकों ने भी अपने इतिहास ग्रंथ रचे। इसमें निजामुद्दीन अहमद का ***तबकात–ए–अकबरी*** प्रमुख है। अकबर के आदेश से ***तारीख–ए–अल्फी***नामक इतिहास

1591 ई0 में लिखा गया जो इस्लाम के एक हजार वर्ष के इतिहास को प्रस्तुत करता था। इस इतिहास ग्रंथ को कई लेखकों ने मिलकर लिखा था जिसमें निजामुद्दीन अहमद, बदायूंनी, मुल्ला अहमद, आसफ खां जैसे विद्वान थे। इस पुस्तक रचना के सन्दर्भ में स्वयं बादशाह का आदेश था कि वस्तुनिष्ठता पर विशेष ध्यान दिया जाय और ऐतिहासिक तथ्यों के उल्लेख में स्त्रोतों की विश्वसनीयता का ख्याल रखा जाय।

**अकबर कालीन इतिहास लेखकों में सर्वाधिक प्रसिद्ध अबुल फजल नामक इतिहासकार है जिसने *अकबरनामा* और *आइने अकबरी* नामक दो इतिहास ग्रंथ लिखे।** यह इतिहास सरकारी संरक्षण में लिखा गया उस दौर का सर्वाधिक उत्कृष्ट इतिहास है। अबुल फजल अकबर का समकालीन एवं उसका अंतरंग मित्र था। अकबर के आदेशानुसार अबुल फजल ने मुगल साम्राज्य का गौरवपूर्ण इतिहास लिखा जिसमें तत्कालीन राजनैतिक, आर्थिक घटनाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन है। इतिहासलेखन को लेकर अबुल फजल की दृष्टि व्यापक और तर्कपूर्ण थी। वह साम्राज्य के सन्दर्भ में इस्लामी दृष्टिकोण की कई मूलभूत विशेषताओं को नहीं मानता था और उसका धार्मिकीकरण करने से बचता था। उसके स्त्रोत सटीक एवं विश्वसनीय होते थे। अपने स्त्रोतों की प्रामाणिकता पर वह विशेष ध्यान देता था। उसके पास तथ्यों को पहुँचाने के लिए राज्य के कर्मचारियों को उसकी सेवा में लगाया गया था। उपयोगी सामग्री का चयन करके ही उसका इस्तेमाल किया गया। अकबरकालीन सामाजिक–सांस्कृतिक छवियां हमें उसकी दोनों रचनाओं में हमें देखने को मिलती हैं जिसमें भारत की तात्कालिक भारतीय परम्परा, रीति–रिवाज, रहन–सहन का स्तर एवं लोगों की सामाजिक हैसियत पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। राजनैतिक, प्रशासनिक इतिहास के लिए तो यह उस समय का प्रामाणिक ऐतिहासिक स्त्रोत है जिसमें मुगलकालीन प्रशासनिक व्यवस्था को सरलता से समझा जा सकता है। हिन्दू –मुसलमान के बीच के सम्बन्ध उस काल में अकबर की उदार दृष्टि के कारण कितने बदल गये थे, उस उदारपूर्ण दृष्टि का प्रभाव पूरे इतिहास में झलकता है।

अकबरकालीन इतिहासलेखन में अकबर के समय की सारी विशेषताओं को लक्षित किया जा सकता है। अकबर की नई धार्मिक दृष्टि, राजपूत नीति, हिन्दू–मुसलमान सद्भाव, सुदृढ़ प्रशासन, राजनैतिक क्षेत्रीय स्थिरता एवं सास्कृतिक उत्थान ने पूरे भारत को प्रभावित किया और एक नये युग का सूत्रपात हुआ।

अकबर के पश्चात इतिहास दृष्टि में तो बहुत सुधार देखने को मिलता है लेकिन धीरे–धीरे सरकारी दबाव में इतिहासलेखन होने लगा, जिसका दुष्प्रभाव भी पड़ा। शासकों ने अपने अनुसार इतिहास को लिखवाया जिससे उसमें वस्तुनिष्ठता की कमी दिखायी पड़ने लगी। जहांगीर ने अपने समय का इतिहास स्वयं लिखा इस तरह वह स्वयं युग का इतिहासकार है। ***तुजुके–जहांगीरी***उसकी आत्मकथात्मक कृति है जिसमें वह अपने शासनकाल के बारे में विस्तार से लिखता है। इसके पश्चात शाहजहां के काल में कुछ इतिहासकार द्वारा इतिहास लिखे गये जबकि औरंगजेब के शासनकाल में सरकारी आदेश के अनुसार इतिहास लेखन पर पाबंदी लगा दी गयी। यह आदेश औरंगजेब के शासनकाल के ग्यारहवें साल में जारी किया गया। शाहजहां के शासनकाल में अब्दुल हमीद लाहौरी ने ***पादशाहनामा***नामक बहुत बड़ा ग्रंथ लिखा जो उस समय का महत्वपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावेज है। औरंगजेब भी इतिहासलेखन पर पूर्णतया रोक नहीं पाया और उसके भी शासनकाल का व्यक्तिगत इतिहास मिलता है। मोहम्मद सकी मुस्तैद खां की कृति ***मआसिर–ए–आलमगीरी*** उस समय का तत्कालीन इतिहास है जो व्यक्तिगत रूप से लिखा गया है उसमें औरगजेब कालीन इतिहास का विवरण मौजूद है।

मुगलकाल तक भारत में इतिहासलेखन की परम्परा को देखते हुए हम पाते हैं कि भारत में प्राचीनकाल में विकसित होकर एक लम्बे समय के पश्चात् इतिहास अपनी अलग पहचान बना पाया। वास्तविकता यह है कि भारतीय समाज की ऐतिहासिक दृष्टि अपनी विशिष्ट दार्शनिक अभिरूचि के कारण इतिहासलेखन को पाश्चात्य दृष्टिकोण से भिन्न रूप में देखती आयी है। एक अलग अनुशासन के रूप में इतिहास लेखन का विकास कल्हण की राजतरंगिणी में ही आकर देखने को मिलता है। इसके पश्चात मुस्लिम इतिहास लेखन मुस्लिम शासकों के साथ भारत में आया सल्तनत काल तक उसका विकास अपने इस्लामिक स्वरूप के साथ ही विकसित हुआ। भारतीय इतिहास दृष्टि से बिल्कुल भिन्न इस्लामिक इतिहासलेखन में इतिहास अपने साम्राज्यवादी सोच के अनुसार राजसत्ता केन्द्रित इतिहास को प्रमुखता दी गयी एवं**इतिहास का कार्य राजसत्ता को न्यायपूर्ण दिखाना एवं उसे उचित ठहराना हो गया था। सल्तनत कालीन लगभग सभी इतिहास जन–जीवन से दूर केवल राजनीतिक सोच को लेकर आगे बढ़े हैं।** भारत की सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियां क्या थीं इसका पता हमें उन इतिहासों में अवश्य मिल

जाता है किन्तु कोई इतिहासकार इसे ही अपना लक्ष्य बना कर इतिहासलेखन में प्रवृत्त हुआ हो ऐसा नही दिखता। हालांकि इसके लिए राजदरबार पर आश्रित इतिहासकारों को दोषी नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि सत्ता का उनपर काफी दबाव रहता होगा और वेचाहकर भी राजसत्ता के खिलाफ कुछ लिख नहीं सकते थे। कुछ इतिहासकार स्वयं अपने आभिजात्यवादी विचारों के कारण भी आम जन–जीवन पर लिखने से कतराते थे जैसे कि उदाहरणस्वरूप सल्तनतकालीन प्रसिद्ध इतिहासकार बरनी के विचार यहां द्रष्टव्य हैं–

''इतिहास का विज्ञान धर्म और राज्य के महान व्यक्तियों की महान विशेषताओं, गुणों, नेकियों और परम्पराओं का वृत्तांत है; पर नाकारा, कमीने, हीन, नीच–जन्मा, बाजारू लोगों का वृत्तांत नहीं है। इतिहास का लेखन और इतिहास का विज्ञान सिर्फ उमरा वर्ग, कुलीनों और महान व्यक्तियों के लिए है जिनके पास इंसाफ, सच्चाई और साफगोई जैसे गुण हैं।''[29]

बरनी ने अपने इतिहास ***तारीखे–फीरोजशाही***में अपने इन्हीं सिद्धान्तों का पालन किया है और जहां भी उसे निम्न वर्ग की बात करनी पड़ी है उसने बड़े ही तिरस्कारपूर्ण ढंग से उनका जिक्र किया है। बरनी के उदाहरण से उस समय के इतिहासकारों की इस अभिरूचि पर प्रकाश पड़ता है जो इतिहास लेखन को केवल आभिजात्य वर्ग का कार्य मानता है।

इसके अलावा सल्तनतकालीन इतिहासलेखन में धार्मिकता एक महत्त्वपूर्ण अवयव थी जो इतिहासकारों को एक बड़े हिन्दू समुदाय से उन्हें दूर रखती थी। अपने धर्म के प्रति कट्टर विश्वासों ने हिन्दू जनता के प्रति इतिहासकारों को सदैव उपेक्षापूर्ण नीति अपनाने पर विवश कर रखा था। यहां यह कहना भी उचित होगा कि केवल हिन्दू जनता ही इतिहासकारों की उपेक्षा का शिकार नहीं बनती है बल्कि निम्नवर्गीय मुस्लिम जनता भी उसकी का शिकार थी परन्तु उसका धार्मिक कारण कम था। चूंकि हिन्दू समाज विजित वर्ग से सम्बन्धित था और वह इस्लाम धर्म को चुनौती देता था इसलिए सल्तनत कालीन इतिहासकार उसके विषय में अधिकतर मौन ही रहते हैं। युद्धों के समय या देशी राजे–रजवाड़ों के सन्दर्भ में हिन्दू जनता का जिक्र आया है या फिर शासकों के किसी नीति या फरमान के समय उसका आम जनता पर पड़ने वाले प्रभाव के रूप में उनका जिक्र हुआ है।

मुगलकालीन इतिहासलेखन सल्तनतकालीन इतिहासलेखन से एक कड़ी आगे की तस्वीर प्रस्तुत करता है।मुगलकालीन इतिहासलेखन का स्वरूप भी धार्मिक आवरण में ही लिपटा हुआ था; फिर भी उसमें कट्टरता का अंश काफी हद तक कम है। अकबर की उदारपूर्ण दृष्टि उस काल के इतिहास लेखन में भी दृष्टिगोचर होती है। सल्तनत में इसका सर्वथा अभाव था। राजदरबारों में ही इस काल का अधिकांश इतिहास हमें मिलता है परन्तु कुछ इतिहास राजदरबारों के बाहर भी लिखे गये। अबुल फजल और बदांयूनी जैसे बड़े इतिहासकार राजदरबारों से जुड़े हुए इतिहासकार हैं। बदायूंनी ने स्वतंत्र रूप से भी इतिहास लिखा है जो अबुल फजल के इतिहास के समानान्तर इस काल की एक मुकम्मल तस्वीर पेश करता है।

इस तरह से हम देखते हैं कि भारत का पेशेवर इतिहासलेखन मध्ययुग में आकर अपना आकार ग्रहण करता है। यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि इस समय का इतिहास लेखन भी राजदरबारों में ही लिखा गया अतः उस पर भी पूर्णतः वस्तुनिष्ठ होने की बात स्वीकार नहीं की जा सकती। उस समय के इतिहासकारों की दृष्टियों में भी दरबार का प्रभाव पाया जाता है। ऐसे में उनकी निष्ठा पर भी सवाल खड़े होते हैं। केवल तत्कालीन साहित्य में ही चाटुकारिता का आरोप नहीं लगा है बल्कि दरबारी इतिहासकारों के विषय में भी यह उतना ही सच है।

## 1.3 साहित्य में इतिहास की अभिव्यक्ति

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि भारतीय इतिहासदृष्टि की अभिव्यक्ति काव्यात्मक स्वरूप के भीतर हुई है तो इसका सीधा सा तात्पर्य है कि साहित्य में ही भारतीय इतिहास के स्वरूप को देखा जा सकता है। साहित्य भी इतिहासकारों के लिए हमेशा से इतिहास कोजानने का एक प्रमुख स्त्रोत रहा है। परन्तु प्राचीन भारत के सन्दर्भ में ब्रिटिश इतिहासकारों ने भारतीय इतिहासदृष्टि पर प्रश्नचिन्ह खड़ा कर उसे काफी संदिग्ध बना दिया। उन्होंने मान लिया कि इतिहास के प्रति भारतीय लोग जागरूक नहीं थे; अतः यहां इतिहासलेखन का विकास नहीं हुआ। बाद में भारतीय इतिहासकारों की दृष्टि उन

इतिहासकारों की कमियों की तरफ गयी और उन्होंने इसका खण्डन करते हुए यह साबित किया कि साहित्यिक कृतियों के माध्यम से भी किसी समय का इतिहास जाना जा सकता है।

वस्तुतः साहित्य में इतिहास की उपस्थिति पर प्रश्नचिन्ह् खड़ा करना साहित्य को सर्वथा अपने समय तथा समाज से काटकर उसके एकांगी रूप को दर्शाना है। यह सच है कि साहित्य में कल्पनाओं, मिथकों एवं काव्य रूढ़ियों का महत्वपूर्ण स्थान होता है किन्तु कल्पना के आवरण में भी कवि या रचनाकार अपने समाज के समय को ही रूपायित करता है। कल्पना के कारण ही इतिहास की यथातथ्यता कोचोट पहुंचती है। उसी की वजह से उस समय का समाज एक काल्पनिक आवरण में छिप जाता है। किन्तु उसी की वजह से उस समय के समाज में एक आलोचक या इतिहासकार या पाठक; कवि या रचनाकार के रचे हुए कल्पनालोक से होते हुए कवि के समय में विचरण करता है और तत्कालीन परिस्थितियों से रूबरू होता है। यदि हम प्रेमचन्द का मशहूर उपन्यास पढ़े तो पायेंगे कि उसमें एक भी ऐतिहासिक चरित्र नहीं है फिर भी 1920–35 के दशक के समय में भारत की राजनैतिक–सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक परिस्थितियों से हम अपरिचित नहीं रह पायेंगे। भारत में उस समय के किसानों की दशा, टूटती हुई जागीरदारी प्रथा और भारतीयों की धार्मिक, सामाजिक रूढ़ियों को आसानी से समझा जा सकता है।

भारतीय इतिहासदृष्टि के सन्दर्भ में पुराने भारतीय काव्यों एवं पुराणों के ऐतिहासिक अध्ययन को हम पिछले पृष्ठों में देख चुके हैं। रामायण, महाभारत, पुराण उपनिषद जैसे प्राचीन काव्यकृतियों में भारतीय इतिहास की झलकियां स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं। अतः यह कहना कि साहित्य में इतिहास की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती; यह गलत अवधारणा है। कई बार साहित्य इतिहास की धारा को भी प्रभावित करता है। यह सर्वमान्य तथ्य है कि किसी भी क्राति के पहले समाज में एक बौद्धिक क्रांति होती है। वही आम जन में क्रांति के विचारों को जन्म देती है और उसे स्थापित करती है। यूरोप में पुनर्जागरण से पूर्व या फिर फ्रांसीसी क्रांति या रूसी क्रांति के पहले हम उन समाजों में हुई बौद्धिक क्रांति को देख सकते हैं जो क्रांति का मार्गदर्शन करती हैं एवं उसे उसके लक्ष्य तक पहुंचने में मदद करती हैं। सिर्फ यूरोप ही क्यों भारतीय सन्दर्भ में भी हम इस तथ्य को परिलक्षित कर सकते हैं। भारतीय बांग्ला नवजागरण, मराठी नवजागरण और हिन्दी नवजागरण स्वतंत्रता

पूर्व भारत में द्रष्टव्य हैं। भारतेन्दुयुगीन साहित्य में स्वतंत्रता का महत्व हमें सर्वत्र देखने को मिलता है। तत्कालीन साहित्य ने भारतीय जनमानस को स्वतत्रता प्राप्त करने के लिए मानसिक रूप से तैयार होने की पृष्ठभूमि बनाया। रचनाकारों की इतिहासदृष्टि राष्ट्रीय चेतना से ओत–प्रोत थी। वे रचनाकार अपने पाठक वर्ग में राष्ट्रीय चेतना को जगाने का हरसम्भव प्रयत्न कर रहे थे। कविता के अलावा उपन्यास, निबन्ध, जीवनी, नाटक आदि के माध्यम से वे भारत की मानसिक गुलामी की बेड़ियों को तोड़ देना चाहते थे जिससे स्वतंत्रता की राह खुल सके। भारतीयों में जड़ीभूत सामाजिक–धार्मिक रूढियों पर करारा प्रहार किया गया ताकि वे इनसे बाहर निकल सकें व एक स्वतंत्र भारत के निर्माण में अपना सहयोग दे सकें। प्राचीन इतिहास का इस्तेमाल भारतीय जनता में अतीत के प्रति गौरव व सम्मान का भाव जगाने के लिए किया गया। जयशंकर प्रसाद ने चन्द्रगुप्त, अजातशत्रु, स्कन्दगुप्त जैसे ऐतिहासिक पात्रों का चयन कर उनके माध्यम से जनता में राष्ट्रीय चेतना जगाने का प्रयत्न किया। तात्पर्य यह है कि किसी भी युग का रचनाकार अपने युग की सामाजिक–राजनीतिक परिस्थितियों से प्रेरित होकर ही रचना में प्रवृत्त होता है। समाज के सत्य का उद्घाटन ही उसका एकमात्र लक्ष्य होता है। कला यदि मनुष्य का मनोरंजन करती है तो उस मनोरंजन में भी उसका मनुष्य मात्र के कल्याण का उद्देश्य छुपा रहता है। इतिहास का भी यही उद्देश्य होता है। दोनों अनुशासनों के लक्ष्य और उद्देश्य मनुष्य का कल्याण मात्र ही है केवल उसको साधने के रास्ते अलग–अलग हैं। साहित्य का अध्ययन भी उसके इसी दृष्टिकोंण के साथ होना चाहिए।

## 1.4 भारतीय इतिहास का मध्यकाल और हिन्दी साहित्य –

भारत के राजनैतिक इतिहास में हर्ष के पश्चात् के भारतीय की राजनैतिक स्थिति अवनति की तरफ अग्रसर होने लगी। हर्ष का साम्राज्य धीरे–धीरे सिकुड़ता चला गया और क्षेत्रीय राजनीति अधिक शक्तिशाली हो गयी। भारत का मध्यकाल हिन्दू राजतंत्र के पतन के पश्चात् विदेशी आक्रमणकारियों के भारत में दस्तक देने एवं उनके द्वारा एक नये राज्य की स्थापना का सूचक है। मध्यकाल के आरंभिक समय में ही हिन्दी भाषा का भी उद्भव हुआ

तथा हिन्दी अपने आरंभिक रूप में दिखलायी देने लगी। हिन्दी का आदिकाल और भक्तिकाल सल्तनत काल में ही पुष्पित एवं पल्लवित हुआ। आदिकालीन कविता में हमें तत्कालीन युग की प्रतिध्वनि साफ सुनायी पड़ती है। यह वही समय था जब मुहम्मद गौरी भारत में अपना पैर जमाने की कोशिश कर रहा था। आदिकालीन कविता में शौर्य एवं ओज की विशेष उपस्थिति देखने को मिलती है। दरअसल वह युग युद्धों से सदैव आक्रांत रहता था। भारत में कोई केन्द्रीय सत्ता न रहने के कारण हर तरफ अराजकता का माहौल था क्षेत्रीय शक्तियां आपस में शक्ति प्रदर्शन करती रहती थीं जिनकी वजह से लगातार युद्ध होते रहते थे।

लगभग उसी समय महमूद गजनवी और मुहम्मद गौरी जैसे आक्रमणकारी भी भारत की पश्चिमी सीमा पर दस्तक देते रहते थे। ऐसे समय में राजसत्ता आधारित कविता का प्रचलन कोई अनोखी बात नही थी। सामंती पुरूष अपनी कीर्ति को लम्बे समय के लिए अक्षुण्ण रखना चाहते थे इसीलिए दरबारों में कवियों को रखना एक परिपाटी बन गयी क्योंकि ये कवि ही उनकी कीर्ति को लम्बे समय तक अक्षुण्ण रखने की गारण्टी ले सकते थे। हिन्दू राजदरबारों में इतिहासकारों की उपस्थिति न्यून थी और ना ही भारत में अभी तक इतिहासकार रखने का प्रचलन शुरू हुआ था। कवि ही इतिहासकार की कमी पूरी कर सकते थे। कविता राजाओं की कीर्ति को सुरक्षित रखने का एक जरिया बन सकती थी। इसी वजह से हम आदिकालीन कविता में वीरगाथात्मक काव्य को बहुतायत में पाते हैं।

ये वीरगाथात्मक काव्य राजकवियों द्वारा रचे गये जो बहुधा सामंती राजा के मित्र या दरबारी दूत हुआ करते थे जो युद्ध के समय राजा के साथ ही रहते थे और स्वयं भी युद्धों में भाग लिया करते थे जैसा कि हम पृथ्वीराज चौहान के दरबारी कवि चन्दबरदायी को देख सकते हैं। वह उनके साथ युद्धों में भी भाग लेते थे व राजा के करीबी मित्र भी थे। ऐसे कवि की रचनाओं में शौर्य और ओज स्वाभाविक रूप से पाये जाते हैं। आदिकालीन हिन्दी कविता में इस तरह के **वीरगाथात्मक काव्यों में *पृथ्वीराज रासो, पृथ्वीराज विजय, बीसलदेव रासो, परमालविजय, खुमाण रासो, हम्मीर रासो* जैसे काव्य रचे गये** जिनके आधार पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे इतिहासकार ने इस काल का नाम वीरगाथाकाल रख दिया। हालांकि आदिकाल की एक प्रमुख प्रवृत्तिगत विशेषता होने के बावजूद इन कृतियों की ऐतिहासिकता पर प्रश्नचिन्ह लगाये गये हैं तथा इस काव्य के रचयिता कवियों

द्वारा ऐतिहासिक तथ्यों के साथ छेड़–छाड़ सम्बन्धी भूलों को ध्यान में रखकर इन कृतियों के आधार पर नामकरण को उचित नहीं माना गया एवं इसका विरोध किया गया। इसके बावजूद आदिकालीन हिन्दी कविता का सीधा सम्बन्ध राजदरबारों से जुड़ा हुआ था। उस समय की अनेक राजनैतिक घटनाएं इन वीरगाथात्मक कृतियों में देखने को मिलती हैं।

आदिकालीन कविता में दरबारी प्रवृत्तियां लम्बे समय तक कविता में अपना स्थान नहीं बना सकीं। सल्तनत काल में उत्तरोत्तर केन्द्रीय शक्ति शक्तिशाली होने लगी। सल्तनत में स्थायित्व आने के साथ साथ हिन्दी कविता में भी एक बड़ा बदलाव लक्षित होने लगा। दक्षिण से भक्ति आन्दोलन की बयार अब उत्तर में भी बहने लगी। मध्यकालीन समय में विश्व के सभी हिस्सों में धार्मिकता एक प्रबल भावना थी। उस समय के युद्ध भी धार्मिक आवरण में लड़े जाते थे। इस्लामी आक्रमणकारी भी धार्मिकता को ही आधार बनाकर अपने सैनिकों को लड़ने के लिए प्रेरित करते थे। उदाहरणस्वरूप बाबर द्वारा भारत पर आक्रमण के दौरान उसके द्वारा दिये गये जोशीले भाषण को हम देख सकते हैं। ये केवल एक उदाहरण भर हैं। इससे पहले भी इस तरह के नुस्खों का इस्तेमाल सैनिकों को प्रेरणा देने के काम आता रहता था। लगभग इसी समय दक्षिण से आने वाले भक्ति आन्दोलन से उत्तर ने भी प्रेरणा ली और समाज में एक बेहद उथल–पुथल का दौर शुरू हुआ जिसने कालांतर में एक सामाजिक–धार्मिक आन्दोलन का रूप धारण कर लिया। इन आन्दोलन ने निचले वर्ग की जातियों में अपनी वर्तमान स्थिति के प्रति उनमें तीखे आक्रोश को जन्म दिया जिसकी अभिव्यक्ति संत साहित्य है। कविता की पारम्परिक वैष्णव धारा भी ईश्वर भक्ति के लिये किसी प्रकार के भेदभाव का बर्ताव नहीं करती थी अतः समानता का आदर्श कविता में स्थापित हुआ। धीरे–धीरे कविता में राजाओं–महाराजाओं का शौर्यगान अब बीते काल की बात हो गये। कवि का सरोकार अब राजा या राजसत्ता को प्रसन्न करना और उससे बदले में उपहार प्राप्त करना नहीं रह गया बल्कि जनभावनाओं को अपनी कविता में उतारना और उसे उपदेश देना हो गया था। भक्तिकालीन कवि जनता को आकर्षित करने में सफल रहा। भक्तिकालीन कवियों की सफलता को हम इस रूप में देख सकते हैं कि आज भी कबीर, सूर, तुलसी, जायसी और मीरा जैसे कवियों को आदर एवं सम्मान जनता में देखा जाता है। आज भी उनकी रचनाएं सामान्य जन के हृदय में स्थान बनाये हुये है।

भक्ति आंदोलन के क्षीण पड़ने के साथ–साथ कविता में ब्राह्मणवादी शक्तियां फिर से मजबूत हो गयीं जो भक्तिकालीन आदर्शों से प्रभावित होते हुए भी ब्राह्मणवादी समाज व्यवस्था को ही पोषित करने वाली थी जो सगुण भक्तिकाव्य में आसानी से लक्षित की जा सकती है। उस कविता के भीतरी अन्तर्विरोध ही रीतिकालीन कविता के उदय के कारण बने। भक्तिकाल में जो कविता ईश्वरीय और अलौकिक स्वरूप में मानव मुक्ति का महान लक्ष्य लेकर अवतरित हुयी थी वह फिर से संस्कृत काव्य का सहारा लेकर अपने साधारण लौकिक उद्देश्यों के साथ अपने नये रूप में दिखने लगी।

भक्ति के आदर्शों का अपने मूल उद्देश्यों से भटकाव और उसकी रीतिकालीन परिणति के लिये तत्कालीन शासक वर्ग भी कुछ हद तक जिम्मेदार था। दिल्ली में मुगल सम्राट अकबर की राजनैतिक विजयों ने केन्द्रीकृत शासन को सुदृढ़ आधार प्रदान किया और भारतीय सामाजिक जीवन में एक स्थिरता स्थापित हुई। सामंती शासक अकबर के अधीन अपनी क्षेत्रीय स्वतंत्रताओं के साथ बिना किसी विशेष दबाव के रह सकते थे। मुगल दरबार की शानो–शौकत और तड़क–भड़क उनके लिए भी अनुकरणीय हो गये दरबार में कवियों की प्रतिष्ठा पुनः स्थापित हो गयी। न सिर्फ कविता बल्कि अन्य ललित कलाओं की भी उस समय अभूतपूर्व उन्नति हुई। रीतिकालीन कविता की भावभूमि इस बदलते परिवेश में शासकों के मनोरंजन और उनकी भौतिक इच्छाओं की पूर्ति का माध्यम बनी जिसकी वजह से आम जन की इच्छाओं से अलग विशिष्ट वर्ग की ओर उसका झुकाव हो गया। आम जन से उसकी दूरी और सामंती वर्ग की छत्र–छाया में पलने के कारण हिन्दी साहित्येतिहास में उसे पतनशील मूल्यों की कविता कहकर आलोचकों ने उसकी तीव्र भर्त्सना की है जो वर्तमान समय में उसके पुनर्मूल्यांकन में एक बड़ी बाधा है। अगर हम इस बाधा को दूर करने का प्रयास नहीं करते तो अपने युग की प्रवृतियों को साथ लेकर चलने वाले साहित्य की अनदेखी कर रहे हैं जो अपने–आप में इतिहास की प्रगतिशील अवधारणा के विरूद्ध है। आलोचना की इस प्रवृत्ति को साहित्य के लिये हानिकारक समझकर नामवर सिंह, मैनेजर पाण्डेय जैसे कुछ आलोचकों ने इसकी तरफ ध्यान आकर्षित कराने की कोशिश की है जो निसन्देह उचित है।

रीतिकाल सम्बंधी आलोचनाएं मुख्यतः बीसवीं सदी के आरंभिक आलोचकों की पूर्वाग्रहपूर्ण दृष्टिकोण को लेकर निर्मित हुई थीं जिसकी वजह से इसका निष्पक्ष मूल्यांकन आज की

आलोचना के लिए मुख्य चुनौती बना हुआ है। रीतिकाल सम्बंधी आलोचना पर एक संक्षिप्त नजर डालना यहां आवश्यक प्रतीत होता है ताकि उस काल की आलोचना की प्रवृत्तियों को समझा जा सके।

## 1.5 हिन्दी साहित्येतिहासलेखन और रीतिकालीन चरितकाव्य –

वर्तमान समय में रीतिकालीन साहित्य घोर उपेक्षा का शिकार है और इसके लिए कहीं न कहीं हिन्दी साहित्येतिहास लेखन में इस साहित्य के प्रति बरती गयी उदासीनता उत्तरदायी है। रीतिकालीन कविता के सन्दर्भ में हिन्दी साहित्येतिहास लेखन के आरंभिक इतिहासकारों की रीतिकाल विरोधी टिप्पणियां पत्थर की लकीर बन गयीं और दूसरी पीढ़ी के इतिहासकारों ने उन्हीं के आधार पर रीतिकालीन कविता को 'कोर्ट पोयट्री', 'जनविरोधी' और सामंती मूल्यों की कविता कहकर उसका मूल्यांकन भी उसी ढंग से किया। पूर्वाग्रह पालने की प्रवृत्ति इस कविता के लिए खतरनाक साबित हुई जिसकी वजह से रीतिकालीन कविता के विशेषज्ञ अब लुप्तप्राय जीव हो गये हैं। अब यह केवल पाठ्यक्रमों तक सीमित रह गयी है जिसका सम्बंध केवल कक्षा में पठन–पाठन तक सीमित रह गया है। रीतिकालीन साहित्य के प्रति इतिहासकारों की उदासीनता न केवल इस साहित्य के उपेक्षित होने का कारण बनी बल्कि उनके इतिहास–लेखन की वस्तुनिष्ठता एवं पूर्वाग्रहरहित सोच पर प्रश्नचिन्ह् भी खड़ा करती है जो एक इतिहासकार के लिए आवश्यक गुण होते हैं।

इस सन्दर्भ में आरंभिक इतिहासलेखन की परम्परा में रीतिकालीन कविता पर पहला आक्षेप लगाने वाले जार्ज ग्रियर्सन की रीतिकाल सम्बन्धी दृष्टिकोण की आलोचना करते हुए नामवर सिंह ने कहा है कि उसने रीतिकालीन साहित्य की तुलना यूरोपीय साहित्य के आगस्टन एज से की जिसे यूरोप में पतनशील मूल्यों को पोषित करने वाला युग कहा जाता था अतः जार्ज ग्रियर्सन ने रीतिकाल से उसकी तुलना कर इसे भी पतनशील मूल्यों वाली कविता का युग मान लिया।[30]

आगे चलकर हिन्दी साहित्य के महत्वपूर्ण इतिहासकार रामचन्द्र शुक्ल रीतिकालीन कविता वाले खंड पर इस कविता के बारे में जो नकारात्मक टिप्पणियां की वह इस कविता का मूल्यांकन करने वाले अन्य इतिहासकारों के लिए प्रेरणास्त्रोत बन गयी जबकि आचार्य शुक्ल स्वयं रीतिकालीन कविता के मर्मज्ञ विद्वान थे। आचार्य शुक्ल की रीतिकाल सम्बंधी टिप्पणियों का परवर्ती इतिहासकारों और आलोचकों द्वारा अनुकरण करने की नीति का घोर विरोध आलोचक प्रो0 नामवर सिंह एवं प्रो0 मैनेजर पाण्डेय जैसे आलोचकों ने किया है। इनका यह मानना उचित है कि आचार्य शुक्ल ने जो भी लिखा वह उनके अध्ययन का परिणाम था। इसके अलावा उनके भक्तिकालीन वैष्णव परंपरा के संस्कार ही उनकी ऐसी टिप्पणियों के कारण बने जिनके कारण वह इस कविता में मर्यादाविहीनता को देखकर क्षुब्ध हो जाया करते थे। परन्तु अपनी सीमित आलोचना में भी उन्होंने उस कविता की देन पर यथास्थान प्रकाश डाला है जो आज भी महत्वपूर्ण है। बात चाहे तत्कालीन भावप्रवण छंदों की रचना करने वाले रीतिमुक्त कवियों की हो अथवा रीतिकालीन भाषा–सौन्दर्य की, आलोचना करते समय वह भूषण, बिहारी, देव, मतिराम, बोधा, घनानंद और पद्माकर जैसे कवियों की मुक्त कंठ से प्रसंशा करते हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास दृष्टि की कुछ खामियों के फलस्वरूप कुछ अन्य साहित्यिक धाराओं के प्रति उपेक्षा का भाव उनके साहित्येतिहास में मिलता है। रीतिकाल की प्रवृत्तियों को प्रमुख लक्षणों के आधार पर केवल तीन भागों रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध एवं रीतिमुक्त[31] में बांटकर देखने की प्रवृत्ति ने रीतिकाल की समग्र तस्वीर नहीं प्रस्तुत की है जो उनके इतिहासलेखन की प्रमुख विसंगति है। आदिकाल की ही भांति रीतिकाल में भी कुछ अन्य प्रवृत्तियां जो प्रमुख प्रवृत्तियों से स्वरूप में काफी अलग थी उन पर चर्चा नहीं की गयी। बाद के इतिहासकारों ने शुक्लजी की कमियों को ध्यान में रखकर ऐसे पक्षों की पूर्ति करने का प्रयास किया किन्तु रीतिकालीन साहित्य की उपेक्षा बरकरार रही। हजारी प्रसाद द्विवेदी, रामविलास शर्मा जैसे शुक्लोत्तर इतिहासकारों ने भी रीतिकाल का शुक्ल की ही परिपाटी पर मूल्यांकन किया है। जबकि उपरोक्त तीन काव्यधाराओं के समानान्तर ही रीतिकाल में चरितकाव्य या वीरकाव्यों की एक लम्बी परम्परा मिलती है जिसका उल्लेख इतिहासों में अलग से कहीं दिखायी नहीं पड़ता। केवल कुछ छिटपुट प्रयास अवश्य हुए हैं

परन्तु जब वर्तमान में सम्पूर्ण रीतिकाल ही परिदृश्य में हाशिए पर पड़ा दिखायी दे रहा हो वहां इस परम्परा के प्रति उपेक्षा का अंदाजा सहज ही लगाया जा सकता है।

तीनों काव्यधाराओं को हम देखे तो पाते हैं कि रीतिकालीन चरितकाव्यों को इतिहासकारों ने इन्हीं तीनों काव्यधाराओं में समाहित कर दिया है जबकि सम्पूर्ण रीतिकालीन काव्यधारा में चरितकाव्यों की लम्बी परम्परा मिलती है। लगभग सभी कवियों ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से चरित काव्यों की रचना की है। ऐसे में चरित काव्यों की इतिहासकारों द्वारा उपेक्षा दुखद है। ये चरितकाव्य अपने समय के महत्वपूर्ण शासकों को नायक बनाकर उसकी प्रशंसा में लिखे गए। चरितकाव्य हिन्दी की साहित्य के विधा के लिए कोई नई विधा नहीं है। इसका प्रचलन संस्कृत साहित्य से ही चला आ रहा था। इन तीनों काव्यधाराओं के अलावा रीतिकालीन कविता की एक प्रमुख विशेषता चरित काव्यों के रूप में देखने को मिलती है। ये चरित काव्य ही हिन्दी साहित्य में वीरकाव्य, जीवनी साहित्य, चरितकाव्य साहित्य आदि के नाम से अभिहित किए गए हैं। चरितकाव्य कहने से तात्पर्य है किसी प्रसिद्ध व्यक्ति, राजा, साम्राज्य, वंश, के चरित का गुणगान करना था। उसकी प्रशंसा करना इन चरितकाव्यों को कुछ इतिहासकारों ने वीरकाव्य नाम दिया है। दरअसल वीरकाव्य कहने से उनका तात्पर्य है कि इन चरितकाव्यों में वीररस केन्द्रीय रस के रूप में प्रतिष्ठित है। अर्थात इसमें वीरता का आख्यान ओजपूर्ण ढंग से किया गया है। कुछ इतिहासकार इसे जीवनी साहित्य का अंग मानते हैं। जीवनी साहित्य नाम देने से उनका तात्पर्य यह है कि इन काव्यों में जीवनी साहित्य की विशेषताएँ लक्षित होती हैं। परन्तु जीवनी विधा का जन्म बाद में 19वीं सदी में हुआ और ये रीतिकालीन चरितकाव्य जीवनी विधा से मेल खाते हुए भी उससे बिल्कुल अलग हैं। जीवनी विधा आधुनिक शैली की विधा है जिसमें किसी व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन चित्रित होता है। चरित काव्यों में राजनैतिक पक्ष विशेष रूप से प्रयुक्त हुआ है। यहाँ तक कि राजनीति केन्द्रित युद्ध भी चरितकाव्य का विशेष अंग हो सकता है। चरितकाव्य के विकास की परिस्थितियाँ उस समय के ऐतिहासिक परिस्थितियों में ही निहित थीं जिसका सीधा सम्बन्ध राजदरबारों से था और उसने संस्कृत एवं अपभ्रंश काव्य की चली आती हुई चरित, आख्यान परम्परा से रस ग्रहण करते हुए नवीन रूप धारण कर लिया।

अकबर के काल में स्थापित सुख–शांति जहाँगीर और शाहजहाँ के काल तक अक्षुण्ण रही। ऐसा नहीं है कि इस काल में कोई राजनीतिक उठा–पटक नहीं हुई या दरबारों के षड्यंत्र कम हो गए अथवा युद्ध एकदम से बंद हो गए। समय के साथ–साथ इस तरह भी घटनाएं होती रहती थी लेकिन कोई हानिकारक घटना नहीं घटी जिसका इतिहास पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। क्षेत्रीय राजाओं को अकबर द्वारा दी हुई स्वतंत्रता क्षेत्रीय कलाओं के विकास में भी सहभागी बनी। राजा अपने दरबार में कवि या गायक को प्रश्रय देने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। इसका एक कारण था कि कला के माध्यम से उनका मनोरंजन होता था। दूसरा प्रमुख कारण था कि इन कवियों से वह अपना यशोगान लिखवा सकते थे जो भविष्य में उनकी कीर्ति को अक्षुण्ण रखने वाला हो सकता था। इसके लिए वे पुरस्कार भी देते थे। रीतिकालीन काव्यों में कवि का आश्रय स्थल आम जनता के बीच न होकर राज दरबार हो गए। इन राजदरबारों में कवियों को मान–सम्मान प्रतिष्ठा के साथ–साथ भरपूर दान–दक्षिणा भी मिलती थी। कई गांव बतौर पुरस्कार उन्हें मिल जाते थे जो उनकी नई पीढ़ियों तक उनकी आय का स्त्रोत बने रह सकते थे। साथ ही कला प्रेमी शासक का साथ उन्हें मिल जाता था। ऐसे में रीतिकाल में कवि और आश्रयदाता शासक एक–दूसरे के पूरक का काम करते थे।

कवि सदैव एक अच्छा वक्ता भी साबित होता है। अपनी वक्तृता से वह श्रोता को अपनी ओर आकृष्ट करने की क्षमता रखता है। कवि की यह विशेषता उसके शासक के भी काम आती थी। वह राजा के दूत की भांति भी काम करते थे और अपने शासक के हित की रक्षा करते थे। रीतिकाल में ऐसे कई उदाहरण हमें देखने को मिलते हैं। रीतिकाल के कवि और आश्रयदाता का सम्बंध ऐतिहासिक चरितकाव्यों की रचना के लिए प्रेरणा का स्त्रोत बना। ऐसा नहीं है कि चरितकाव्यों की परम्परा रीतिकाल में प्रस्फुटित हुई। रीतिकाल से पहले भी इस तरह के चरितकाव्य लिखे गए और प्रसिद्ध हुए। इसका प्रचलन संस्कृत साहित्य से ही चला आ रहा था। संस्कृत के पश्चात पालि एवं प्राकृत काव्यों में भी कई चरितकाव्यों की रचना हुई। हिन्दी के उत्थान के समय भी पालि–प्राकृत से प्रभावित इसी तरह की रचनाएँ डिंगल एवं पिंगल में प्रचुर मात्रा में लिखी गई। आदिकालीन हिन्दी कविता की इस विशेष प्रवृत्ति को ही ध्यान में रखकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आदिकालीन कविता का नामकरण वीगाथाकाल रखा था। इन चरिकाव्यों के नायक

ऐतिहासिक व्यक्ति ही रहे हैं जिनको हम आदिकालीन चरिकाव्यों के नायकों के रूप में देखते हैं।

रीतिकालीन चरित्र काव्यों पर नजर डालें तो ऐसे सैकड़ों चरितकाव्य हमें नजर आयेंगे जो ऐतिहासिक रूप से काफी महत्वपूर्ण हैं। चरितकाव्यों या वीरकाव्यों पर महत्वपूर्ण काम करने वाले कुछ विद्वानों में टीकमसिंह तोमर एवं भगवानदास तिवारी महत्वपूर्ण हैं। इन्होंने वीरकाव्यों की उपलब्धियों को प्रभावशाली ढंग से रूपायित किया है। हिन्दी साहित्य के अधिकांश विद्वान रीतिकाव्य की चर्चा करते हुए इसके पतनशील चरित्र से खासे क्षुब्ध होते हैं एवं इसकी सम्पूर्ण काव्य परम्परा को कूड़े में डाल देने के लिए प्रवृत्त दिखते हैं। भारतीय साहित्य की जातीय परम्परा पर जोर डालने वाले डॉ0 रामविलास शर्मा जैसे विद्वान रीतिकाव्य में किसी जातीय परम्परा के अंश नही पाते और इसी की वजह से रीतिकालीन आचार्यों की कड़ी आलोचना की है कि उन्होने सामंती वर्ग ह्रासशील प्रवृत्तियों को अपने काव्य का लक्ष्य बनाया और जनता की सर्वथा उपेक्षा की।[32]लेकिन इस कड़ी में यह बात ध्यान देने योग्य है कि उस काल की ऐतिहासिकता पर उनकी नजर नही पड़ी और तत्कालीन युग में लिखे गये वीरकाव्यों या चरित्रकाव्यों को उन्होने नकार दिया और उसकी चर्चा तक नहीं की। वे साहित्य को सामाजिक उपादेय तो मानते है किन्तु इसके बावजूद तत्कालीन समय के काव्य की ह्यासशील प्रवृत्तियों से वे इतने आक्रांत हैं कि उस युग के समाज का विश्लेषण उस काल की कविता के माध्यम से नहीं करना चाहते। उस समय का सामंती परिवेश भी अपने ऐतिहासिक विकासक्रम में ही उपजा था और उसने तत्कालीन सामाजिक आर्थिक व्यवस्था पर अपनी विशेष छाप छोड़ी थी। इन परिस्थितियों को ध्यान में रखकर यदि उस काल के चरितकाव्यों का अध्ययन किया जाय तो उससे उस काल की महत्वपूर्ण जानकारी हमें मिल सकती है। इसके सन्दर्भ में टीकमसिंह तोमर ने चरितकाव्यों में उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री के संदर्भ में टिप्पणी करते हुए इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित करने की कोशिश की है। रीतिकालीन वीरकाव्यों की परम्परा में डॉ. टीकमसिंह तोमर ने***हिन्दी वीरकाव्य***में 53 कवियों की सूची दी है टीकमसिंह तोमर की सूची के पश्चात डा. भगवानदास तिवारी इस सूची को और बढाते हुए अपनी पुस्तक ***रीतिकालीन हिन्दी वीरकाव्य*** में 211 कवियों की लम्बी सूची दी है जिनकी 232 रचनाएं उन्हें मिली है। इतने कवियों और उनकी रचनाओं की सूची गिनाना यहां ध्येय नही है। केवल यहाँ यह बतलाना

आवश्यक है कि रीतिकाल में जिस पैमाने पर वीरकाव्यों का प्रणयन हुआ वह तत्कालीन परिस्थितियों की उपज था और अपने वर्तमान से उसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध था। वे कवि जो ऐसी रचनाओं को लिख रहे थे; उनके दिमाग में अपने वर्तमान की समझ विद्यमान थी और वे उन परिस्थितियों से सीधे जूझ रहे थे जो उनके सामने घटित हो रही थीं। देश की राजनीतिक परिस्थितियाँ उथल–पुथल से भरी हुयी थीं और उस युग के कवि को प्रभावित भी कर रही थीं। चरितकाव्यों में आये युद्ध और राजनैतिक दाँव–पेंच के वर्णन इस बात की तरफ संकेत करते हैं। रीतिकाल में लगभग सभी रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध एवं रीतिमुक्त कवियों ने चरितकाव्यों के प्रचलन में अपनी रूचि दिखलायी और अपने आश्रयदाता के लिये उनकी प्रशंसा में चरितकाव्य रचे। भगवानदास तिवारी के ग्रंथ में वर्णित ऐतिहासिक चरितकाव्यों में कुछ प्रमुख चरितकाव्यों की सूची देना यहां वांछनीय है ताकि रीतिकाल में ऐतिहासिक चरितकाव्यों के विकास क्रम को को समझा जा सके। इन चरितकाव्यों में प्रकाश, विलास, चरित, बावनी, हजारा, जंगनामा आदि कई रूपों में लिखे गये चरितकाव्य हैं जो ऐतिहासिक चरित्रों को केन्द्र में रखकर लिखे गये हैं। **इनका आरंभिक स्वरूप मुख्यतः दो प्रकार का है, पहला ऐतिहासिक और दूसरा पौराणिक चरितकाव्य।** हालांकि रीतिकाल में दोनों तरह की काव्य रचनाएं देखने को मिलती हैं परन्तु प्रमुखता ऐतिहासिक चरितकाव्यों को दी गयी है। कवियों के आश्रयदाता ही ऐतिहासिक नायक के रूप में चित्रित किये गये हैं। ये कहीं–कहीं छिटपुट तो कहीं प्रबंधकाव्य के रूप में लिखे गये। प्रबंधकाव्यों में तत्कालीन राजनीतिक परिदृश्य अपने पूरे विस्तार में मिलता है; इसलिए इनका ऐतिहासिक महत्व भी अधिक है। विभिन्न स्वरूपों में कुछ प्रमुख ऐतिहासिक वीरकाव्यों की सूची जो भगवानदास तिवारी ने दी है उनमें से कुछ यहां द्रष्टव्य हैं–

**ऐतिहासिक वीरकाव्य–**

रासो या रायसौ– कुमारपाल रासौ, शत्रुसाल रासौ, रतन रासौ, राणा रासौ, सगतसिंह रासौ, भगवंतराय रासा, करहिया कौ रायसौ, हम्मीर रासो इत्यादि।

चरितकाव्य– वीरसिंह देव चरित, मानचरित्र, जयसिंह चरित्र, अजीत सिंह चरित्र, हरदौल चरित्र, रावल चरित्र, राठौड़ चरित्र, सुजानचरित्र आदि।

वंशावली– खींची वंशावली, बुन्देल वंशावली, बघेला वंशवर्णन, दिनमणि वंशावली, जयचंद वंशावली, वंश भाष्कर आदि।

विलास–जयदेव विलास, सुजान विलास, जग विलास, अभय विलास, विक्रम विलास, राज विलास, बलवन्त विलास आदि।

प्रकाश– राज प्रकाश, सूरज प्रकाश, भीम प्रकाश, सुजस प्रकाश, अनूप प्रकाश, छत्र प्रकाश, विरूद प्रकाश, महेन्द्र सिंह प्रकाश और सजन प्रकाश इत्यादि।

प्रशस्तिकाव्य– जहांगीर–जस–चन्द्रिका, छत्रसाल विरूदावली, भगवंतराय विरूदाली, भगवंतराय यश वर्णन, हिम्मतबहादुर विरूदावली, प्रतापसिंह विरूदावली, छत्र–प्रशस्ति।

जंगनामा– यह एक तरह के युद्धकाव्य हैं जिसमें इतिहास प्रसिद्ध वीरों की लड़ाईयां मुख्य विषयवस्तु होती हैं। कुछ मुख्य जंगनामा हैं अणीराय कृत जंगनामा, श्रीधर का जंगनामा, खजानसिंह कृत जंगनामा आदि।

इनके अलावा ऐतिहासिक विषयवस्तु को लेकर युद्धकाव्य, वार, पोवाड़ा, बावनी, शतक, हजारा जैसे स्फुट काव्य भी बड़ी संख्या में लिखे गये जो भिन्न–भिन्न विषयों पर केन्द्रित रहते थे। मसलन् यात्रा वर्णन, शिकार वर्णन जैसे विषय भी तत्कालीन राजाओं, सामन्तों के नाम पर मिलते हैं। कुछ प्रबन्धकाव्यों में यह सारी प्रवृत्तियां उसी में समाहित कर ली जाती थी तथा कुछ स्फुट छंदों के रूप में मिलते थे।

**पौराणिक वीरकाव्य–** पौराणिक वीरकाव्यों में रीतिकाल में रामचरित्र, कृष्णचरित्र, चण्डी चरित्र जैसे पौराणिक पात्रों तथा कुछ महाभारत के प्रसंगों को आधार बनाकर ऐसे काव्य रचे गये जो ऐतिहासिक चरितकाव्यों से अलग भक्ति काव्य की तरह ही हैं। इनमें कुछ प्रमुख हैं खुमान कृत *रामरासो,* महाराजा राजसिंह का *बाहुविलास* (कृष्ण और जरासंध के बीच हुए युद्ध का वर्णन), गुरू गोविन्द सिंह का *चण्डी चरित्र,* दयाल कवि का *चण्डी चरित्र* आदि।

उपरोक्त सूची में केवल कुछ ही काव्यग्रंथों का उल्लेख हो पाया है। इसकी विषयवस्तु को देखकर इसकी विविधता और परिमाण का अंदाजा लगाना नामुमकिन नहीं है। निश्चय ही यह सारी सामग्री अपने समग्र अध्ययन की आवश्यकता की ओर ध्यान देने का संकेत देती

है। किन्तु न केवल हिन्दी साहित्येतिहासकार अपितु पेशेवर इतिहासकार भी लोकभाषाओं में लिखे ग्रंथों के प्रति उदासीन रवैया अपनाते आये हैं। जबकि इन ऐतिहासिक ग्रंथों में तत्कालीन युग का इतिहास काफी मात्रा में सुरक्षित है। रीतिकाल के कुछ प्रतिष्ठित कवियों द्वारा लिखे ऐतिहासिक कथानकों का अध्ययन कर मुगलकालीन इतिहास के सन्दर्भ में उनकी उपादेयता पर प्रकाश डालने काप्रयास आगे के अध्यायों में किया जायेगा।

# सन्दर्भ सूची


[1]सम्पा. डा0 नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स, पृ. सं. 21
[2]ई. श्रीधरन, इतिहास–लेख, प्रकाशन ओरियंट ब्लैक स्वान, पृ. स. 1
[3]सम्पा. डा0 नगेन्द्र, प्रकाशन, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स, पृ. सं. 23
[4]वी. एस. पाठक, भारत के प्राचीन इतिहासकार, भारत के प्राचीन इतिहासकार, पृ. सं. 43
[5]ई. श्रीधरन, इतिहास–लेख, प्रकाशन ओरियंट ब्लैक स्वान, पृ. स. 234
[6]सम्पा. डा0 नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रकाशन मयूर पेपरबैक्स, पृ. सं. 23
[7]रोमिला थापर, आदिकालीन भारत की व्याख्या, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, पृ. सं. 142–143
[8]रोमिला थापर, पृ. सं. 147
[9] रोमिला थापर, वही
[10]ई. श्रीधरन, पृ. सं. वही, 293
[11]ई. श्रीधरन, पृ. सं. वही, 294
[12]ई. श्रीधरन, पृ. सं. 295
[13]ई. श्रीधरन, इतिहास–लेख, प्रकाशन ओरियंट ब्लैक स्वान, पृ. सं. 296
[14]ई. श्रीधरन, पृ. सं. 10
[15]ई. श्रीधरन, पृ. सं. 27
[16]ई. श्रीधरन, इतिहास–लेख, प्रकाशन ओरियंट ब्लैक स्वान, पृ. सं. 35
[17]ई. श्रीधरन, इतिहास–लेख, प्रकाशन ओरियंट ब्लैक स्वान, पृ. सं. 55
[18]ई. श्रीधरन, पृ. सं. 64
[19]ई. श्रीधरन, इतिहास–लेख, प्रकाशन ओरियंट ब्लैक स्वान, पृ. सं. 299
[20]ई. श्रीधरन, इतिहास–लेख, प्रकाशन ओरियंट ब्लैक स्वान, पृ. सं.
[21]ई. श्रीधरन, में पृ. सं. 310 पर उद्धृत उद्धरण
[22]ई. श्रीधरन, इतिहास–लेख, प्रकाशन ओरियंट ब्लैक स्वान, पृ. सं. 312
[23]ई. श्रीधरन, पृ. सं. 313
[24]ई. श्रीधरन, इतिहास–लेख, प्रकाशन ओरियंट ब्लैक स्वान, पृ. सं. 314 पर उदृधृत उद्धरण
[25]ई. श्रीधरन, पृ. सं. 315
[26]ई. श्रीधरन, पृ. सं. वही
[27]सम्पा0 इरफान हबीब, मध्यकालीन भारत, राजकमल प्रकाशन, पृ. सं. 64–65
[28]ई. श्रीधरन, इतिहास–लेख, प्रकाशन ओरियंट ब्लैक स्वान, पृ. सं. 322 पर उद्धृत उद्धरण
[29]सम्पा0 इरफान हबीब, मध्यकालीन भारत का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, पृ. सं. 64–65 पर उदृधृत उद्धरण
[30]सम्पा0 प्रभाकर सिंह, रीतिकाव्य : मूल्यांकन के नए आयाम, लोकभारती प्रकाशन, पृ. सं. 35
[31]आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रकाशन संस्थान, पृ. सं. 240
[32]रामविलास शर्मा, परम्परा का मूल्यांकन, राजकमल प्रकाशन, पृ. सं. 99

# द्वितीय अध्याय

## केशव दास की रचनाओं में जहांगीर कालीन इतिहास : मुगल एवं ओरछा राज्य के परिप्रेक्ष्य में

2.1 कवि परिचय एंव रचनाएं

2.2 ओरछा राज्य का तत्कालीन राजनीतिक परिदृश्य

2.3 *रतन बावनी* की रचना और केशव की ऐतिहासिक दृष्टि

2.4 *वीरसिंहदेवचरित* की रचना और केशवदास

2.4.1 बड़ौन की जागीर और वीरसिंह की महत्वाकांक्षा

2.4.2 वीरसिंह और शहजादा सलीम की भेंट तथा अबुल फजल की हत्यो

2.4.3 जहांगीर का सिंहासनारोहण एवं बुंदेलों में उत्तराधिकार युद्ध

2.5 *जहांगीर–जस–चन्द्रिका*

2.6 केशव की इतिहास दृष्टि

# केशव दास की रचनाओं में जहांगीर कालीन इतिहास : मुगल एवं ओरछा राज्य के परिप्रेक्ष्य में

रीतिकाल के प्रवर्तक कवि केशवदास का ऐतिहासिक महत्व न केवलसाहित्य की धारा को मोड़ कर नवीन प्रवृत्तियों के वाहक कवि के रूप में है अपितु भाषा की दृष्टि से भी हन्दी साहित्य में नए बदलाव का सूचक है। केशव उस काव्यधारा के प्रतिनिधि हैं जिसने साहित्य को कलात्मकता की पराकाष्ठा पर पहुंचाया और काव्य को लौकिकता के धरातल पर उतार कर उसे मानवीय रूप प्रदान किया। निःसन्देह केशवदास ने अपनी प्रतिभा के बल पर कविता को राजदरबारों में प्रतिष्ठित करने का कार्य किया इसके साथ ही अपने समय की राजनीति को कविता से जोड़ दिया। उनकी ऐतिहासिक रचनाएं उनके इस दृष्टिकोण को बखूबी दर्शाती हैं। अपने समय में प्रचलित हिन्दी काव्य परंपराओं से प्रेरणा ग्रहण करते हुए भी उन्होंने अपने लिए एक नये मार्ग का चुनाव किया जिसका प्रभाव साहित्य पर अगले दो सौ वर्षों से भी अधिक समय तक बना रहा। केशव ने संस्कृत और आदिकालीन चरितकाव्यों से प्रेरणा लेते हुए ब्रजभाषा में जिस नए चरितकाव्य परंपरा का मार्ग प्रशस्त किया वह भारतीय इतिहास के लिए बड़े महत्व का है। इस अध्याय में उनकी ऐसी ही रचनाओं का अध्ययन अपेक्षित है।

## 2.1कवि परिचय और रचनाएं

हिन्दी साहित्य के प्रमुख इतिहासकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने महाकवि केशवदास को रीतिकालीन समय सीमा में नहीं रखा है। दरअसल केशवदास अन्य रीतिकालीन कवियों से काफी पहले भक्तिकाल की सीमा में आते हैं लेकिन उनके काव्य में रीतिकालीन काव्य के लक्षण  पाये जाते हैं। अतः वे रीतिकाल के आदि कवि माने जाते हैं। केशवदास से पहले रीति तत्वों का प्रयोग कृपाराम नामक कवि के यहाँ पहले ही हो चुका था। किन्तु व्यवस्थित तरीके से काव्यांगनिरूपण का कर्म केशवदास में पहले पहल मिलता है। केशवदास अपने समय के युग

निर्माता कवि साबित हुए जो उनके कवि कर्म के विविध पहलुओं से सम्पृक्त होकर रीतिकाल को नये रास्ते पर लेकर चला। केशव के कवि कर्म और उनकी इतिहास चेतना पर बात करने से पहले केशव का संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक है ताकि उनके काव्य निर्मिति के ऐतिहासिक पहलुओं को समझा जा सके। केशवदास के जीवन परिचय के संदर्भ में बहुत विवाद है। इसकी सबसे बड़ी वजह उनका अपने विषय में मौन रहना है। उनकी जन्मतिथि पर बहुत विवाद है और इस सन्दर्भ में कई मत प्रस्तुत किये जाते रहे हैं। मुख्य रूप से दो मत साहित्येतिहासकारों और आलोचकों में प्रचलित हैं–

**पहला मत**–केशव की जन्मतिथि के विषय में जो पहला मत सामने आया उसमें मिश्रबन्धु, आचार्य रामचंद्र शुक्ल एवं रामकुमार वर्मा जैसे इतिहासकार हैं। इनका मानना है कि केशव का जन्म वर्ष 1555 ई0 अर्थात सम्वत् 1611 विक्रम सम्वत् है। अपने इस मत के हवाले से हिन्दी साहित्य के इतिहास में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं–

''केशव सनाढ्य ब्राह्मण कृष्णदत्त के पौत्र और काशीनाथ के पुत्र थे। इनका जन्म संवत् 1612 और मृत्यु 1674 के आस–पास हुई।''[1]

**दूसरा मत**–इसमें वे आलोचक हैं जिन्होंने केशवदास के कविकर्म पर आलोचनात्मक काम किया है। इस वर्ग में लाला भगवानदीन, पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल एवं गौरीशंकर द्विवेदी आदि हैं। इन्होंने केशव की जन्मतिथि सम्वत् 1618 या 1561 ई0 माना है।[2] श्री गणेश प्रसाद द्विवेदी और शिवसिंह सेंगर क्रमशः 1508 और 1624 सम्वत् मानते हैं। इसी तरह केशव की मृत्यु को लेकर भी विवाद कम नहीं है। कुछ विद्वान उनकी मृत्यु सम्वत् 1670 तो कुछ 1680 मानते हैं।

इतिहासकारों और केशव के अध्येताओं ने केशव के काव्य और अनेक बहिर्साक्ष्यों के आधार पर केशव का समय सन् 1555 से 1617 ई0 के बीच माना है। जन्म और मृत्यु के सन्दर्भ में ये विवाद इसलिये हैं क्योंकि केशव स्वयं इन सूचनाओं के प्रति मौन हैं। लेकिन अपने कुटुम्ब और अपनी रचनाओं के समय के विषय में वह हमें सूचना देने के प्रति सचेत हैं जिससे हमें उनकी

पारिवारिक स्थिति और उनके रचनाकाल के विषय में पर्याप्त जानकारियां उपलब्ध हो जाती हैं।

केशव ने अपने कुटुम्ब के विषय में ***कविप्रिया*** में कुछ छंदों में जानकारी दी है। छंद इस प्रकार है–

*''पुत्र भये हरिनाथ के कृष्णदत्त शुभ वेश।*
*सभा साह संग्राम की जीती गढ़ी अशेष*
*तिनको वृत्ति पुराण की दीन्ही राजा रूद्र*
*तिन के कासीनाथ सुत सोभे बुद्धि समुद्र*
*जिनको मधुकर शाह नृप करयो बहुत सनमान*
*तिनके सुत बलभद्र प्रगटे बुद्धि निधान*
*बालहिं ते मधुसाह नृप पै सुनै पुरान*
*तिनके सोदर द्वै भये केशवदास कल्यान''*[3]

इसके अलावा अपने दूसरे ग्रंथ ***रामचन्द्रिका*** में वह अपने वंश का परिचय देते हुए लिखते हैं–

*''सुकृष्ण दत्त प्रसिद्ध है महि मिश्र पंडित राव*
*गणेश सो सुत पाइयो बुध काशिनाथ अगाध,*
*अशेष शास्त्र विचारि के जिन जान्यो मत साध*
*उपज्यो तेहि कुल मंद मति शठ कवि केशवदास*
*रामचन्द्र की रामचन्द्रिका भाषा करी प्रकास''*[4]

इन विवरणों से यह स्पष्ट होता है कि उनका जन्म सनाढ्य ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पूर्वज लम्बे समय से बुंदेला राजाओं के यहां पुरोहिती का काम करते थे। इनके पिता का नाम काशीनाथ था जो बुंदेल राजा मधुकर शाह के राज्याश्रय में रहते थे। मधुकर शाह स्वयं एक विद्वान शासक थे और इनके पिता का बहुत सम्मान करते थे। अतः केशव को भी ओरछा दरबार में आश्रय और सम्मान दोनों ही मिला। केशव के विषय में ***गुसाइचरित***में उल्लेख मिलता

है कि वह और तुलसीदास एक–दूसरे से मिले थे और केशव की मृत्यु के पश्चात् तुलसीदास ने केशव को प्रेतयोनि से बाहर निकाला था। पता नहीं इसमें कितनी सचाई है किन्तु इससे यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि केशव की मृत्यु तुलसी से पहले ही हो गयी थी। केशवदास ने सन् 1612 में ***जहांगीर–जस–चन्द्रिका*** लिखी अतः इसके बाद ही उनकी मृत्यु हुई होगी। इन साक्ष्यों के आधार पर ही उनकी मृत्यु 1617 ई0 में होना ठहराया जाता है। केशव ने ***रसिकप्रिया*** **1628,** ***रामचन्द्रिका*** **1658,** ***कविप्रिया*** **1658,** ***रतनबावनी*** **1658 से 1664,** ***नखशिख*** **1658** ***वीरसिंहदेव चरित*** **1663,** ***विज्ञानगीता*** **1667,** ***जहांगीर–जस–चन्द्रिका*** **1669, ( सभी सम्वत् में )** लिखी हैं। इसमें ऐतिहासिक साक्ष्य वाली कृतियां ***रतन बावनी, वीरसिंहदेव चरित*** **एवं** ***जहांगीर–जस–चन्द्रिका*** हैं।

केशवदास का जो समय है वही सूरदास और तुलसीदास का भी समय है अर्थात केशव दोनों के समकालीन हैं और ब्रजमण्डल में ही उनका भी परिवार रहता था। इन दोनों भक्त कवियों की काव्यभूमि वैष्णवों की सगुण परम्परा में निहित थी जिसके आराध्य चरित्र राम और कृष्ण थे। ब्रजमण्डल में भक्त कवियों का जमावड़ा वहां के मंदिरों में रहता था जो वहां पर पूजा पाठ किया करते थे। इन मंदिरों का सम्बंध वहां के क्षेत्रीय राजाओं से भी प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ था। ओरछानरेश मधुकरशाह के ब्रज कवियों से सम्बन्ध के कई साक्ष्य तत्कालीन समय में मिलते हैं।[5] ये राजा इन मंदिरों को प्रभूत मात्रा में दान दिया करते थे और अपनी आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति किया करते थे। ये भक्त कवि वहां की क्षेत्रीय ब्रजभाषा में गेय पदों की रचनाएं करते थे जो उस क्षेत्र में काफी लोकप्रिय हो गयी थी। केशवदास जिन्हें हम पहली बार दरबारी ब्रजभाषा कवि के रूप में प्रतिष्ठित होते हुए देखते हैं; केशवदास की पारिवारिक पृष्ठभूमि से इतर लोकभाषा के बढ़ते प्रभाव और राजदरबारों द्वारा उसके संरक्षण के प्रयास के रूप में एक नई स्थिति बनते हुए पाते हैं। दरअसल यह पहलू इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि आगे चलकर रीति कविता में ब्रजभाषा और दरबार एकदूसरे के पर्याय बन गये जिसके कारण उसके ऐतिहासिक परिस्थितियों में निहित थे।अतः इसे जानना आवश्यक है। आगे चलकर हिन्दी प्रदेश में ब्रजभाषा एक महत्वपूर्ण दरबारी भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई और अन्य

लोकभाषाएं जो भक्तिकाल में महत्वपूर्ण थी वह काव्यक्षेत्र में बिना दरबारी संरक्षण के हाशिए पर चली गयीं। राजस्थान के पिंगल को दरबारी संरक्षण मिलता रहा जिससे वह ब्रजभाषा के समानान्तर हमें देखने को मिलती है।

केशवदास के पूर्वज लम्बे समय से ओरछा राज्य के दरबार में बतौर राजकवि रहते आये थे। इस बात का उल्लेख स्वयं कवि ने भी किया है।[6] भारत में प्राचीन समय से ही पंडितों का राजदरबारों से घनिष्ठ सम्बंध रहता आया है। पंडित या राजकवि न सिर्फ राजा को धर्म की शिक्षा दिया करते थे अपितु काव्य के माध्यम से उनका मनोरंजन भी किया करते थे। इसका एक और पहलू भी था कुछ राजा अपने यश को बनाये रखने के लिए भी इन पंडितों की काव्य प्रतिभा का उपयोग करते थे। ये पंडित राजा के मित्र, गुरू या सलाहकार की भूमिकाओं में भी रहा करते थे। उनकी इन सेवाओं के बदले में राज्य द्वारा उन्हें संरक्षण मिलता था। संस्कृत में ऐसी परंपरा भृंग्विरसों के रूप में मिलती है जिसका विस्तृत विवेचन ***भारत के प्राचीन इतिहासकार*** नामक पुस्तक में वी. एस. पाठक ने किया है।[7] केशवदास की पारिवारिक पृष्ठभूमि से भी हमें इसी परम्परा के सूत्र मिलते हैं। जहां उनके प्रपितामह और पितामह ओरछा राजाओं के यहां पुरोहित थे और उन्हें उन राजाओं से वृत्ति मिला करती थी। केशवदास जैसा कि स्वयं बताते हैं कि उनके परिवार में संस्कृत का बोलबाला था और ऐसे परिवार से होने के बावजूद मंदमति केशव ने ब्रजभाषा में रचनाएं की।[1]

केशवदास द्वारा अपने परिवार की परम्परा से अलग हटकर संस्कृत से इतर लोकभाषा ब्रज में कविता करना उनके स्वयं को मंदमति कहने के उनके विनय की दूसरी तस्वीर पेश करता है। अपनी काव्यरचना के लिए ब्रजभाषा का चुनाव कहीं से भी केशव के मंदमति होने का प्रमाण नहीं देता। केशव से पहले ही भक्त कवियों ने संस्कृत भाषा को अलविदा कह दिया था और पंडित समाज को चुनौती दे दी थी। केशव के इस विनय पर एलिसन बुश्च का कहना है कि यह चुनाव केशव की जागरूकता का परिणाम था। दरबारी ब्रज काव्य के लिए नये मार्ग को

[1]भाषा बोलि न जानिहीं जिनके कुल के दास। भाषा कभी भो मंदमति तेहि कुल केसव दास।।

प्रशस्त करते हुए कवि संस्कृत की महान परम्परा के प्रति आभार प्रकट करता है जिसकी एक गहरी छाया रीतिकालीन काव्य पर बाद में पड़ी थी।[8]

एलिसन बुश्च का केशव के सन्दर्भ में यह मूल्यांकन बिल्कुल सटीक है। केशवदास ने जब लिखना शुरू किया तब उनके सामने जो काव्य प्रवृत्तियां मौजूद थी उसमें लोकभाषाओं के अलावा संस्कृत काव्य की गौरवशाली परम्परा भी मौजूद थी जिसका असर लोकभाषाओं के उच्चवर्गीय सगुण कवियों पर भी था। भक्ति आंदोलन और उसके ऐतिहासिक परिस्थितियों के कारण निम्न तबके के कवियों की तरह शास्त्र के प्रति उपेक्षा का भाव सगुण कवियों में नहीं मिलता। परम्परानुमोदित सगुण काव्य जो काफी हद तक संस्कृत के शास्त्रीय रूप से मुक्त था और लोकभाषा का आश्रय लेकर उसका स्वरूप भी लोकोन्मुखी हो चला था उसमें भी निर्गुण संतों की तरह परम्परा का पूर्ण बहिष्कार नहीं था। ब्रजभाषा में ही सूरदास लोक और शास्त्र दोनों से प्रेरणा लेकर काव्य रचना कर चुके थे। ऐसे कवि जिन्हें संस्कृत की परम्परा का पूर्ण ज्ञान था उनके द्वारा इस तरह का लेखन स्वाभाविक घटना थी जैसा कि हम तुलसी में भी देख सकते हैं।

ब्रजक्षेत्र में उस समय कृष्ण भक्तिकाव्य का प्रचार–प्रसार काफी तेजी से हो रहा था और इसमें कृष्णभक्त कवियों का महत्वपूर्ण योगदान था। केशवदास जिनका कर्मक्षेत्र ब्रज प्रदेश था निश्चित रूप से ब्रजभाषा की बढ़ती शक्ति से परिचित थे। एक सुसंस्कृत पारिवारिक पृष्ठभूमि के कारण केशव संस्कृत के भी गहरे जानकार थे। अतः उसका भी संस्कार उनके अन्दर विद्यमान था। संस्कृत काव्य से उन्होंने भाव और शैली ग्रहण की तथा काव्यभाषा के रूप में ब्रज को संस्कृत के ऊपर स्थान दिया। उनका यह प्रयास परवर्ती कवियों के लिए अनुकरणीय बन गया और जैसा की रीति काव्य के कवियों के ऊपर आक्षेप है कि उन्होंने रीतिकाव्य को संस्कृत का उद्धरणी बना कर रख दिया, पर इतना होने के बावजूद भी कवियों ने कविता के भावात्मक और कलात्मक सौन्दर्य को

नई ऊँचाई पर पहुंचा दिया और ब्रजभाषा उसकी वाहक भाषा बनी। ब्रजभाषा की इस देन पर प्रसिद्ध आलोचक विजयदेव नारायण साही का कहना है कि –

''इतना ही नहीं, सूरदास बहुत बड़े कवि हैं, रीति कवियों से बहुत बड़े, लेकिन उनकी कविता में बराबर लगता है कि एक महान प्रतिभा अपने को ब्रजभाषा में अभिव्यक्त कर रही है। जबकि रीतिकाव्य में लगता है कि कवियों से अलग ब्रजभाषा की अपनी प्रतिभा की अभिव्यक्ति हो रही है। 'भाषा की अपनी प्रतिभा' की अभिव्यक्ति ही वह सृजनात्मक स्तरीकरण है जो भाषा को सबकी सम्पत्ति बना देती है।''[9]

साही ने जिस ब्रजभाषा की अपनी प्रतिभा का उल्लेख किया है वह केशव भी पहचानते थे। अतः दरबारी काव्यभाषा के रूप में ब्रजभाषा को हिन्दी क्षेत्र में प्रतिष्ठित कराने का श्रेय निश्चित रूप से केशव को दिया जाना चाहिए जिसने अगले दो सौ वर्षों तक हिन्दी क्षेत्र की प्रमुख काव्यभाषा होने का गौरव हासिल किया।

काव्यशास्त्रीय पद्धति पर काव्य–रचना के सन्दर्भ में केशव ने कृपाराम और हरिराम व्यास से प्रेरणा ग्रहण किया। ये दोनों ही बुंदेलखंड के क्षेत्र में इस शैली में काव्य–निरूपण कर चुके थे। कृपाराम की ***हिततंरगिणी*** का समय 1541 ई0 के आस–पास का माना जाता है जिसमें कुछ–कुछ संस्कृत के आधार पर उन्होंने नायिकाभेदों का परिचय काव्यशास्त्रीय आधार पर दिया है। इसी तरह से हरिराम व्यास जो स्वयं ओरछानरेश के राजगुरू के रूप में प्रसिद्ध हैं इनके काव्य में भी काव्यांग निरूपण की प्रवृत्ति पायी जाती है। केशव के लेखन से पूर्व ही इस तरह की शैली का प्रयोग होने लगा था परंतु वह भक्ति के आवरण में ढँका हुआ था। केशवदास ने इस शैली को काव्य शिक्षा के रूप में लिया और ब्रजभाषा में बिना किसी आवरण के उसे विशुद्ध रूप में प्रस्तुत किया।

केशव की काव्य प्रतिभा का एक क्षेत्र इतिहास के सन्दर्भ में है जो उन्हें युग प्रवर्तक कवि के रूप में प्रतिष्ठित करता है। बुंदेलखंड की साहित्यिक गतिविधियों का सीधा सम्बंध वहां के

राजदरबार से भी था जैसा कि हरिराम व्यास के सन्दर्भ में हम देख सकते हैं। वह तत्कालीन ओरछाधीश के राजगुरू थे जो बाद में हितहरिवंश के शिष्य हो गये और वृन्दावन में जाकर रहने लगे थे। केशव के जन्म से कुछ ही पहले मधुकरशाह (1554–1592) ओरछा के राजा बने थे जो स्वयं भी एक वैष्णव भक्त थे और भक्त कवियों का काफी सम्मान करते थे। उनके समय में राजनीतिक रूप से ओरछा मुगलों का विरोधी रहा और मधुकरशाह कभी अकबर के पक्ष में रहे भी तो ज्यादा दिन तक नहीं। मधुकरशाह ने अपने यहां कई वैष्णव कवियों को आश्रय दे रखा था जिसमें केशव के पूर्वज भी थे। क्षेत्रीय दरबारों द्वारा हिन्दी कवियों को प्रश्रय देने की यह प्रवृत्ति राजा के दान–मान से भी जुड़ी हुई थी। केशव के पूर्वजों को भी राजा द्वारा कई गांव पुरस्कार में मिलने का उल्लेख मिलता है।

इस तरह केशव को राजदरबार के साथ जुड़ाव विरासत में मिला था। बतौर कवि और सलाहकार दोनों रूपों में वह दरबार से जुड़े हुए थे जिसका असर उनकी रचनाओं में बखूबी देखने को मिलता है। उनकी प्रतिनिधि रचना ***रामचन्द्रिका*** है जिसके दरबारी दृश्यों का संयोजन देखकर केशव की राजनीतिक सूझ–बूझ का सहज अंदाजा लगाया जा सकता है। वहीं दूसरी तरफ केशव ने एक नये ढंग का प्रयोग ***वीरसिंहदेव चरित*** में किया है। यह ***रामचन्द्रिका*** से इतर विशुद्ध ऐतिहासिक ढंग पर लिखा गया अनोखा चरितकाव्य है जो अपने समसामयिक विषय को आधार बनाकर लिखा गया। आदिकालीन वीरगाथात्मक काव्यों से प्रेरणा ग्रहण करते हुए भी कवि ने उसे ऐतिहासिक स्वरूप में प्रस्तुत किया है और राजनीति को श्रृंगार के आवरण से मुक्त रखने के अपने प्रयास में सर्वथा सफल रहा है। प्रबंधशास्त्र के काव्यशास्त्रीय प्रतिमानों पर खरा न उतरने के कारण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल उसे काव्य मानने से ही इन्कार कर देते हैं[10] परंतु जैसा कि हम जानते हैं कि आचार्य शुक्ल रीतिकाल के घोर आलोचक रहे हैं और उसमें भी केशव के काव्य की कड़ी आलोचना उन्होंने की है। मानस के आधार पर विकसित उनकी आलोचना दृष्टि केशव को हृदयहीन कवि कहने में भी संकोच नहीं करती। परंतु तुलसी और केशव की तुलना यहां बेमानी है जैसा कि डॉ. विजयपाल सिंह दोनों की तुलना के प्रश्न पर लिखते हैं –

''निसन्देह हम रामचन्द्रिका को रामचरितमानस के समकक्ष नहीं रख सकते। किन्तु हमें ध्यान रखना चाहिए कि रामचन्द्रिका और रामचरितमानस दो भिन्न कोटि के महाकाव्य हैं।..... रामचन्द्रिका दरबारी काव्य है। इसी कारण प्रभावोत्पादन एवं चमत्कार के प्रति कलाकार की जागरूकता है। विश्व साहित्य का इतिहास उठा लीजिए कोर्ट और कुटिया के काव्य में कला की जागरूकता और अजागरूकता का अन्तर मिलेगा।.....सत्य बात तो यह है कि ओरछा के रजत आसनों पर बैठकर सम्मान के भारों से बोझिल मस्तिष्क सदा रामचन्द्रिकाएं ही लिखते आये हैं और सुर–सरिता के पावन तट पर रामानन्दी तिलक लंगोटी लगाकर रामचरित मानस। न ओरछा में तुलसी मानस लिख पाते, न काशी में केशव की कलम चन्द्रिका।''[11]

## 2.2 ओरछा राजदरबार और तत्कालीन राजनीतिक परिदृश्य

सन् 1531 ई0 में बुन्देलखण्ड में एक नई घटना घटी। बुन्देल राजा रूद्रप्रताप ने अपनी राजधानी को गढ़कुण्डार से ओरछा में स्थापित किया। गढ़कुण्डार की अपेक्षा ओरछा एक शान्त भौगोलिक प्रदेश था। यह नवीन राजधानी बेतवा नदी के किनारे अवस्थित है। रूद्रप्रताप के राज्यकाल में बुन्देल अपना शासन सूत्र गढ़कुण्डार और ओरछा दोनों से चलाते रहे। बाद में ओरछा बुन्देलों की शक्ति का केन्द्र बन गया और अगले 150 वर्षों तक बुन्देलों की प्रमुख राजधानी बना रहा जब–तक कि छत्रसाल ने बुंदेल राजनीति का केन्द्र पन्ना राजदरबार में न बदल दिया। रूद्रप्रताप बुन्देला राजाओं में सर्वाधिक योग्य शासक था जिसने जिसने बुन्देलखंड की सीमाओं का विस्तार कालिंजर से कालपी तक कर लिया था। उसकी राजनीतिक सफलता का एक प्रमाण यह भी है कि उसके बाद के सभी बुन्देल शासक अपनी उत्पत्ति रूद्रप्रताप से ही मानते हैं।[12]

राजा रूद्रप्रताप के बाद उसका उत्तराधिकारी भारतीचन्द ओरछा का शासक बना। इसके निःसन्तान मृत्यु प्राप्त करने के फलस्वरूप इनका भाई **मधुकर शाह ओरछा की गद्दी पर बैठे।**(1554–1592) जिसे केशव ने बुंदेल वंश परम्परा में बड़े सम्मान के साथ याद किया है।[13]

मधुकरशाह जब गद्दी पर बैठा तभी भारत में साम्राज्य परिवर्तन हो चुका था और हूमायुँ अपने साम्राज्य को स्थिर करने के लिए संघर्ष कर रहा था। संयोग से जल्दी ही उसकी मृत्यु हो गयी और उसका नाबालिग पुत्र अकबर दिल्ली की गद्दी पर बैठा। मधुकरशाह इस बीच अपने क्षेत्र में विस्तार की नीति को अपनाये रहा और जब–तक अकबर बैरम खां और हरम के प्रभाव से मुक्त होकर अपनी साम्राज्यवादी नीतियों को संगठित रूप से क्रियान्वित करने की ओर गंभीरता से अग्रसर हुआ तब–तक बुन्देलखंड में मधुकरशाह की स्थिति काफी मजबूत हो चुकी थी। अकबर ने अपनी राजधानी दिल्ली से आगरा में स्थानान्तरित कर लिया। अब बुन्देलखंड और आगरा में विशेष दूरी नहीं रह गयी थी। अकबर की शाही सेनाएं बुन्देलखंड के क्षेत्रों में आवाजाही करती रहती थी जो मधुकरशाह के क्षेत्र विस्तार को प्रभावित कर रही थी फलस्वरूप दोनों में संघर्ष अनिवार्य था। केशवदास ने भी ***वीरसिंहदेवचरित*** में यह सूचना दी है कि मधुकरशाह की कई बार मुगल सेनाओं के साथ झड़प हो चुकी थी। इन युद्धों में कई बार मधुकरशाह कूटनीति के तहत मुगलों से समझौता कर लेते थे तो कई बार नहीं भी करते थे।

## *2.3रतनबावनी* की रचना और केशव की ऐतिहासिक दृष्टि

केशवदास की ***रतनबावनी*** इस दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण रचना है। केशव इस रचना के साथ ही दरबारी कवि के रूप में पदार्पण कर रहे थे। हालांकि इसमें ***वीरसिंहदेवचरित*** की तरह विस्तार से ऐतिहासिक घटनाओं का संयोजन नहीं हुआ है। रतन बावनी 1601 से 1607 के बीच लिखी गयी रचना है। यह कृति पुस्तकाकार रूप में पहली बार सन् 1917 में टीकमगढ़ प्रेस से छपी थी।[14] और यह मधुकरशाह के पुत्र रतनसिंह के मुगलों के साथ हुए मुठभेड़ में रतनसिंह द्वारा वीरतापूर्वक लड़े गये युद्ध उसके वीरगति पाने का काव्यात्मक अभिलेख है। यह कृति एक दरबारी कवि के रूप में केशवदास के कवि व्यक्तित्व के नए मनोभूमि के निर्मित होने का पहला संकेत देता है। इस काव्यग्रंथ में केवल 52 छंदों में कवि ने दो पक्षों के क्षेत्र विस्तार के संघर्ष में युद्ध की अनिवार्यता और उसके परिणामस्वरूप एक वीर युवा के मृत्यु वरण का मार्मिक चित्र खींचा है। अकबर और मधुकरशाह दोनों ही महत्वाकांक्षी शासक थे। अतः क्षेत्र में

अपने प्रभाव विस्तार के लिए युद्ध एक अवश्यंभावी घटना था। इतिहास में यह घटना एक छोटी सी सूचना भर प्रदान कर सकती है लेकिन कवि इसे उससे अधिक महत्व दे सकता है। हालांकि केशव ने भी इस घटना के घटित होने का निश्चित समय नहीं दिया है लेकिन कवि की रचना के आधार पर इस घटना के समय का अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है। हिन्दी अध्येताओं ने इस रचना के लिखे जाने के समय का अनुमान 1601 से 1607 के बीच लगाया है। इस समय केशव वीरसिंह के दरबार में आ सम्भवतः आ गये थे क्योंकि इसके अगले ही समय में वह वीरसिंह की रचना की सूचना हमें देते हैं।[15] इसके अलावा इतिहास ग्रंथों से कुछ सूचना हमें मिल जाती है जैसे एलिसन बुश्च ***मआसिरूल उमरा भाग दो*** की सूचना के आधार पर इस बात की तस्दीक करती हैं कि मधुकरशाह के समय में 1570 के आखिरी वर्षों तथा 1580 के दशक के शुरूआती वर्षों में ओरछा अकबर के निशाने पर आ चुका था और वहां संघर्ष की स्थितियां बननी शुरू हो चुकी थी।[16] तो निश्चित रूप से यह घटना उन्हीं वर्षों में घटित हुई होगी। वस्तुतः केशव के लिए समय की निश्चितता उनकी कविता के उद्देश्य के लिए कोई बहुत आवश्यक महत्व नहीं रखती इसीलिए उन्होंने इसका ध्यान नहीं रखा। कविता में दी गयी सूचना के आधार पर यह पता चलता है कि मधुकर शाह ने रतनसेन को इस युद्ध के लिए भेजा था अतः यह निश्चित है कि उसी के समय में अकबर द्वारा ओरछा की चढ़ाइयों के समय किसी वक्त रतनसेन मुगल सेना के विरूद्ध भेजा गया होगा। यह रचना ***वीरसिंहदेवचरित*** से थोड़ी अलग शैली का अनुसरण करती दिखायी देती है। केशव ने इसमें रासो और संस्कृत की काव्यशैली का अनुसरण किया है जिसका मुख्य उद्देश्य वीरता का आख्यान रचना है। अपने इस दृष्टिकोण में वह पूरी तरह से खरे उतरे हैं।[17]

इतिहास की एक छोटी सी घटना को पौराणिक तत्वों से जोड़ते हुए रतनसिंह के युद्ध प्रयाण और उसके वीरोचित कर्तव्य के पीछे के केशव के राजनीतिक अभिप्रायों को गहराई से देखने पर पता चलता है कि उन्होंने प्रशस्ति के बहाने बुंदेलखंड क्षेत्र के सन्दर्भ में प्रतिष्ठा और वर्चस्व के संघर्ष को बड़ी बारीकी से रच रहे थे। यह भविष्य में और तीव्रतर होने वाला था क्योंकि बुंदेलखंड आगरा से बहुत अधिक दूरी पर नहीं था और अकबर के लिए अपने साम्राज्य

के केन्द्र के पास ही एक स्वतंत्र सत्ता का होना उसके राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति में बाधक बन सकता था। इसके साथ ही बुदेलखंड के सन्दर्भ में क्षेत्रीय स्वतंत्रता की भी बात थी जो नये संगठित बुंदेलों के लिए एक बुनियादी जरूरत थी।

केशव ने रतनसिंह के मुगलों के साथ युद्ध प्रयाण के समय उसके आराध्य राम द्वारा उसको एक विप्र के रूप में दर्शन दिलवाने का संयोजन किया है जो उसे युद्ध की परिणति के सन्दर्भ में आगाह करता है। इस संयोजन के पीछे केशव द्वारा रत्नसेन की छोटी सेना के बरक्स मुगलों की सुसंगठित सेना से युद्ध के लिए सन्नद्ध दिखाना तथा रत्नसेन द्वारा अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए किसी से भी युद्ध करने की उसकी प्रवृति को दिखलाना था। बुंदेलों में यह प्रवृत्ति कूट–कूट कर भरी हुई थी जिसे हम बुन्देलों के विद्रोहों के रूप में आगे के इतिहास में बखूबी देख सकते हैं।[2]अपनी इसी प्रवृत्ति के कारण बुदेल भारतीय इतिहास में राजपूतों की भांति एक अलग छाप छोड़ पाने में कामयाब रहे और अपनी क्षेत्रीय अस्मिता के लिए अपने से ताकतवर शक्तियोंसे भीमुठभेड़करते रहे।

केशव ने एक छंद में रतनसिंह को युद्ध की भयावहता का वर्णन कर उसे युद्ध से विरत करने के लिए राम को एक विप्र के रूप में रतनसिंह के पास जाने का उल्लेख किया है। राम रूपी विप्र रतनसेन को समझाता है और उसे अपनी रक्षा करने के लिए कहता है। रतनसेन उत्तर देता है कि वह राम का वंशज और मधुकर शाह का पुत्र है अतः वह युद्ध से नहीं हटेगा चाहे उसकी परिणति कुछ भी हो। वस्तुतः केशवदास ऐसे युद्ध की परिणति को समझते थे और रतनसेन द्वारा मृत्यु के प्राप्त होने की परिस्थितियों का संकेत भी उन्होंने दे दिया है। रतनसेन ने एक छोटी सी आयु पायी और अपनी मातृभूमि की सीमाओं की रक्षा करते हुए वह वीरगति को प्राप्त हुआ। कवि के लिए इस रचना में इतना ही कहना अभीष्ट था इसीलिए वीरसिंह के काव्य की अपेक्षा केशव ने इस रचना को संक्षिप्त ही रखा है और इसके **ऐतिहासिक पक्ष पर जोर न देते हुए एक वीर प्रशस्ति के रूप में इसकी रचना की है।** किन्तु केशव के इसी प्रयास

[2]वीरसिंह के पुत्र जुझारसिंह से यहां आशय है। उसने शाहजहां के शासनकाल में विद्रोह किया था।

से उनके समसामयिक राजनीति के प्रति उनकी सजग दृष्टि की एक झलक हमें अवश्य मिल जाती है अन्यथा वीर की प्रशस्ति के लिए रतनसेन की अपेक्षा कई चरित्र केशव के सामने रहे होंगे जिनमें से वो किसी को चुन सकते थे और काव्य रचना कर सकते थे। एक चरित्र तो स्वयं अकबर ही था लेकिन केशव की दरबारी निष्ठा ओरछा राज्य के प्रति थी जिसके प्रति वह अंत तक निष्ठावान बने रहे। केशव की निष्ठा को इस तथ्य से भी परखा जा सकता है कि जब–तक उनके शासक मुगलों के विरोधी रहे तब–तक केशव के काव्य में मुगल ही विरोधी रहे और जब उनके शासकों की निष्ठा मुगलों के प्रति बदल गयी और तब केशव ने मुगल सम्राट जहांगीर पर एक प्रशस्ति काव्य रचा।

यह तथ्य इस मायने में भी महत्वपूर्ण है कि केशव को छोड़ किसी भी बड़े कवि ने मुगल सम्राटों पर कोई उल्लेखनीय काव्य नहीं रचा। अकबर के दरबार के किसी भी कवि ने ऐसी प्रशस्तियां नहीं रची जबकि उनके दरबार में ब्रजभाषा के कई कवि रह रहे थे।इसके विपरीत क्षेत्रीय दरबारों में रहने वाले कवियों ने अपने आश्रयदाताओं पर प्रभूत मात्रा में प्रबंधकाव्य लिखे। स्वयं केशवदास ने मुगलों के एक छोटे सामन्त पर पूरा एक प्रबन्धकाव्य ही लिखा जो ***वीरसिंहदेवचरित*** नाम से प्रसिद्ध है।

### *2.4 वीरसिंहदेवचरित की रचना और केशवदास*

वीरसिंह के दरबार में रहने से पूर्व केशवदास महाराजा इन्द्रजीत सिंह के दरबारी कवि थे और उन्हीं की प्रेरणा से उन्होंने ***रसिकप्रिया, कविप्रिया और रामचन्द्रिका*** जैसे ग्रंथों का प्रणयन किया। महाराजा इन्द्रजीत सिंह मधुकरशाह के आठ पुत्रों में से एक थे और वीरसिंह के भाई थे। मधुकर शाह ने अपनी मृत्यु से पहले ही अपने आठों पुत्रों में अपने राज्य को बाँट दिया था जिसके तहत इन्द्रजीत सिंह को कछौवा की जागीर मिली थी। सन् 1607 में केशवदास वीरसिंह के दरबार में आ गये थे जब उन्होंने ***वीरसिंहदेवचरित*** की रचना की। रामचन्द्रिका से अलग शैली पर आधारित इस कृति का स्वरूप विशुद्ध ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित है

और जैसाकि केशवदास हमें सूचित करते हैं कि यह रचना वीरसिंह के चरित्र का प्रकाश या उसके चरित्र को उद्घाटित करने के लिए उन्होंने लिखी है।ओरछा राजदरबार में केशव न सिर्फ एक कवि, गुरू और सलाहकार के रूप में हैं बल्कि वे एक कवि इतिहासकार के रूप में भी दिखायी पड़ते हैं। केशवदास से पहले संस्कृत के कुछ कवि इस तरह के चरित आख्यानों का प्रयोग तत्कालीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में कर चुके थे जैसा कि हम पहले अध्याय में देख चुके हैं। किन्तु उन सबकी अपेक्षा केशव इस रचना में घटनाओं का वर्णन क्रमबद्धता एवं निरंतरता का ध्यान रखते हुए करते हैं। परन्तु घटनाओं के समय का उल्लेख वह नहीं करते फिर भी उनके द्वारा प्रदत्त सूचनाएं तत्कालीन इतिहास के सन्दर्भ में सत्य हैं जिनकी तत्कालीन ऐतिहासिक स्त्रोतों से भी पुष्टि हो जाती है।

***वीरसिंहदेवचरित*** एक प्रबंधकाव्य है। एक प्रबंधात्मक कृति में विषय विस्तार की पूरी गुंजाइश रहती है जिसमें प्रबंधकर्ता अपने मनोनुकूल तथ्यों को जुटाकर विस्तारपूर्वक उसका वर्णन कर सकता है। ऐतिहासिक चरितावलियों में ऐतिहासिक तथ्यों को आधार बनाकर काव्य रचनाएं लिखने का प्रचलन संस्कृत काव्य में प्राचीन काल से ही प्रचलित था जिसकी परम्परा से केशव अनभिज्ञ नहीं थे। ऐसी रचनाओं के लिए प्रायः काव्य रूढ़ियों का भी प्रयोग होता आया था जो केशव में भी दिखायी देता है। दान–लोभ, विप्र उवाच, मिथकीय कहांनियां जैसे प्रयोग उदाहरणस्वरूप हैं। हिन्दी में देखें तो ऐसे प्रयोग रासो काव्यों में मिल जायेंगे। इन्हीं चरितकाव्यों से प्रेरणा ग्रहण कर केशव वीरसिंह के चरितगान के लिए ऐसी रचना के लिए प्रवृत्त हुए। इस प्रबंध रचना का संक्षेप में विवरण देना आवश्यक है जो इस प्रकार है –

केशव ने वीरसिंह के चरित्र को संवत 1663 के बीत जाने पर 1664 में अनल संवत्सर बसंत ऋतु में बुधवार को इस ग्रंथ की रचना का उल्लेख किया है–

*''संवत् सोरह से त्रैसठा,*
*कीनो वीरचरित्र प्रकास।''*[18]

इसके सम्बंध में केशव इसके स्वयं प्रमाण रहे है। वीरसिंह का वंश परिचय देते हुए पौराणिक सम्बंध जोड़ते हुए कवि ने उसे इस तरह से बताया है –

'जब प्रभु श्रीराम सारे जग का कार्य समाप्त कर बैंकुण्ठ जाने लगे तब कुश को राज–पाट सौंप दिया। उनके जाने से अयोध्या उजाड़ हो गई और सभी लोग राम के साथ बैकुण्ठ चले गए। इसके कुल में एक कुमार उत्पन्न हुआ जिसके गुणों को देखकर उसे राज–पाट उसने सौंप दिया। वह वीरभद्र कहलाया उनके पुत्र कर्णतीरथ हुए। कर्णतीरथ के पुत्र अर्जुनपाल हुए। अपने पिता से रूठकर अर्जुनपाल महानी नगरी में आये और उसे अपनी राजधानी बनाया। उनके पुत्र सोहनपाल थे जिन्होंने गढ़कुण्डार को जीता था। सहजइन्द्र उनके पुत्र हुए उनके पुत्र मैनगद्य। इनके दो पीढ़ी पश्चात पृथ्वीराज हुए जिनके पुत्र मेदिनीराय थे। आगे चलकर इनके वंश में ही मलखान सिंह एवं वीरसिंह राजा हुए जिनके एक पुत्र प्रतापरूद्र हुए। इन्होंने ही ओरछा नगर बसाया। इन्हीं के पुत्र मधुकरशाह हुए जिन्होंने अनेक मुस्लिम शासकों से युद्ध किए जिसमें न्यामतिखान, अली कुली खाँ, सैद खान, अब्दुल्ला खां जैसे लोग थे। इन्हीं मधुकरशाह से मुरादशाह भी हारा था जो अकबर का एक बेटा था। अकबर के अधिकारियों से मधुकरशाह हमेशा युद्धरत रहते थे। इसी मधुकरशाह के 8 बेटे हुए जिसमें से एक वीरसिंह बुन्देला था। उनके आठों पुत्रों के नाम निम्नवत हैं –रामशाह, होरिल राय, नरसिंह, रतनसेन, इन्द्रजीत, रावप्रताप, वीरसिंह, रनसिंह'।

इस लंबे वंश परिचय में केशव ने पौराणिक काल से लेकर वीरसिंह बुन्देला के पुत्रों तक का वंश परिचय प्रस्तुत किया है और द्वितीय अध्याय यहाँ समाप्त हो जाता है।

### 2.4.1बड़ौन की जागीर एवं वीरसिंह की महत्वाकांक्षा–

तृतीय अध्याय में मधुकरशाह द्वारा वीरसिंह को बड़ौन की जागीर दिए जाने का उल्लेख है –

*''मुधकरसाहि महीप मनु राखि प्रेम के मौन।*

*वीरसिंह को वृत्ति के बैठक दयी बड़ौन।।''*[19]

केशवदास ने इस अध्याय में सूचित किया  है कि जब बड़ौन में वीरसिंह बुंदेला को जागीर मिली तो यह जानकर वहाँ के शेख भाग गए। उन लोगों में उसका खौफ समा गया और वे सब वहाँ से भाग खड़े हुए। वीरसिंह को बड़ौन की जागीर से संतुष्टि नहीं थी और वह अपने लिए बड़ी जागीर चाहता था। अतः उसने अपने आस–पास के इलाकों को जीतना शुरू कर दिया। उसकी इन विजयों की सूचना अकबर को मिली तो उसने वीरसिंह को रोकने के लिए आसकरन को तुरंत अपने दरबार में बुलवाया। आसकरन और रामशाह (उस समय ओरछा के राजा रामशाह ही थे)दोनों को अकबर ने वीरसिंह की गतिविधियों पर रोक लगाने के आदेश दिए। दोनों ही वहां से उसे रोकने के लिए एक साथ वीरसिंह के इलाके की तरफ गए। वीरसिंह देव की ओर  से उसके दो और भाई इन्द्रजीत और रावप्रताप उसके साथ थे। कई दिनों तक घेरा पड़ा रहा लेकिन कोई हल नहीं निकला। तब जगमणि ने आसकरण को जाकर कहा कि ये चारों भाई हैं अतः यह युद्ध जीतना मुश्किल हो रहा है। आसकरण यह सब सुनकर क्रोध में रामशाह के डेरे पर गया और उस पर अपने भाई के प्रति दयालु होने का संदेह व्यक्त किया। तब रामशाह को बहुत बुरा लगा और उसने युद्ध और तेज कर दिया। इस युद्ध में रामशाह का मंत्री मायासिंह मारा गया। उसकी मृत्यु को सुनकर रामशाह बहुत कुपित हुआ। दोनों पक्षों में युद्ध और भी तेज हो गया। केशव के अनुसार वीरसिंह के प्रताप से युद्ध का परिणाम उसके पक्ष में रहा।

### 2.4.2 संघर्ष की समाप्ति एवं उसके परिणाम

अब्दुल रहीम खानखाना[3] की कूटनीति : इधर अकबर के दरबार में दक्षिण से बैरम खाँ के पुत्र प्रसिद्ध कूटनीतिज्ञ अब्दुर्रहीम खानखाना आए हुए थे। वीरसिंह की महत्वाकांक्षा को भांपते हुए उन्होंने उसे साम्राज्य से दूर अपने साथ दक्षिण ले जाने का प्रयत्न किया। वीरसिंह देव भी तत्काल अकबर से बैर नहीं मोल लेना चाहता था अतः दक्षिण जाने के लिए तैयार हो गया –

*''दक्षिण दिसि को कियो पयान। वीरसिंह ले संग सुजान।।'*[20]

केशव ने अब्दुर्रहीम खानखाना के दक्षिण प्रयाण का सजीव वर्णन किया है। वहाँ का भौतिक क्षेत्र भी उनके वर्णन के दायरे में आया है –

*''लुके भूड़ भाना गयी आसमाना, बड़े विंध्यसाना भए धूरि धाना।*
*तला तोयमाना भए सुख्खमाना, कलंगी बिठाना, तिलंगी न ठाना।*
*सुविद्यानिधाना तजें खानखाना, करैं जातुधाना पलानी पलाना।*
*उगे ठानठाना सुदिग्देवताना, हलैं क्षत्र नाना, चलै खानखाना।''*[21]

बरार के निकट पहुँचकर वीरसिंह ने खानखाना से बड़ौन जाने की अनुमति चाही। उसका कहना था कि वह बादशाह की वहीं रहकर सेवा करना चाहता है। परन्तु खानखाना ने दक्षिण में रहने के लिए उसे प्रलोभन दिया और कहा कि वे दक्षिण में उसका मुँहमाँगी चीजें देंगे। परन्तु वीरसिंह बड़ौन वापस आना चाहता था। अपने भाइयों के साथ मिलकर वह सभी भोर में ही वहाँ से निकल पड़े। उनके वापस आते ही मुगल थाने के लोग भाग खड़े हुए एवं नवाब को उसकी चिंता हुई और वहाँ एक और युद्ध की स्थिति फिर से बन गई। रामशुपाल, इन्द्रजीत, रावप्रमाप और वीरसिंह चारों एक होकर नवाब से युद्ध करने गए। दौलत खाँ की हार हुई एवं वह दक्षिण चला गया। संग्रामशाह को अपना नतीजा जानकर उसकी जागीर वीरसिंह ने देखी।

***वीरसिंहदेवचरित*** के चौथे अध्याय में अकबर के दक्षिण जाने का जिक्र है। इसी बीच अकबर के पुत्र मुराद की आकस्मिक मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु का समाचार सुनकर राजाराम अकबर से मिलने आगरा

[3]ये हिन्दी के प्रसिद्ध कवि रहीम हैं जो अकबर के संरक्षक बैरम खां के पुत्र थे। बैरम खान के पतन के पश्चात् अकबर ने इन्हें अपने पुत्र की तरह पाला था। साम्राज्य के महत्वपूर्ण सैन्य अभियानों में ये मुगल सेनानायक बनाकर इनको भेजा जाता था। केशव की सूचना के अनुसार ये तब दक्षिण में नियुक्त थे। हिन्दी साहित्य में रीतिकालीन नीतिकाव्य के यह प्रमुख रचनाकार है।

पहुँचा। वहाँ पर वीरसिंह का शासन सुनकर अकबर को बहुत क्रोध आया। तब राम कछवाहा वीरसिंह से अकबर से मेल–मिलाप करने का प्रस्ताव दिया। यह सब देखकर वीरसिंह अकबर से मिलने पहुँचा। वीरसिंह के मेल–मिलाप कर लेने से रामशाह भी निश्चिंत हुआ। **अकबर के साथ उसकी मुगल सेना के शिविर का वर्णन** कवि ने इस प्रकार किया है –

*''देस–देस के राजा घनै। मुगल पठाननि को गनै।।*
*जहां तहां गज गाजत घने। पुरवाई के जनु घन घनै।।*
*चौपद दुपद कहां लौं कहौं। कहन चहौं तौ अंत न लहौं।।*
*मारग एक चलेई जात। एक देखियै पीवत खात।।*
*उलहत ऊंट एक देखियै। लादत साज एक पेखिए।।*
*एकन तंबू दियो गिराइ। रखत उठावत एक बनाइ।।*
*बनिक चलत इक लादि अपार। एकन के बैठे बाजार।''*[22]

अर्थात् मुगल सेना में हर देश के राजा थे। जब बादशाह का शिविर चलता था तो उसमें घोड़े, हाथी, ऊँट की गिनती को कहा नहीं जा सकता। एक शिविर पड़ता था तो दूसरा उठ जाता था। बनिये सदैव सेना के साथ चलते थे जहाँ भी पड़ाव पड़ता था वहाँ वे बाजार लगा देते थे। अकबर जब अपनी सेना के साथ बड़ौन पहुँचा तब उसने पाया कि वीरसिंह ने सम्पूर्ण क्षेत्र को वीरान बना दिया है और स्वयं किसी सुरक्षित जगह पर चला गया है। इस घटना से अकबर बहुत क्रुद्ध हुआ। रामशाह के सामने फिर विपत्ति आ पड़ी। एक तरफ परिवार तो दूसरी तरफ बादशाह। रामशाह ने अकबर को विश्वास दिलाया कि वह वीरसिंह को समझा–बुझाकर अकबर के समक्ष लायेगा। अकबर ने उसे धमकी भरे शब्दों में कहा कि अगर वह ऐसा करने में सफल न हुआ तो अंजाम बुरा होगा –

*''जो तू बचि है भैया जानि। मेरो वचन सत्य करि मानि।।*
*जितने भूमि बुंदेला जीव। सबहिं को करि हों निर्जीव।।''*[23]

वीरसिंह पर दबाव डालकर उसे बादशाह के पक्ष में करने की कोशिश की गई परन्तु ऐसा संभव नहीं हो सका। एक बार फिर युद्ध की स्थिति बन गई। रामशाह ने राजसिंह को वीरसिंह से लड़ने के लिए भेजा। रात में हमला हुआ परन्तु वीरसिंह की नींद खुल जाने से मुगलों के वह हाथ नहीं लग सका। कवि ने मुगल सेना में मची भगदड़ का जिक्र करते हुए लिखा है –

*''अदौरिया, जागरा अपार। जादव बड़गूजर तिहिं बार।।*
*कौन गनै सुभटन को साज, जूझे जूझ तहां जुबराज।।'*[24]

### 2.4.3 वीरसिंह और शहजादा सलीम की भेंट –

अकबर के दक्षिण प्रयाण के पश्चात् मुगल साम्राज्य को एक नई समस्या का सामना करना पड़ा। वह समस्या थी **शहजादे सलीम का साम्राज्य के लिए विद्रोह**। हालांकि अकबर का उत्तराधिकारी शहजादा सलीम ही था क्योंकि अकबर के अन्य पुत्र असमय मृत्यु का शिकार बन गए थे किन्तु शहजादा सलीम साम्राज्य के लिए अत्यंत लालायित हो चुका था। अतः उसने अपने पिता अकबर के विरूद्ध विद्रोह का झंडा गाड़ दिया। वह उस समय इलाहाबाद के किले में शरण लिए हुए था और लगातार अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए अकबर के विरोधी राजाओं को अपनी तरफ मिलाने का प्रयास करने में लगा हुआ था। इसी समय वीरसिंह बुंदेला भी मौके की तलाश में भटक रहा था जो उसे उसकी महत्वाकांक्षाओं को पूर्ण करने में सहयोग दे सकता था। वीरसिंह के साथी गोविन्ददास ने उसे सुझाव दिया कि चूंकि शाही परिवार में पिता–पुत्र में फूट पड़ चुकी है तो तुम सलीम से मिल लो। चूंकि सलीम मुगल साम्राज्य का होने वाला बादशाह था तो उनके साथ रहने में कोई हानि नहीं है। दूरदर्शी वीरसिंह को इस

सुझाव में दम नजर आया और वह सलीम से मिलने इलाहाबाद पहुँच गया। सलीम और वीरसिंह के मिलन को कवि ने कुछ इस तरह से चित्रित किया है –

''साहिसभा जब गयो नरिंदु। सूरजमंडल में मनु इंदु।।
देखत सुख पायौ सुलतान। ज्यौं तन पायो अपने पान।।
कै तसलीम गहे तब पाय। उमग्यो आनंद अंग न माय।।''[25]

शहजादा सलीम तो इसी ताक में बैठा था उसका काम बना देने वाला एक समर्थक हो। यह मौका उसे वीरसिंह ने दे दिया। **वीरसिंह से सलीम ने कहा कि साम्राज्य में उसका केवल एक ही बैरी है वह अकबर का परम मित्र अबुल फजल है।** सलीम को लगता था कि अकबर और उसके खराब रिश्तों की वजह वही है। अतः उसके खात्मे से उसकी समस्या हल हो जायेगी। उसने वीरसिंह को उसकी हत्या के लिए उकसाया –

*''तामें एकै बैरी लेख। अब्बुलफजल कहावै सेख।।*
*वह सालत है मेरे चित्त। काढ़ि सकै तौ काढ़हि मित्त।।*
*पकरि लेहु के डारो मारि। मेरो हेत दिए निरधारि।।''*[26]

केशव के अनुसार वीरसिंह ने इसके लिए उसे समझाया किन्तु सलीम के दबाव के आगे झुककर वह अबुल फजल की हत्या के लिए निकल पड़ा। अपने सूत्रों से उसे पता चला कि अबुल फजल बादशाह से मिलने दक्षिण से आगरा आ रहे हैं तो रास्ते में ही वीरसिंह ने उनकी हत्या कर दी और शेख का सिर काटकर सलीम के पास पहुँचा दिया –

*''लैं सिर कुंवर बड़ौनहि गए''*[27]

अबुल फजल अकबर के नवरत्नों में से एक एवं उसका परम मित्र भी था। उसकी मृत्यु का समाचार सुनकर अकबर बहुत दुखी हुआ। यह जहांगीर और वीरसिंह का एक जघन्य कुकृत्य था और इससे अकबर को बहुत आघात पहुँचा था। एक विद्वान की हत्या से पूरे दरबार में शोक छा गया –

*'सुनते साहि ह्वै आगे अधीर,*

*परे धरनि सुधि विगत सरीर।*

*सबही हाइ हाई ह्वै रही।*

*पूरि रही सब आँसुनि मही।*

*अति निहसब्द भयौदरबार।*

*पवन हीन ज्यों सिन्धु अपार।''*[28]

अकबर ने आदेश दिया कि वीरसिंह बुंदेला को जीवित पकड़कर लाया जाए। उसने इन्द्रजीत सिंह को कछौवा और बड़ौन की जागीरदारी सौंप दी। सभी राजा वीरसिंह को ढूंढने के लिए सेना लेकर निकल पड़े।

शहजादा सलीम के पास जब यह खबर मिली कि वीरसिंह को ढूंढने के लिए मुगल सेना निकल गई है तब उसने वीरसिंह को अपने इलाके से निकलकर कहीं दूर चले जाने को कहा। वीरसिंह वहाँ से ऐरछ की तरफ चला गया। वहाँ भी मुगल सेना पहुँच गई किन्तु वीरसिंह हाथ नहीं लगा। मुगल सेना के वापस लौट जाने पर वह पुनः सलीम के पास पहुँच गया। इधर उसको न पकड़ पाने की वजह से इन्द्रजीत सिंह को तिपुर का भय सताने लगा। तब केशवराय कवि ने आगरा में अकबर के दरबार में जाकर इन्द्रजीत सिंह को भय से मुक्त कराया –

''पग–पग पेलि तिपुर को त्रास।गये आगरे 'केसौदास'।।''[29]

यहाँ केशवदास ने अपना जिक्र किया है कि उन्होंने अपने शासक इन्द्रजीत सिंह को किस तरह से मिलकर उसे सम्राट से भयमुक्त कराया। उन्होंने बतलाया है कि अकबर उनसे मिलकर प्रसन्न हुआ और उसने केशव को प्रभूत दान–दक्षिणा देकर विदा किया।

**सातवें अध्याय** में केशवदास ने **वीरसिंह की पारिवारिक कलहों का वर्णन** किया है। वीरसिंह दतिया में आकर बस गया था। इस बीच मुगल सेना की उससे कईझड़पें हुई जिसमें वीरसिंह मुगल सेना को छकाता रहा। इस बीच अकबर ने सलीम और वीरसिंह को अलग करने का भी प्रयास किया लेकिन उसे सफलता नहीं मिली। अकबर को वीरसिंह के भड़काऊ क्रियाकलापों से सदेव परेशानियां होती रही। लेकिन सलीम के कारण वह कोई कठोर निर्णय नहीं ले

सका। इस समय बुंदेलों की घरेलू राजनीति में बहुत उथल–पुथल मची हुई थी जिससे अकबर अब हर हाल में निपटना चाहता था। उसने वीरसिंह के भाई इन्द्रजीत सिंह को ओरछा का राजा बनाकर इस समस्या को निपटाना चाहा लेकिन इन्द्रजीत सिंह घरेलू कलहों की वजह से पीछे हट गया। अब अकबर ने तिपुर को बुलाकर यह प्रस्ताव रखा और वीरसिंह और सलीम को वश में करने का आदेश दिया। अकबर की इस नई चाल से बुंदेलों की राजनीति में बहुत उथल–पुथल मच जाती और घरेलू कलह और भी बढ़ जाते लेकिन बुंदेले इस मुसीबत से बच गए क्योंकि तभी अकबर की माँ मरियम–उज–जमानी की मृत्यु हो गई।

एक बार फिर अकबर शोक में डूब गया। इधर सलीम भी अपनी दादी की मृत्यु की खबर सुनकर आगरा जाने के लिए बेचैन हो गया। उसके साथ के लोगों ने भी उसे सुझाव दिया कि यही वक्त है जब वह दरबार में जाकर अकबर से मिले और उससे मेल–मिलाप कर ले। वीरसिंह ने भी इस बात का समर्थन किया और विश्वास दिलाया कि वह सलीम के लिए कुछ भी करने के लिए तैयार है। केशव ने इसका जिक्र किया है कि सलीम के आगरा पहुँचने पर बादशाह अकबर ने उसे बहुत दुख दिया –

''साहि सलेम साहि पै गए।
साहि बहुत तिनको दुख दयो।''[30]

सलीम के वापस आगरा जाने पर वीरसिंह ओरछा लौट गया।

### 2.4.4 जहाँगीर सिंहासनारोहण एवं बुंदेलों में उत्तराधिकार युद्ध–

मुगल साम्राज्य को राजनीतिक और प्रशासनिक स्थिरता प्रदान करने के पश्चात् मुगल साम्राज्य का महान बादशाह सन् 1605 ई0 में मृत्युको प्राप्त हो गया। तत्पश्चात् शहजादा सलीम मुगल साम्राज्य का नया बादशाह बना। जहाँगीर ने गद्दी पर बैठते ही वीरसिंह को ओरछा से बुलाया और मुँहमाँगी जगह माँगने का आदेश दिया–

*''सकल बुंदेलखंड है जितो।*

*तुझको मैं दीनौ है तितों।।''*[31]

किन्तु वीरसिंह ने केवल बुंदेलखंड माँगा। आगरा से लौटकर वीरसिंह अपने बड़े भाई रामशाह से मिला। उसने सभी परिवार वालों के साथ मिल–जुलकर रहने की बात कही। वीरसिंह ने उदारता दिखाते हुए सम्पूर्ण राज्य रामशाह के हाथों सौंप दिया। किन्तु यह मेल–मिलाप ज्यादा दिन तक टिक नहीं पाया और जल्दी ही बुन्देलों में राज्य को लेकर मन–मुटाव शुरू हो गया। केशवदास ने 10वें अध्याय में बुन्देलों की आपसी कलह का सजीव वर्णन किया है। कलह की शुरुआत रामशाह ने इन्द्रजीत को बुन्देलखंड का राजा घोषित करके की। उसने उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। कुंटुब में इसे लेकर विद्रोह बढ़ गया। रानियाँ अपने–अपने गांव जाकर बैठ गई। वे सभी अपने बेटों को राजा बनवाना चाहती थी। उत्तराधिकार के इस कलह में केशवदास को मध्यस्थ बनाया गया। वीरसिंह देव चरित के रचयिता केशवदास ने समझा–बुझाकर इस संकट का हल निकाला कि घर के युद्ध में घर के ही लोग जीतेंगे या हारेंगे। इन्द्रजीत बिना राजा मरेंगे और उनके साथ पुर की स्त्रियां भी जौहर करेंगी। कुल की मर्यादा का ध्यान दिलाते हुए सबको आपस में मिलकर राजा चुन लेने का सुझाव दिया। केशवदास की बात सुनकर वीरसिंह सहमत हो गए। किन्तु रानी कल्यादेई जो अपने पुत्र भारतशाह को राजा बनाना चाहती थी उसकी वजह से फिर कुटुंब में फूट पड़ गई और परिणामस्वरूप युद्ध अवश्यंभावी हो गया। केशवदास ने इन्द्रजीत को बहुत समझाया कि वह युद्ध न करें और वीरसिंह को समझा–बुझाकर घर ले आये। परन्तु इन्द्रजीतसिंह ने अपना हठ नहीं छोड़ा। वीरसिंह देव और इन्द्रजीत सिंह में युद्ध शुरू हो गया। केशव ने इस युद्ध का सम्पूर्ण विवरण 12वें अध्याय में दिया है। युद्ध में इन्द्रजीत सिंह पराजित हुआ और घायल अवस्था में इसे युद्ध क्षेत्र से बाहर ले जाया गया।

13वें अध्याय में भूपाल राव का इन्द्रजीत सिंह के विषय में रोषपूर्ण वक्तव्य है जो इन्द्रजीत सिंह के चारित्रिक दोषों को उजागर करता है। इन्द्रजीत सिंह राजा भले ही था किन्तु उसमें राजाओं जैसे गुण नहीं थे। वह युद्ध में वीरता प्रदर्शित करने की बजाय वहाँ से भाग लेता था। वह सदैव भोग–विलास और सुरा–सुंदरी में डूबा रहता था। वीरसिंह से वार्तालाप करने के

पश्चात भूपालराव ने स्वामिभक्ति दिखाते हुए इन्द्रजीत सिंह साथ देने की बात कही। युद्ध के पश्चात् मुगल सेना के अधिकारी अब्दुल्ला खां ने ओरक्षा राज्य में मार–काट मचा दिया। तब इन सबको रोकने के लिए वीरसिंह ने अपने भाई को गिरफ्तार करा दिया। इसके तुरंत बाद केशवदास ने वीरसिंह द्वारा राज्य को स्थिरता प्रदान करने के लिए कार्य करने का विवरण दिया है। वीरसिंह ने अपने गिरफ्तार भाई को कुछ समय पश्चात् जहाँगीर से विनती कर उसे छुड़ा लिया। इसके बाद वीरसिंह ने राजकार्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए नये कर्मचारियों को लगाया और राजधानी को नए सिरे से बनाया। अपने सभी भाइयों को राज–काज में उचित स्थान दिया और राज्य की सीमाओं को सुदृढ़ किया। जहांगीर के समय में उनके राज्य पर शत्रु हमला नहीं कर सकते थे क्योंकि ओरक्षा पर हमला मुगल साम्राज्य पर हमला माना जाता था। अपने कुटुम्ब में शांति स्थापित कर वीरसिंह ने राजधानी को पुनः बसाया और उसका नाम जहांगीरपुर रख दिया –

*''पातसाहि पठ्यो फरमान, दियौ ओड़छौ उत्तम थान।*
*जहांगीरपुर तिहि को नाउ, फेरि बसायौ सुखद सुभाउ।'*[32]

15 वें और 16वें अध्याय में नये बसे हुए ओरक्षा नगर (नया नाम जहांगीरपुर) की सुन्दरता का वर्णन केशवदास ने किया है। ओरछा नगर की प्राकृतिक सुन्दरता का वर्णन कवि ने उसकी भौगोलिक विशेषताओं के साथ किया है। ओरछा की बेतवा नदी और उसके किनारे, तालाब, बाग–बगीचे, पशु–पक्षी, मंदिर एवं मंदिर की ऊँची पताकाओं, परकोटों, परकोटों पर लगे प्रकाश–स्तंभ, भवन, भवनों के बड़े–बड़े दरवाजे, हथियारों की कोठरियों आदि का वर्णन कवि ने विस्तार से किया है। राजकुमारों द्वारा बाजार दर्शन के चित्र काफी मनोरम हैं। इसके साथ ही राजदरबार, राजसभा, रंगमहल का भी उल्लेख किया है। राजा की दिनचर्या का वर्णन परम्परानुसार किया है। 16वें अध्याय के बाद से ऐतिहासिक वृत्तों का विवरण नहीं मिलता। सम्भवतः वीरसिंह के राज्य–ग्रहण और राज्य स्थापना के पश्चात कवि केशव ने उसका विवरण देना उचित न समझा हो। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने संपादकीय टिप्पणी में आचार्य रामचन्द्र

शुक्ल द्वारा सम्पादित 'वीरसिंहदेवचरित' के केवल 16वें अध्याय तक ही उसका सम्पादन करने का उल्लेख किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने यह कृति नागरी प्रचारिणी सभा से सम्पादित करवायी थी। सम्भवतः ऐतिहासिक वृत्तों के विवरण की उपल्ब्धता के आधार पर ही शुक्ल जी ने उसे 16वें अध्याय तक ही रखा हो। इसके बाद के अध्यायों में नगरी वर्णन, सुक–सारिका सम्वाद, मिथकीय कथाएं, राजाओं की दिनचर्या, राजधर्म का उपदेश आदि विवरण इसमें भरे पड़े हैं।

## *2.5 जहांगीर–जस–चन्द्रिका*

***जहांगीर–जस–चन्द्रिका*** की रचना सम्वत् 1669 अर्थात 1612 ई0 में हुई थी। अक्टूबर 1605 ई0 में अकबर की मृत्यु के पश्चात् जहांगीर मुगल साम्राज्य की गद्दी पर आसीन हुआ। वीरसिंहचरित में केशव ने अकबर की मृत्यु की परिस्थितियों और जहांगीर के सिंहासनारोहण का वर्णन विस्तार से किया है। केशवदास ऐसे पहले कवि हैं जिन्होंने किसी मुगल सम्राट को काव्य का नायक बनाकर उसकी प्रशस्तिपरक रचना लिखी है। इसके बाद श्रीधर के अलावा ऐसा उदाहरण हमें देखने को नहीं मिलता। मुगल सम्राटों के प्रति हिन्दी कवियों की दूरी आश्चर्यचकित करने वाली है जबकि लगभग प्रत्येक सम्राट के दरबार में कोई न कोई हिन्दी कवि अवश्य रह चुका था। इसके कारणों पर प्रकाश डालते हुए डॉ. सुधीर कुमार लिखते हैं –

''इस अभाव का सबसे प्रबल कारण यह रहा कि पहले हिन्दू कवियों ने मुसलमान बादशाहों को अभारतीय मानकर उन पर नहीं लिखा क्योंकि उनकी दृष्टि में वे हमलावर थे। उनकी परम्परागत सहानुभूति हिन्दू राजाओं के साथ थी जो उनके परम्परागत आश्रयदाता थे। वंशागत हिन्दू कवियों ने हिन्दू राजाओं का नमक खाकर उनके पक्ष में ही गाया बजाया। तत्कालीन हिन्दू राजाओं के सभाई कवियों के काव्यों से इस कथन के प्रमाण खोजे जा सकते हैं।''[33]

सुधीन्द्र कुमार के कथन में सचाई हो सकती है क्योंकि ब्रजभाषा कवियों ने मुगल सत्ता के साथ एक दूरी बनाकर रखी। श्रीधर को यदि छोड़ दिया जाय कि उन्होंने ***जंगनामा*** लिखने के लिए किस बात से प्रेरणा ग्रहण की थी तो केशव के सन्दर्भ में जहांगीर की प्रशस्ति लिखने की प्रेरणा को अवश्य खोजा जा सकता है। कवि केशवदास ओरछा राज्य के राजकवि थे। जब–तक वीरसिंह एवं ओरछा राजाओं के सम्बंध मुगलों से खराब रहे तब–तक केशव ने मुगलों को विरोधी पक्ष के रूप में उन्हें चित्रित किया। अकबर के उदाहरण से इसे ठीक से समझा जा सकता है। मुगलों के साथ युद्धरत वीरसिंह केशव के लिए उनका नायक है और अकबर खलनायक। वीरसिंह मुगलसेना के साथ रहता है या उन्हें धोखा देकर ( वीरसिंह के दक्षिण प्रयाण के सन्दर्भ में जब वह खानखाना के साथ दक्षिण गया था और खानखाना के रोकने के बावजूद वहां से चुपचाप भाग निकला था ) ओरछा लौटकर वह वहां से मुगलों को भगा देता है तब कवि केशवदास वीरसिंह की प्रसंशा करते हैं। जहांगीर–अकबर विवाद के समय भी केशव अकबर को ही गलत ठहराते हैं जबकि इस पूरे प्रसंग में जहांगीर की साम्राज्यलिप्सा उन परिस्थितियों के लिए उत्तरदायी थी। अपनी इस लिप्सा को पूरा करने के लिए साम्राज्य के एक विद्वान अबुल फजल को वीरसिंह के हाथों बड़ी नृशंसतापूर्वक मरवा देता है तब भी केशव की निष्ठा अकबर के प्रति न होकर जहांगीर के प्रति ही दिखायी देती है। इसका प्रमुख कारण यही है कि केशव के आश्रयदाता वीरसिंह अब जहांगीर की शरण में आ गया था और दोनों की मित्रता जहांगीर के पूरे शासनकाल तक बनी रही। अतः केशव ने वीरसिंह को प्रसन्न करने के लिये ही ***जहांगीर–जस–चन्द्रिका*** की रचना की होगी। जहांगीर के शासक बनते ही केशव का अकबर के प्रति दृष्टिकोण भी बदल गया और वह उसे मृत्योपरान्त सहानुभूति से याद करते हैं।

***जहांगीर–जस–चन्द्रिका*** के आरम्भ में ही गणेश वन्दना के पश्चात जहांगीर का वंश परिचय देते हुए अकबर का उल्लेख बड़ी सौम्यता के साथ करते हैं –

''बैरम खां बच्छ साह हमाँऊ को साहिबर सातों सिंधु पार कीनी कित्ति करबर की।
सील को सुमेरू सुद्ध सांच को समुद्र रन–रूद्र गति 'केशौराय' पाई हरिहर की।

पावक प्रताप जिहिं जारि डारि प्रगट पठानन की साहिबी समूल मूरिगर की।
प्रेम परिपूरन पीयूष सींचि कल्पबेलि पालि लीनी पातसाहि साहि अकबर की।''[34]

सिंहासनारोहण के पश्चात जहांगीर की बादशाहत एवं राजदरबार का भव्य वर्णन केशव ने ग्रंथ के आरंभ में किया है जो उस समय मुगल बादशाह की स्थिति एवं उसकी शक्ति को प्रदर्शित करता है। अकबर के शासनकाल में ही मुगलों की शक्ति में अकल्पनीय वृद्धि हुई थी जो अकबर के प्रयत्नों और उसकी दूरदर्शितापूर्ण नीतियों का परिणाम थी। अकबर का राजदरबार उस समय सबसे शक्तिशाली राजदरबार था जिसमें उत्तर भारत के सभी राजा शामिल थे और कुछ अपवादों को छोड़कर उसे चुनौती देने वाला कोई राजदरबार उत्तर भारत में उस समय नहीं था। जहांगीर के समय में यही स्थितियां विद्यमान थीं। उसके दरबार में अनेक राजा उसका दर्शन प्राप्त करने के लिए लालायित रहते थे –

''दरसें सुरेस से नरेश सिर नावैं नित षट् दरसन ही को सिर नाइयतु है।
केसौदास पुरी पुर पुंजनि को पालक पैं सात ही पूरी हीं सौ पूरो प्रेम पाइयतु है।''[35]

केशव ने जहांगीर की राजसभा का वर्णन करते हुए उसके राजदरबारियों में भगवंत सिंह मान, आजम खां, मानसिंह, दुलहराम बुंदेला, रावचन्द्रसेन के पुत्र राव दुर्गभान, दौलत खां, इतबार खां, समसुद्दीन मिरजा, जुझारसिंह जैसे दरबारी राजाओं के नामों का उल्लेख किया है जो जहांगीर द्वारा दिये गये कार्यों को सम्पादित करते थे। इन दरबारियों के अलावा विभिन्न राज्यों के राजा जैसे गौर, गुजरात, गया, गोंडवाना, ग्वालियर, गंधार, आबू, अवध, अंग, संभल, सिंधु, सौबीर, कंधार, खुरासान के राजा भी उसके दरबार में आते थे। केशवदास ने विभिन्न राज्यों के नाम गिनाने में अनुप्रास अलंकार का सहारा लेकर राज्यों की एक लम्बी सूची दी है जो उस समय मुगल साम्राज्य के अन्तर्गत थी या वहां के शासकों से मुगलों के अच्छे सम्बंध थे। इसके अलावा इस छोटे से ग्रंथ में जहांगीर की दानशीलता और उदारता की प्रशंसा में छंद कहे गये हैं जिनका ऐतिहासिक महत्व केवल इतना भर है कि इसमें जहांगीर की दानशीलता का वर्णन हुआ है जिसका वर्णन वह स्वयं भी अपनी आत्मकथा ***तुजुके जहांगीरी*** में भी करता

है।इसके अलावा इस ग्रंथ में ऐतिहासिक तथ्य बहुत न्यून हैं। जहांगीर के राजदरबार के सामंतों एवं मुगलों के अधीन राज्यों के विवरण ही इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। यह एक प्रशस्तिमूलक रचना है जो जहांगीर की प्रशंसा के वर्णन के सन्दर्भ में ही उपरोक्त तथ्यों का उपयोग किया गया है। ***वीरसिंहदेवचरित*** की तरह जहांगीर का चरितगान करना केशव का अभीष्ट नहीं था।

## 2.6केशव की इतिहासदृष्टि

इतिहास के नजरिये से देखा जाय तो केशवदास की सबसे महत्वपूर्ण रचना वीरसिंहदेवचरित है। रतनबावनी और जहांगीर–जस–चन्द्रिका बहुत छोटे और प्रशंसात्मक काव्य हैं। इनमें ऐतिहासिक तथ्यों का प्रयोग बहुत कम हुआ है। केशव ने ग्रंथ प्रणयन के विषय में सम्वत् 1664 अर्थात 1607 ई0 का उल्लेख किया है जो जहांगीर के सिंहासनारोहण 1605 के एक वर्ष पश्चात का है। इस समय तक वीरसिंह भी जहांगीर की कृपा पाकर अपना राज्य प्राप्त कर चुका था और केशव उसके दरबार में रहते थे। मधुकरशाह द्वारा अपने पुत्र को बड़ौन की जागीर दी गयी थाी जिसका उल्लेख केशव ने ग्रंथ के तृतीय अध्याय में किया। मधुकर शाह की मृत्यु 1592 ई0 में हुई थी। अतः इसी वर्ष से केशव ने वीरसिंह के क्रियाकलापों का विस्तार से वर्णन शुरू किया है। 1592 ई0 से 1606 ई0 तक सिलसिलेवार वर्णन ***वीरसिंहदेवचरित*** में मिलता है। ***वीरसिंहदेवचरित*** में केशव ने कहीं खुलकर अपने राजनीतिक सिद्धांतों के बारे में विस्तार से नहीं लिखा है लेकिन उसमें व अन्य काव्यग्रंथों में छिटपुट ऐसे सूत्र हमें जरूर मिल जाते हैं जिससे हम उनके विचार जान सकते हैं। अतः वीरसिंह में केशव के राजनीति सम्बन्धी विचारों की समीक्षा से पूर्व केशव के राजत्व सिद्धांतों पर संक्षिप्त दृष्टि डाल लेना आवश्यक है। राजत्व सिद्धांतों के सन्दर्भ में केशव ने संस्कृत के राजनीतिक आचार्यों के ही मतों का अनुपालन किया है। शुक्राचार्य इस मामले में केशव के पथ–प्रदर्शक हैं। उनके अनुसार ही केशव ने राजाओं की कोटियों और उनके कर्तव्यों का वर्णन किया है। ***रामचन्द्रिका***के 17 वें

प्रकाश में रावण को महोदर से राजनीति की शिक्षा का वर्णन करने के आग्रह पर केशव ने राजाओं के सन्दर्भ में जो कहा है वह निम्न है –

''पृथ्वी पर राजा चार प्रकार के होते है। एक प्रकार के राजा इसी लोक की साधना करना जानते हैं, जैसे बली वेणु जो अपने को ईश्वर मानता था। दूसरे प्रकार के राजा परलोक की साधना करते हैं जैसे राजा हरिश्चन्द्र जिन्होंने सत्यपरायण होकर समस्त राज्य ऐश्वर्य दान कर दिया था। तीसरे प्रकार के राजा लोक परलोक दोनों की साधना करते हैं जैसे मिथिला के राजा विदेह जनक, चौथे प्रकार के राजा ऐसे दुराग्रही होते हैं कि अपना लोक परलोक दोनों स्वयं अपने हाथों से नष्ट कर लेते हैं जैसे राजा त्रिशंकु जो सबके उपहास के पात्र हैं।''[36]

इसके अलावा मंत्रियों के सन्दर्भ में भी शुक्र का ही अनुसरण किया है। मंत्रियों के सम्बंध में उन्होंने कहा है कि वे विष समान, अनार समान, गुड़ समान और नीम के समान होते हैं। यह उन्होंने मंत्रियों के शील, स्वभाव और कर्तव्य को ध्यान में रखते हुए कहा है।

हालांकि वीरचरित के सन्दर्भ में केशव अपने सिद्धांतों में काफी लचीले हो जाते हैं और तत्कालीन राजनीति के अनुरूप ही वीरसिंह के चरित्र का निर्माण करते हैं। इस चरितकाव्य में केशव ने वीरसिंह के महत्वाकांक्षी चरित्र को प्रस्तुत किया है। पिता की ही भांति वीरसिंह भी छोटी सी जागीर से संतुष्ट नहीं रहता था और अपने लिए किसी बड़े मौके की तलाश में रहता था। उस समय ओरछा की गद्दी उसके भाई रामशाह के पास थी जो अकबर की अधीनता स्वीकार कर चुका था। वीरसिंह उससे प्रतिद्वन्द्विता रखता था। शुरूआत में वीरसिंह ने मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली किन्तु वहां भी अपनी महत्वाकांक्षा की तुष्टि न देखकर वह उधर से लौट आया।

केशव ने यहां तक उसके चरित्र–चित्रण में उसकी अच्छी या बुरी सभी घटनाओं का ब्यौरा दिया है। उसकी लूट–मार, गांवों को जलाकर नष्ट कर देने या मुगल सैनिकों के साथ उसकी झड़पें सभी का विवरण केशव ने तटस्थता से दिया है। हालांकि उसके चरित्र को उज्ज्वल दिखाने के लिए वह भाग्य उवाच, उदय उवाच, आदि शीर्षकों में उसकी प्रशंसा करते हैं और उसे वीर, न्यायोचित तक घोषित करते हैं। यहां वीरसिंह अकबर विरोधी एक विद्रोही नेता के रूप में दिखलायी पड़ता है। किन्तु अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने के लिए वह किसी भी

राजनीतिक चाल का प्रयोग करने में नहीं हिचकता। हालांकि अपने भी भाइयों से उसके सम्बंध अच्छे नहीं थे और वह उनसे भी लड़ता रहता था। किन्तु इसमें स्वयं उसका भी दोष नहीं था। बुन्देलों में घरेलू कलह बहुत ज्यादा थी और अकबर के कारण भी रामशाह पर अपने विद्रोही भाई के खिलाफ कार्रवाई करने का दबाव रहता था। इन सभी स्थितियों को केशव ने बखूबी दर्शाया है जो स्वयं केशव की राजनीतिक सूझ–बूझ का परिणाम है। अन्यथा तथ्यों को ठीक से न समझने पर स्थितियों की सही विवेचना एक असम्भव कार्य है।

एक बड़े मौके की तलाश कर रहे वीरसिंह को जल्दी ही वह मौका मिल गया। साम्राज्य पाने के लालच में शहजादा सलीम ने अपने पिता के विरूद्ध विद्रोह कर दिया। दूरदर्शी वीरसिंह मौका देखकर सलीम तक पहुंच गया। उस समय शहजादे सलीम को भी अपने एक विश्वस्त सहायक की जरूरत थी जो उसके लिए कुछ भी कर सकने के लिए तैयार हो। इधर वीरसिंह ने भी मौका ताड़ दिया क्योंकि अगर सलीम विद्रोह में सफल नहीं भी हो पाता तब भी अगला मुगल बादशाह वही बनने वाला था। अतः अब तक मुगलों का विरोधी दिखने वाला वीरसिंह अब मुगल साम्राज्य के युवराज का विश्वस्त मित्र बन गया।

चापलूसी की हद यह थी कि शहजादे सलीम के उकसाने पर उसने मुगल इतिहासकार अबुल फजल की हत्या कर दी। तिस पर उसको खुश करने के लिए उसका सिर काटकर सलीम के पास ले गया। केशवदास ने उसके इस कृत्य की कहीं भी भर्त्सना नहीं की है। उसे मित्रता के आवरण में किया गया कृत्य मानकर उसे ढकने की कोशिश की है। हालांकि एक राजकवि होने के कारण शायद ऐसा करना उनके लिए सम्भव नहीं रहा होगा, अतः उन्होंने ऐसा नहीं किया होगा लेकिन एक निरपराध विद्वान की हत्या किसी भी दृष्टि से उचित नहीं थी और इसके लिए तत्कालीन इतिहासकारों ने दोनों की कड़े शब्दों में निंदा की है।

वीरसिंह के इस दुस्साहस से अकबर बहुत क्रुद्ध हुआ और वीरसिंह को पकड़ लाने का हुक्म दिया।***मआसिरूल उमरा*** में लिखा है –

''जब इसने शेख अबुल फजल को मार डालने का साहस दिखलाया तब अकबर ने दो बार इस पर सेना भेजी। 50वें वर्ष में यह सूचना मिली कि थोड़े से मनुष्यों के साथ जंगलों में मारा फिरता है और बादशाही सेना भी पीछा कर रही है।''[37]

निश्चित रूप से एक निरपराध विद्वान की हत्या कहीं से भी उचित नहीं थी और इस जघन्य कृत्य पर केशव ने अपने आश्रयदाता की मजबूरी का हवाला देकर सिर्फ उसे इस कलंक से बचाने की कोशिश भर की है। यहां दरबार के प्रति केशव की निष्ठा उन्हें अपने आश्रयदाता के एक वकील के रूप में स्थापित करती है जो अपने मुवक्किल को बचाने का प्रयास कर रहा है। कवि के रूप में यह केशव के लिए निश्चित ही कठिन रहा होगा इसलिए अबुल फजल की मृत्यु पर अकबर के शोक को उन्होंने विस्तार से वर्णित किया और शायद इसी बहाने एक विद्वान की हत्या पर अपनी श्रद्धांजली प्रकट करते हैं।

अकबर के क्रोध को देखते हुए जहांगीर के आदेशानुसार वीरसिंह तब–तक छुपा रहा जब–तक अकबर और जहांगीर में मेल–मिलाप नहीं हो गया। केशव ने हालांकि इस बात का जिक्र किया है कि जहांगीर और अकबर के मेल–मिलाप के लिए वह स्वयं अकबर के पास जाने के लिए भी तैयार है। केशव की यह सूचना यदि सत्य है निश्चय ही उसे अपने किये का पछतावा रहा होगा। इन सब घटनाओं में वह जहांगीर का परम मित्र नजर आता है जो मित्रता की खातिर सब कुछ करने के लिए तैयार है।

अकबर की मृत्यु और जहांगीर के बादशाह बनने पर वीरसिंह को अपना मनोवांक्षित फल प्राप्त हुआ। ***मआसिरूल उमरा*** के अनुसार उसे 3000 का मनसबदार बनाया गया। इसकी पुष्टि जहांगीरनामा में जहांगीर के स्वयं के कथन से भी हो जाती है –''राजा वीरसिंह देव को, जो अच्छे राजाओं में से था और पैदल सेना तथा वीरता में अपने बराबर वालों तथा संबंधियों में बहुत बढ़कर था एवं जिससे अच्छी सेवाएं हो चुकी थीं, तीन प्रदान कर सम्मानित किया।''[38]

केशव ने उसकी मनसबदारी पर कोई टिप्पणी नहीं की है किन्तु मुगल साम्राज्य में उसकी बढती प्रतिष्ठा का अवश्य जिक्र किया है। जहांगीर ने उसके भाई को हटाकर उसे ओरछा का राजा बनाया तब उसने भी ओरछा का नाम बदलकर जहांगीरपुर रख दिया। अपने भाईयों के

साथ प्रतिद्वन्द्विता होते हुए भी उसने उनके साथ शत्रुतापूर्ण व्यवहार नहीं किया। केशवदास ने बुंदेला भाईयों के आपसी उतराव–चढ़ाव भरे रिश्तों के बावजूद भातृत्व प्रेम को उद्घाटित किया है। यह रामशाह या वीरसिंह दोनों में हमें देखने को मिलता है। शत्रुतापूर्ण व्यवहारों के बावजूद बुंदेल भाइयों में हत्या के प्रयास का कोई उदाहरण नहीं मिलता।

यहां पर केशव द्वारा दी गयी सूचनाओं और ऐतिहासिक घटनाओं की ऐतिहासिकता की जांच भी आवश्यक है क्योंकि तत्कालीन स्त्रोतों एवं इन घटनाओं में कुछ असंगतियां मिलती हैं। उदाहरणस्वरूप वीरचरित के शुरूआती प्रकाशों में हुए युद्धों के लिए तत्कालीन कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है और बाद के इतिहासकारों ने केशव के आधार पर ही इन युद्धों का उल्लेख किया है। मुगल राजदरबारों की तरह इन छोटे जागीरदारों के पास कोई इतिहासकार नहीं हुआ करते थे जो उनके राजदरबार से जुड़ी हर घटना का उल्लेख करते। ऐसे में केशव चूंकि उन्हीं के भाई के राजदरबार में रहते थे और उन्होंने उस वक्त होने वाली सभी घटनाओं को अपनी आंखों से देखा था अतः हमें उनकी दी हुई सूचनाओं पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं दिखता जब तक कोई पुष्ट साक्ष्य नहीं मिल जाते। किन्तु तत्कालीन परिस्थितियों के मद्देनजर उन युद्धों के उल्लेख का एक तार्किक कारण अवश्य मौजूद है। वीरसिंह की महत्वाकांक्षा एक छोटी सी जागीर पाकर संतुष्ट हो जाने वाले शासक की महत्वाकांक्षा नहीं थी कि वह चुपचाप बैठ जाता। वह उससे बड़ा ओहदा पाने के लिए लगातार संघर्ष कर रहा था जिसमें अपने भाइयों से युद्ध अवश्यंभावी था। किन्तु वह मधुकरशाह का बड़ा पुत्र नहीं था कि उसको परम्परागत नियमानुसार ओरछा की गद्दी मिलती। ऊपर से ओरछा कई भाइयों के बीच छोटी–छोटी जागीरों में बँट गया था। अगर वह बड़े पैमाने पर विद्रोह करता तो अकबर के साथ उसकी सीधी मुठभेड़ होती जिसकी परिणति कुछ और ही हो सकती थी, जनता भी सम्भवतः उसका साथ नहीं देती क्योंकि उसका भाई रामशाह हिन्दुओं के पारम्परिक जयेष्ठाधिकार नियम के तहत ही गद्दी पर बैठा था। राजनीति के इन नियमों को केशवदास भी अच्छी तरह से समझते थे और इसीलिए उन्होंने वीरसिंह के अपने भाइयों के साथ संघर्ष को अकबर के साथ जोड़ कर व्याख्यायित किया।

दूसरा सन्दर्भ **अकबर के मुराद की मृत्यु और उसके दक्षिण प्रयाण के सन्दर्भ** में है। केशव ने ग्रंथ के चतुर्थ प्रकाश में इस घटना का उल्लेख किया है। ***अकबरनामा*** के अनुसार मुराद की मृत्यु 2 मई 1599 ई0 को हुई थी उसकी मृत्यु के बहुत समय पश्चात अकबर सितम्बर में उसी वर्ष दक्षिण के लिए निकला।[39] केशव ने दोनों घटनाओं को एक साथ होना लिखा है। निश्चित रूप से अकबरनामा का साक्ष्य अधिक सटीक है क्योंकि पुत्र की मृत्यु के तुरंत बाद तो अकबर निश्चय ही दक्षिण जाने लायक मनःस्थिति में नहीं रहा होगा। परंतु केशव ने विषय को चलते रूप में सूचना देने के चक्कर में दोनों घटनाओं का एक साथ वर्णन कर दिया है।

एक इसी तरह की गलती सलीम के विद्रोह के समय पांचवें प्रकाश में हुई है। इसमें भी केशव ने सलीम और मानसिंह के एक साथ मेवाड़ लौटने का उल्लेख किया है। जबकि यह घटना 23 अगस्त 1601 ई0 की है। उस समय मानसिंह बंगाल में नियुक्त था। अबुल फजल की मृत्यु के सन्दर्भ में वीरसिंह द्वारा उसकी हत्या और उसका सिर काटकर सलीम के पास भेजने का जिक्र किया है जिसका तत्कालीन इतिहासग्रंथों में अलग–अलग उल्लेख मिलता है। परंतु केशव के मत की पुष्टि का एक कारण यह भी है कि अबुल फजल की मृत्यु के लिए सलीम और वीरसिंह देव ही उत्तरदायी थे। इस सन्दर्भ में स्वयं जहांगीर ने ***जहांगीरनामा*** में जो विवरण दिया है वह निम्नलिखित है –

''हमारे पिता के जीवन के अंत समय शेख अबुल फजल, जो हिन्दुस्तान के शेखजादों में बुद्धि तथा विद्या में बढ़कर था, बाहरी सचाई के रत्न से सुसज्जित होकर उसे पिता के हाथ बड़े मूल्य पर बेचा था। वह दक्षिण से बुलाया गया था और हमारे प्रति उसके भाव सच्चे नहीं थे इसलिए एकांत में तथा सर्वसाधारण में वह हमारे विरूद्ध कहा करता था।.....वीरसिंह देव का राज्य उसके मार्ग में पड़ता था और वह विद्रोही भी था। हमने उसे कहला भेजा कि यदि वह उपद्रवी को रोक कर मार डाले तो हम उस पर सब प्रकार की कृपा करेंगे। ईश्वर की कृपा से जब वह उसके राज्य से चला तब इसने उसे रोक कर सेना अस्त–व्यस्त कर दी और उसे मार डाला। उसका सिर काटकर उसने हमारे पास इलाहाबाद भेज दिया।''[40]

जहांगीर के इस कथन से केशव के विवरणों की पुष्टि हो जाती है। इसमें कोई सन्देह नहीं की दोनों ने साम्राज्य की खातिर उस विद्वान की नृशंस हत्या की। सलीम ने मुगल साम्राज्य की गद्दी हासिल करने के लिए तो वीरसिंह ने ओरछा की गद्दी हासिल करने के लिए। वीरसिंह को इसका उचित पुरस्कार भी मिला, जहांगीर ने रामशाह को ओरछा की गद्दी से हटाकर उसे वीरसिंह को सौंप दिया। अपनी इस महत्वाकांक्षा की पूर्ति के बाद वीरसिंह सदैव मुगलों का हितैषी बना रहा और जहांगीरनामा में जहांगीर ने इस बात का उल्लेख किया है कि उसने खुसरो के विद्रोह के समय मुगल सेना की तरफ से उसे रोकने के लिए भेजा गया।[41] इससे यह साबित होता है कि बाद में भी जहांगीर द्वारा उसे मुगल साम्राज्य के महत्वपूर्ण सैनिक अभियानों पर भेजा गया और वीरसिंह अपने पूरे जीवनकाल में महत्वपूर्ण मुगल मनसबदार के रूप में अपनी सेवाएं निष्ठापूर्वक देता रहा।

इसके अलावा एक पात्र जिसकी चर्चा आवश्यक है क्योंकि केशव के यहां वह एक महत्वपूर्ण पात्र है लेकिन उसका नाम इतिहास में कुछ और मिलता है और वीरसिंहदेवचरित में कुछ और ही है। वह पात्र तिपुर है। इतिहास में तिपुर का नाम विक्रमादित्य रायराया है जो अकबर के समय में ग्वालियर का किलेदार था। वीरसिंह के विद्रोह के समय अकबर ने इसे रामशाह के साथ उसे दबाने के लिए भेजा था। **केशव ने इसका नाम तिपुर दिया है** जो निश्चित रूप से वही है। ***मआसिरूल उमरा*** में इसका नाम विक्रमादित्य के अलावा पतरदास भी मिलता है जिसके बारे में ब्रजरत्नदास ने टिप्पणी में उल्लेख किया है कि **इलियट ने फारसी शब्दों के कारण पतरदास को हरदास पढ़ लिया है** जिसकी वजह से यह भ्रांतियां पैदा हो गयी है।[42] इसके अलावा टीकमसिंह तोमर ने भी केशव के नाम तिपुर को ही सही ठहराया है।

तिपुर के अलावा कई नाम केशव में ऐसे भी आये हैं जो तत्कालीन इतिहास ग्रंथों में नहीं मिलते खासकर बुन्देल राजघराने के लोगों के नाम जिन्हें केशव जानते थे और उन्होंने उनका जिक्र भी वीरसिंह के सम्बन्धों के हवाले से दिया है। ऐसे पात्रों में रायसेन, पूरनमल, नरसिंह देव, प्रतापराव, हरिसिंह देव, राव भूपाल, हरदौल, जंगमणि, रानी कल्यान दे, सैयद मुजफर खान, दौलतखान पठान, दरिया खान, जमाल खां जैसे पात्रों के नाम उल्लेखनीय है। विभिन्न

कवियों ने ऐसे पात्रों का उल्लेख किया है जो इतिहास ग्रंथों में नहीं मिलते। इस सन्दर्भ में भगवानदास तिवारी का कहना है कि –

''इतिहास ग्रंथों में उल्लेख न होने पर भी हिन्दी वीरकाव्य में ऐसे पात्रों को एकदम अनैतिहासिक पात्र कह कर छोड़ा नहीं जा सकता। यह भी सम्भव है कि कुछ पात्रों के नाम काल्पनिक भी हों, पर इतिहास ग्रंथों में न मिलने के कारण सभी पात्रों को अनैतिहासिक कहना न्यायसंगत नहीं है। अस्तु, कुल मिलाकर केशव की जानकारी गलत नहीं कही जा सकती।''[43]

वस्तुतः केशव की इन ऐतिहासिक भूलों की वजह से उनके ऐतिहासिक विवरणों का महत्व कम नहीं हो जाता। केशव जिस उद्‌देश्य से इस रचना के लिए प्रवृत्त हुए उसे प्रकट करने में वह सफल रहे और यही उनकी सफलता है। इस रचना के माध्यम से उन्होंने यह साबित कर दिया है कि ब्रजभाषा में वह सभी खूबियां मौजूद है जो श्रृंगार काव्य के मनोगत भावों की बारीकियों को स्पष्ट करने के अलावा ऐतिहासिक रचनाओं की प्रबंधात्मकता के भी अनुकूल है। केशव के इस प्रयास को प्रबंध काव्य सौष्ठव के निकषों पर भले ही आचार्य शुक्ल ने इसे काव्य की श्रेणी में ना रखा हो लेकिन केशव के परवर्ती कवियों ने केशव का अनुसरण किया। तत्कालीन राजदरबारों में भी ऐसे कवियों को रखा गया जो इतिहासकार भले न थे लेकिन अपने समय की ऐतिहासिक अभिव्यक्ति वो जरूर कर रहे थे, भले उनकी कुछ सीमाएं रहीं हों। गद्य के अभाव में ये सीमाएं उनकी नहीं उनके युग की सीमाएं थीं। केशवदास के बनाये रास्ते पर आगे चलकर भूषण और लालकवि जैसे कवि हुए जिन्होंने औरंगजेब की राजनीतिक, धार्मिक नीतियों की खुलकर आलोचना की और अपने कवि कर्म की बदौलत न सिर्फ अपने आश्रयदाताओं से मान–प्रशंसा के हकदार हुए बल्कि भूषण तो जनता में भी काफी लोकप्रिय हुए जबकि लालकवि की प्रशंसा उनकी विशिष्ट इतिहासदृष्टि के कारण होती है।

# सन्दर्भ सूची


[1]आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रकाशन संस्थान, पृष्ठ सं. 162
[2]सम्पा. विजयपाल सिंह, केशवदास, लोकभारती प्रकाशन, पृ. सं. 9, 10
[3]सम्पा. विजयपाल सिंह, केशवदास, लोकभारती प्रकाशन, पृ. सं. 10
[4]सम्पा. विजयपाल सिंह, केशवदास, लोकभारती प्रकाशन, पृ. सं. 10
[5]एलिसन बुश्च, पोयट्री ऑफ किंग्स, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, पृ. सं. 27–28
[6]तिनको वृत्ति पुराण की दीन्हीं राजा रूद्र।।
[7]वी. एस. पाठक, भारत के प्राचीन के इतिहासकार, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, पृष्ठ सं. 27
[8]एलिसन बुश्च, पोयट्री ऑफ किंग्स, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. सं. 24
[9]सम्पा. निर्मला जैन, हरिमोहन शर्मा, निबन्धों की दुनिया, विजयदेव नारायण साही, पृ. सं. 42
[10]सम्पा. विजयपाल सिंह, केशवदास, लोकभारती प्रकाशन, पृ. सं. 27
[11]सम्पा. विजयपाल सिंह, केशवदास, लोकभारती प्रकाशन, पृ. सं. 211
[12]सम्पा. सुरेश मिश्र, मध्य प्रदेश का इतिहास खण्ड 2, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 299
[13]सम्पा. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, केशव ग्रंथावली भाग 3, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. सं. 487
[14]वही, पृ. सं. 35
[15]सम्पा. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, केशव ग्रंथावली भाग 3, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. सं. 477
[16]शमसामुद्दीन खां, अनुवादक ब्रजरत्न दास, मआसिरूल उमरा, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृ. सं. 143
[17]एलिसन बुश्च, पोयट्री ऑफ किंग्स, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, पृ. सं. 31
[18]वही पृ. सं. 477
[19]सम्पा. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, केशव ग्रंथावली भाग 3, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. सं. 483
[20]वहीं पृ. सं. 491
[21]सम्पा. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, केशव ग्रंथावली भाग 3, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. सं. 492
[22]वहीं पृ. सं. 495
[23]सम्पा. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, केशव ग्रंथावली भाग 3, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. सं. 495
[24]वही पृ. सं. 497
[25]सम्पा. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, केशव ग्रंथावली भाग 3, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. सं. 501
[26]वही, पृ. सं. 502
[27]वही, पृ. सं. 505
[28]सम्पा. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, केशव ग्रंथावली भाग 3, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. सं. 506
[29]वही, पृ. सं. 509
[30]सम्पा. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, केशव ग्रंथावली भाग 3, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. सं. 514
[31]सम्पा. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, केशव ग्रंथावली भाग 3, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. सं. 522
[32]सम्पा. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, केशव ग्रंथावली भाग 3, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. सं. 525
[33]डॉ. सुधीन्द्र कुमार, रीतिकाव्य की इतिहासदृष्टि, वाणी प्रकाशन, भूमिका से उद्धृत
[34]सम्पा. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, केशव ग्रंथावली भाग 3, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. सं. 616
[35]वही, पृ. सं. 621
[36]सम्पा. विजयपाल सिंह, केशवदास, लोकभारती प्रकाशन, पृ. सं. 197
[37]शमसामुद्दीन खां, अनुवादक ब्रजरत्न दास, मआसिरूल उमरा, का. ना. प्र. सभा, पृ. सं. 203
[38]जहांगीर, अनुवादक ब्रजरत्न दास, जहांगीरनामा, पृ सं. 36
[39]इलियट और डाउसन, भारत का इतिहास, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, पृ, सं. 75
[40]जहांगीर, अनुवादक ब्रजरत्न दास, जहांगीरनामा, नागरी प्रचारिणी सभा, पृ सं. 38
[41]जहांगीर, अनुवादक ब्रजरत्न दास, जहांगीरनामा, पृ सं. 38
[42]शमसामुद्दीन खां, अनुवादक ब्रजरत्न दास, मआसिरूल उमरा, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृ. सं. 143
[43]भगवानदास तिवारी, रीतिकालीन हिन्दी वीरकाव्य, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, पृ. सं. 112

# तृतीय अध्याय

## भूषण और लाल कवि की रचनाओं में इतिहास : औरंगजेब, शिवाजी और छत्रसाल के विशेष सन्दर्भ में

3.1 भूषण : संक्षिप्त ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, जीवनवृत्त एवं रचनाकाल

3.1.1 *शिवराजभूषण* में वर्णित ऐतिहासिक घटनाक्रम

3.1.2 शिवाजी के नेतृत्व में मराठा शक्ति का उदय

3.1.3 शिवाजी का बीजापुर के खिलाफ अभियान

3.1.4 शिवाजी और मुगल

3.1.5 भूषण की कविता में हिन्दू राष्ट्र की संकल्पना

3.2 लाल कवि कृत छत्रप्रकाश : कवि एवं ग्रंथ परिचय

3.2.1 बुंदेल राज्य वंशावली : छत्रसाल के नेतृत्व में बुंदेल शक्ति का पुर्नगठन

3.2.2 लाल की इतिहास दृष्टि : मुगल, बुंदेल शक्ति के संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में

3.2.3 शाहजहां के पुत्रों में उत्तराधिकार युद्ध एव उसकी परिणति

3.2.4 *छत्रप्रकाश* में औरंगजेब की धार्मिक नीति की आलोचना

# भूषण और लाल कवि की रचनाओं में इतिहास : औरंगजेब, शिवाजी और छत्रसाल के विशेष सन्दर्भ में

भूषण और लालकवि रीतिकाल के विशिष्ट कवि हैं। इनके यहां उपलब्ध इतिहास के तथ्यों में उनके समय की राजनीति का स्वरूप साफ–साफ परिलक्षित होता है जो उस काल के इतिहास को समझने में हमारी मदद करता है। खासतौर से मुगल काल की राजनीति में आये बदलाव को दोनों ने अपने–अपने काव्यग्रंथों में जिस तरह से उकेरा है, वह उनकी तथा उनके आश्रयदाता नायकों की महत्वाकांक्षाओं का प्रतिबिम्ब उभरकर सामने आ जाता है। दोनों कवि औरंगजेब की राजनीतिक, धार्मिक नीतियों की आलोचना करते हैं और अपने काव्यनायकों शिवाजी एवं छत्रसाल के विरूद्ध मुगलों के अभियानों की निन्दा करते हैं। शिवाजी की प्रशंसा करते वक्त भूषण ने विशुद्ध ऐतिहासिक तथ्यों का सहारा लेकर वीर रस की ओजस्वी कविताएं रची हैं जो सिर्फ कविता की प्रस्तुति भर नहीं हैं। इसमें इतिहास अपनेआप गुंथा हुआ चला आया है; जबकि लालकवि अथवा गोरेलाल का उद्देश्य अपने काव्य नायक का चरित्र उपस्थित करना है और इसके लिए उन्होंने इतिहास को ही अपना प्रमुखआधार बनाया है। इनके यहां ऐतिहासिकता काफी हद तक सुरक्षित है। जहां भूषण का उद्देश्य वीर रस की कविता कहना है वहीं गोरेलाल का उद्देश्य कविता के साथ ही इतिहास की भी प्रस्तुति करना है। उद्देश्यों में भिन्नता के बावजूद इतिहास की झलकियां दोनों कवियों में इस तरह से आ गयी हैं कि औरंगजेब का काल आसानी से देखा और जाना जा सकता है। भूषण औरंगजेब काल के शुरूआती समय के इतिहास को सामने रखते हैं तो लालकवि उसके परवर्ती काल की विशेषताओं को सामने रखते हैं। इसी लिए इस अध्याय में दोनों कवियों का अध्ययन एक साथ किया गया है।

## 3.1 भूषण : संक्षिप्त ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, जीवनवृत्त एवं रचनाकाल

केशव के पश्चात् एक लम्बे समय तक वीर चरितात्मक प्रबंध रचनाओं की कमी देखने को मिलती है, छिटपुट काव्य अवश्य रचे गये जिसमें जहाँगीरोत्तर एवं शाहजहाँकालीन परिस्थितियों के दिग्दर्शन हमें होते रहते हैं। केशव के बाद अगर किसी उल्लेखनीय ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रचना की बात करें तो वह भूषण ही हैं जिनकी चर्चा अतिआवश्यक है। हिन्दी साहित्य में भूषण को वीर चरितात्मक कविता का सर्व प्रधान कवि माना गया है। अपने समय में भूषण ने रीतिबद्ध कविता का आश्रय तो लिया किन्तु श्रृंगार से बिल्कुल अलग हटकर उन्होंने वीर रस को अपनाया और उसे काव्य क्षेत्र में प्रतिष्ठित किया। वीरता का वर्णन करने के लिए एक ऐसे नायक की आवश्यकता होती है जो नायकत्व के सारे गुणों को धारण करता हो साथ ही साथ जनता में भी उसकी छवि लोकप्रिय हो। यदि वीरता का वर्णन करने के लिए किसी शक्तिशाली लेकिन आततायी व्यक्ति को नायक बनाया जाय जो जनता में भय उत्पन्न करता हो वह कभी भी जनप्रिय कविता का नायक नहीं बन सकता।ऐसे में भूषण द्वारा शिवाजी का चुनाव किया गया जो अपने समय के लोकप्रिय शासक थे।

जहाँगीर और शाहजहाँ तक आते–आते अकबर की हिन्दू जनता के प्रति उदारवादी नीतियों में काफी बदलाव आ गया था। औरंगजेब के सिंहासनरूढ़ होने पर चरमपंथी उलेमा वर्ग का प्रभाव शासन पर स्पष्ट दिखने लगा था। शाहजहाँ द्वारा अनुमोदित उत्तराधिकारी दारा शिकोह की जो अपनी उदार प्रवृत्ति के कारण उलेमा वर्ग में सशंकित निगाह से देखा जा रहा था औरंगजेब द्वारा उत्तराधिकर के युद्ध में उसे पराजय मिली। दारा को बहुत ही क्रूर तरीके से मारा गया जिसके कारण हिन्दू तथा मुस्लिमेतर अन्य वर्गों में काफी भय पैदा हो गया था। औरंगजेब को भी अपनी सत्ता पर मजबूत पकड़ बनाये रखने के लिए उलेमा वर्ग की आवश्यकता थी जिसे वह उपेक्षित या निराश नहीं कर सकता था। औरंगजेब की प्रशासनिक नीतियों ने उसे हमेशा एक बड़े राज्य की सीमाओं को सुरक्षित रखने में ही उसे व्यस्त रखा। दूर–दराज के क्षेत्रों में असंतुष्ट शासकों के यहाँ से अक्सर विद्रोह की खबरें आती रहती थी। खासकर दक्षिण–पश्चिम छोरों पर अशांति अधिक थी। पश्चिम में शिवाजी

जैसे नायक का उदय हो रहा था जो लगातार अपनी शक्ति का विस्तार करते जा रहे थे। मुस्लिम शासक की अनुदार नीतियों से असंतुष्ट जनता भी उनका अपने क्षेत्रों में सहयोग कर रही थी। इधर उत्तर में बुंदेले भी अपना सिर उठा रहे थे। हालांकि राजपूत शक्तियाँ अभी भी मुगल शासन की रीढ़ बनी हुयी थी किन्तु धीरे–धीरे उनके सम्बन्धों में दरार आ रही थी जिसकी वजह स्वयं औरंगजेब की राजपूत नीति थी।

मराठों एवं बुंदेलों की बढ़ती शक्ति के साहित्यिक साक्ष्य हमें भूषण एवं गोरेलाल कवि की कृतियों में मिलते हैं जो तत्कालीन परिस्थितियों पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। गोरेलाल कवि के विषय में उतना विवाद नहीं है जितना कि भूषण के विषय में है। इसका एक प्रमुख कारण है कि कुछ साहित्येतिहासकारों द्वारा भूषण के विषय में लगाये गये अटकलों एवं अप्रामाणिक साक्ष्यों की स्थापना का प्रयास। दरअसल भूषण ने अपनी रचनाओं में अपने विषय में बहुत कम संकेत दिये है जिसकी वजह से प्रामाणिक साक्ष्यों के अभाव में भ्रांतियों का एक सिलसिला सा चल पड़ा। अब नवीन अनुसंधानों के आधार पर उनका समय और जीवनवृत्त का निश्चय किया जा चुका है। ऐतिहासिक सामग्री के लिए भूषण की रचनाओं की उपयोगिता पर जदुनाथ सरकार जैसे इतिहासकार ने इसपर सवाल खड़े करते हुए इसे अनैतिकहासिक करार दिया था। इस मत के लिए हिन्दी के साहित्येतिहासकार भी इसके लिए उत्तरदायी हैं। भूषण ने अपनी रचना के सन्दर्भ में जो समय दिया है उसे शिवसिंह सेंगर और भगीरथ प्रसाद दीक्षित भूषण का उत्पत्ति काल मानते हैं। विवादास्पद हो जाने के कारण जदुनाथ सरकार का भ्रमित हो जाना अनुचित नहीं है।

अगर भूषण के समय को अंतःसाक्ष्यों और बहिःसाक्ष्यों के आधार पर देखें तो उनके जीवन के विषय में कुछ प्रमुख तथ्य पता चलते हैं जो उनके व्यक्तिगत जीवन पर प्रकाश डालते हैं। अंतःसाक्ष्यों में सबसे प्रामाणिक उनका स्वयं का लिखा हुआ ***शिवभूषण*** नामक रीति ग्रंथ है।***शिवभूषण*** में एक छंद मिलता है जिसमें उन्होंने अपने ग्रंथ का समय बतलाया है, छंद इस प्रकार है –

> ''समत सत्रह सेंतीस पर सचि बढ़ि तेरसि भानु।
> भूषण शिवभूषण कियौ पढ़ो सकल सुजानु।।''[1]

उक्त दोहे में ***शिवभूषण*** का रचनाकाल विश्वनाथ प्रसाद तिवारी 1730 सम्वत् में मानते हैं अर्थात् 1673 ई.। परन्तु इसी दोहे के सन्दर्भ में पं0 भगीरथ प्रसाद दीक्षित ने अपना मत भिन्न प्रदर्शित किया है दोहे में श्लेष अलंकार के माध्यम से उन्होंने जो अपना मत दिया है वह निम्न है –

''इस दोहे द्वारा भूषण ने श्लेष से शिवराज भूषण का निर्माणकाल और अपना जन्मकाल दोनों बतलाने का प्रयास किया है 'पर' का अर्थ पश्चात् और उल्टा इस भावना के सहारे से उक्त दोनों बड़ी सुन्दरता से व्यक्त कर दी गयी हैं तथा भूषण ने साहित्यिकों को सावधान करते हुए इस दोहे को समझदारी के साथ पढ़ने का आदेश दिया है। इस प्रकार उन्होंने अपना जन्मकाल आषाढ़ बदी 13 संवत् 1738 और शिवराजभूषण का निर्माणकाल संवत् 1730 विक्रम स्पष्ट रूप से दिखला दिया है।''[2]

भगीरथ प्रसाद दीक्षित ने श्लेष से उक्त दोहे का जो तात्पर्य निकाला है वह उनके अलावा और किसी भी विद्वान ने नहीं माना। मिश्रबन्धु पहले ऐसे विद्वान थे जिन्होंने अत्यंत सावधानीपूर्वक ***शिवभूषण*** का संपादन किया था वे भी इस दोहे का इस तरह का तात्पर्य नहीं मानते। इनके अलावा बाबू ब्रजरत्नदास, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र और डॉ. टीकम सिंह तोमर आदि सभी विद्वान इस बात से सहमत हैं कि यह दोहा केवल ***शिवभूषण*** की रचनाकाल की तरफ संकेत करता है। भूषण के जन्मकाल को लेकर भी विद्वान एकमत नहीं हैं और केवल 1730 संवत् को ही आधार बनाकर उनका समय निश्चित करने का प्रयास करते हैं। भूषण के परिवार के सन्दर्भ में भी कोई प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं है किन्तु कुछ ऐसे तत्कालीन साक्ष्य मौजूद हैं जो भूषण को चिंतामणि और मतिराम का भाई सिद्ध करते हैं। चिंतामणि और मतिराम दोनों रीतिकाल के प्रसिद्ध कवि हैं। चिंतामणि औरंगजेब के दरबार में तथा मतिराम बूंदी के दरबार में रहते थे। मिश्रबन्धुओं ने भूषण का जन्मकाल 1614 सम्वत् माना है और चूँकि 1730 सम्वत् में ***शिवभूषण*** का रचनाकाल होना निश्चित है अतः भूषण की मृत्यु भी इसके बाद ही हुई होगी। इस संकेत को ध्यान में रखकर मिश्रबन्धुओं ने सन् 1614 से 1740 ई. के बीच में उनका समय होना निश्चित किया है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र भी अपनी छानबीन के आधार पर भूषण का यही समय निश्चित करते हैं।

बहिःसाक्ष्यों में भूषण को चिंतामणि और मतिराम का भाई माना गया है। इन बहिसाक्ष्यों में ***कालिदास हजारा, आचार्य भिखारी दास, चिटणीस बखर, रसचन्द्रिका*** (मतिराम के प्रपौत्र बिहारी लाल द्वारा रचित) आदि से यह साबित होता है कि वह तीनों सम्बन्धी थे और सहोदर बंधु थे। अपने जीवन के विषय में कुछ संकेत ***शिवभूषण*** में देते हुए भूषण लिखते हैं –

*''द्विज कनोज कुल कस्यपी रतिनाथ कौ कुमार।*
*बसत त्रिविक्रमपुर सदा जमुनाकंठ सुठार।।''*[3]

इसके आधार पर यह साबित होता है कि भूषण का जन्म स्थान कानपुर में गंगा के दाहिने तट पर तिकवाँपुर (त्रिविक्रमपुर) ग्राम था। ये कान्य कुब्ज ब्राह्मण थे एवं उनके पिता का नाम रतिनाथ या रत्नाकर था। यह वही गाँव है जहाँ बीरबल जैसे राजा और कवि का जन्म हुआ था। भूषण को कवि भूषण की पदवी चित्रकूटाधिपति हृदयराम सोलंकी ने दी थी। इस तथ्य से साबित होता है कि भूषण का वास्तविक नाम भूषण नहीं था। यह नाम उन्हें उपाधि स्वरूप मिला था जिसे भूषण ने अपना लिया और साहित्य में आज भी उन्हें इसी नाम से जाना जाता है। भूषण का असली नाम आज भी अज्ञात है। कुछ विद्वानों ने साक्ष्यों के आधार पर अनुमान लगाने का प्रयास किया है।

1. कुँवर महेन्द्रपाल सिंह – पतिराम (तिकवांपुर गाँव में एक भाट के आधार पर)

2. भगीरथ प्रसाद दीक्षित – मनिराम (सितारा गढ़ के शाहू महाराज के राजकवि 'मनिराम' के सन्दर्भ में एक कवित्त के आधार पर)

3. पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र – घनश्याम (***राधामाधवविलास*** चम्पू के एक कवितांश के आधार पर)

इस प्रसंग में भूषण का संक्षिप्त जीवनवृत्त(मोनोग्राफी) लिखने वाले राजमल बोरा का निष्कर्ष अधिक समीचीन है। उनका मानना है कि अपुष्ट प्रमाणों के आधार पर भूषण का वास्तविक नाम ढूंढ़ना व्यर्थ है। जब–तक भूषण के वास्तविक नाम के सन्दर्भ में कोई पुष्ट सामग्री सामने नहीं आ जाती तब–तक हमें भूषण नाम पर कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। भूषण

ने भी अपना यही नाम स्वीकार कर लिया था, इसीलिए अपने वास्तविक नाम का उल्लेख वह अपनी कृतियों में नहीं करते।

चूँकि भूषण की जन्मतिथि के विषय में विद्वानों में मतभेद है। अतः कुछ लोगों ने भूषण का समय अनिश्चित मानकर उनके आश्रयदाताओं के सन्दर्भ में भी सवाल खड़े किये हैं। हालांकि स्वयं भूषण की कृतियों से यह साबित होता है कि वह हृदयराम राम सोलंकी, छत्रपति शिवाजी, छत्रसाल जैसे राजाओं के राजदरबार में रहे थे। उनका अधिकांश समय शिवाजी के दरबार में व्यतीत हुआ। भूषण ने एक दोहे में स्पष्ट कहा है –

*''देसनि देसनि ते गुनी आवन जाचन ताहि।*
*तिनमैं आयौं एक कवि भूषण कहिए जाहि।।'*[4]

इस दोहे से स्पष्ट होता है भूषण अपने विषय में स्वयं सूचना दे रहे हैं।वह कहते हैं कि शिवाजी के दरबार में देश–देश के आये हुए गुणीजनों में एक कवि भूषण भी आये थे। भूषण के दक्षिण जाने से संबंधित कुछ जनश्रुतियाँ भी प्रसिद्ध हैं; जिनमें से एक यह है कि भूषण द्वारा एक दिन खाने में नमक कम होने की शिकायत करने पर उनकी भाभी ने उन्हें ताना मारा कि वह नमक कमाकर नहीं लाये जो उन्हें दिया जाय। इससे नाराज होकर वह घर से निकल गये और दक्षिण पहुँचकर शिवाजी से सम्मानित होने के पश्चात् उन्होंने वहाँ से उँटों नमक घर पहुँचवाया। इन जनश्रुतियों के उल्लेख से यह पता चलता है कि भूषण शिवाजी के दरबार में गये थे और वहाँ उनका काफी मान–सम्मान हुआ। इस जनश्रुति के अलावा शिवाजी से पहली बार मिलने का एक और जनश्रुति मिलती है। इस जनश्रुति के अनुसार भूषण जब दक्षिण पहुँचे तो एक मंदिर में ठहरे थे। वहाँ उन्होंने रात में एक व्यक्ति को अपना कवित्त सुनाया और उससे कहा कि वह शिवाजी से मिलना चाहते हैं। उस व्यक्ति ने उन्हें अगले दिन दरबार में आने के लिए कहा और वह चला गया। सुबह दरबार में पहुँचकर भूषण को ज्ञात हुआ कि वही व्यक्ति शिवाजी हैं जिनसे वह रात में मिले थे। शिवाजी ने उनको अपने दरबार में रख लिया।

इन जनश्रुतियों से यही पता चलता है कि भूषण अवश्य शिवाजी के दरबार में रहे थे। वहाँ उनका काफी मान–सम्मान हुआ। शिवाजी के दरबार में कुछ साल रहने के पश्चात् भूषण

अपने घर लौट आये। तत्पश्चात् वे महाराज छत्रसाल के यहाँ भी गये। छत्रसाल के संबंध में एक उक्ति प्रसिद्ध है कि जब महाराज छत्रसाल ने जाना कि भूषण शिवाजी के दरबार से आये हैं तो उन्होंने भूषण की पालकी में अपना सम्मान प्रदर्शित करने के लिए कंधा लगाया था। इसी से संबंधित भूषण का कथन है –

*''सिवा को सराहौं कि सराहौं छत्रसाल को।''*[6]

इस प्रकार भूषण का दो आश्रयदाताओं के यहाँ रहना प्रसिद्ध है। स्वयं शिवाजी के वर्णनों से भी पता चलता है कि वे उनके दरबार में अवश्य रहे होंगे। शिवाजी और छत्रसाल के अलावा भूषण मुगल दरबार में भी गये थे परन्तु वहाँ उनका मन न रमा। अतः वे वहाँ से लौट गये।

भूषण की कृतियों के विषय में ***शिवराज भूषण, भूषण उल्लास, भूषण हजारा, छत्रसाल दशक, शिवा बावनी*** आदि का उल्लेख मिलता है। ***शिवराजभूषण*** या ***शिवभूषण*** भूषण की प्राामाणिक कृति है जिसपर कोई विवाद नही है। बाकी कृति की रचनातिथि वगैरह का भी उल्लेख कवि ने कर दिया है अतः इसे लेकर कोई भ्रम पैदा नहीं हुआ। ***शिवराजभूषण*** का स्वरूप प्रबंधात्मक है। इसमें 100 अर्थालंकार, 4 शब्दालंकार और 1 उभयालंकार इस तरह 105 अलंकारों का विवेचन हुआ है। ***छत्रसाल दशक*** और ***शिवा बावनी*** को विद्वान प्राामाणिक नहीं मानते। कुछ फुटकल कविताएँ अवश्य प्राप्त हुयी हैं जो छत्रसाल और शिवाजी से संबंधित हैं परन्तु इस नाम से भूषण ने इनकी रचना की हो ऐसा उल्लेख नहीं मिलता। मिश्र बन्धुओं ने भी भूषण का सम्पादन करते समय यह स्वीकार किया है कि उन्हें इनकी कोई हस्तलिखित प्रति नहीं मिली किन्तु अपने ग्रंथ में इसे उन्होंने दिया है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र अपनी छानबीन में इन कृतियों की प्रामाणिकता को संदेहास्पद मानते हैं और इन्होंने शिवाजी और छत्रसाल से संबंधित स्फुट छंदों को ***'प्रकीर्णक'*** के अन्तर्गत रखा है।

***शिवा बावनी*** और ***छत्रसाल दशक*** पर अपने विचार रखते हुए वह लिखते हैं –

''शिवा बावनी और छत्रसाल दशक का संग्रह सबसे पहले सन् 1890 में भाटिया बुकसेलर्स गोवर्धनदास लक्ष्मीदास, बंबई, ने किया। शिवा बावनी और छत्रसाल दशक दोनों ही उनके यहां से सन् 1890 में सबसे पहले प्रकाशित हुए हैं और इन दोनों संग्रहों के लिए

उत्तरदायी उक्त प्रकाशक ही है। शिवा बावनी का संग्रह तो कुछ भाटों से सुनी सुनायी कविता और कुछ प्राचीन संग्रहों में मिलने वाली भूषण की कविता का संकलन करके किया गया है। बावनी नाम रखने के लिए तो उन्होंने भूषण और शिवाजी के सम्बंध में प्रचलित किंवदन्ती को आधार बनाया है। पर छत्रसाल दशक के लिए उनके पास कोई आधार ही न था। उन्हें दो संग्रहों में कुछ छंद छत्रसाल के लिये मिले जिन्हें उन्होंने भूषण की रचना समझ कर 'दशक' नाम रखकर प्रकाशित कर दिया।''[6]

इस तरह छंदों को जोड़–जोड़ कर प्रकाशकों ने उसे एक अलग–अलग पुस्तक का नाम ही चला दिया। इस पर विश्वनाथ मिश्र आगे लिखते हैं –

''बावनी और दशक का प्राचीन काल में कोई अस्तित्व न था। इसका एक पक्का प्रमाण यह भी है कि इन दोनों पुस्तकों की न तो कोई हस्तलिखित प्रति आज तक मिली है और न सन् 1890 से पूर्व इनका किसी पुस्तक में नामोल्लेख ही हुआ।''[7]

### *3.1.1 शिवराजभूषण* में वर्णित ऐतिहासिक घटनाक्रम

भूषण ने कवि केशवदास की तरह चरितकाव्य नहीं लिखा है जिसमें ब्यौरेवार राजनीतिक घटनाएँ दर्ज हों। ***शिवराजभूषण***में रीतिकालीन वीरकाव्य के अनुरूप ही कविता हुयी है लेकिन भूषण ने इसके लिए दोहे–चौपाई का सहारा न लेकर दोहा, छप्पय, कवित्त, सवैया आदि मुक्तक छंदों का प्रयोग किया है। इसके अलावा कवि ने इसे एक अलंकार ग्रंथ के रूप में रचा है। दोहे में अलंकार का परिचय तत्पश्चात् मुक्तकों में उसका उदाहरण प्रस्तुत किया है। दोहे की भाषा बहुत सहज और सरल है जिससे अलंकार का परिचय सरलतापूर्वक हो जाता है। सभी अलंकारों का उदाहरण वीर रस में ही दिया गया है। वीर रस के परिपाक में भूषण ने अन्य कवियों को बहुत पीछे छोड़ दिया है। वीर रस के उदाहरणों में भूषण ने शिवाजी का वर्णन किया है। इस तरह शिवाजी के वर्णन में तत्कालीन ऐतिहासिक घटनाएँ भी स्वतः दर्ज होती गयी हैं जिनका ऐतिहासिक महत्व है।

कवि ने ***शिवराजभूषण*** के शुरूआत में ही रायगढ़ दुर्ग का वर्णन किया है जो शिवाजी की राजधानी थी। इस वर्णन में शिवाजी के पूर्वजों का उललेख मिलता है। भूषण ने शिवाजी का संबंध सिसोदिया वंश से बताया है। प्रसिद्ध सिसोदिया वंश के ही राजा ईश्वर को अपना सिर उपहार में देते थे। ऐसे ही महान वंश में माल मकरंद नाम का बड़ा राजा हुआ। निजाम भी उसका मित्र हुआ करता था। इस वंश के राजाओं को सरजा, भोंसला एवं खुमान की उपाधियाँ प्राप्त हुयी थीं। शिवाजी के लिए ये उपाधियाँ हर जगह वर्णित हुयी है। इसी वंश में शाहू जी महाराज हुए जिनके पुत्र शिवाजी थे। शिवाजी के उत्पन्न होते ही सर्वत्र उत्साह छा गया और मलेच्छ वंश का अहंकार मिट गया –

*''महाबीर ता बंस में भयो एक अवनीस।*
*लियो बिरद सीसोदियौ दियौ ईस को सीस।*
*ता कुल में नृपवृंद सब उपजै बखत–बिलंद।*
*भूमिपाल तिनमें भयौ बड़ौ माल मकरंद।*
*सदा दान करवान में जाके आनन अंभ।*
*साहि निजाम सखा भयौ दुग्ग देवगिरि खंभ।*
*जातें सरजा बिरद भौ सोहत सिंघ–समान।*
*रन–भ्वैं–सिला सु भ्वैसिला आयुषमान खुमान।''*[8]

कवि ने शिवाजी की महत्वाकांक्षाओं एवं उनकी वीरता को एक बालक के बड़े होने के विकासक्रम में दर्शाया है। भूषण के अनुसार शिवाजी ने अपने बचपन में ही गढ़कोट जीत लिया और लड़कपन आते–आते गोलकुंडा तथा बीजापुर के किले जीत लिये तथा जवानी में दिल्लीपति अर्थात मुगल सम्राट औरंगजेब को जीत लिया। यहाँ औरंगजेब के लिए **दिल्ली पतिपात्स्याह** यानी दिल्लीपति पादशाह (बादशाह) शब्द आया है। भूषण के अनुसार शिवाजी ने खेल–खेल में ही दक्षिण के दुर्गों को जीत लिया एवं रायगढ़ को अपनी राजधानी बनाकर रहने लगे। शिवाजी की प्रशंसा में कवि अति उत्साह में उनकी वीरता का बढ़ा–चढ़ाकर वर्णन करने से गुरेज नहीं करता। औरंगजेब जैसे शासक को शिवाजी के सामने तुच्छ बनाकर पेश करना कवि की मनोवृति को उजागर करता है। कवि इतिहास की मर्यादा को नहीं मानता, उससे यह अपेक्षा करना भी नहीं चाहिए क्योंकि वह इतिहास नहीं

साहित्य की रचना कर रहा होता है। शिवाजी भूषण के लिए नायक हैं कोई इतिहास–पुरूष नहीं। नायक का वर्णन भूषण अन्य प्रचलित हिन्दी के साहित्यिक नायकों के साथ करते है; उसी प्रकार खल पात्रों का वर्णन शिवाजी के विरोधियों के लिए करते हैं। उदाहरण के लिए शिवाजी की तुलना अर्जुन, इन्द्र, शिव आदि मिथकीय पात्रों के साथ की गयी है वही अफजल खाँ या औरंगजेब की तुलना रावण, दुर्योधन, दु:शासन जैसे खल पात्रों के साथ हुई है।

ऐतिहासिक घटनाओं के रूप में शिवाजी का पन्हाला विजय का उल्लेख, अफजल खाँ की हत्या, शाइस्ता खाँ की हत्या, औरंगजेब से मिलना एवं मुगल दरबार से सही–सलामत शिवाजी का निकल आना, औरंगजेब की धार्मिक नीतियों का वर्णन आदि का उल्लेख प्रमुखता से हुआ है। इन सब घटनाओं का ब्यौरेवार वर्णन न देकर भूषण ने जगह–जगह पर इसका उल्लेख करते हुए अपनी टिप्पणियाँ की हैं।

औरंगजेब काल में शिवाजी के नेतृत्व में मराठा शक्ति का उदयउस काल की एक बड़ी घटना है। पूरे मुगलकाल में केन्द्रीय सत्ता क्षेत्रीय शक्तियों से निपटती रही। यह केन्द्रीय शासन के लिए कोई नयी बात नहीं है। आज भी भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में ऐसे उदाहरण मिल जायेंगे जो केन्द्रीय सत्ता को कमजोर करते रहते हैं। औरंगजेब काल से पहले के विद्रोह या तो तलवार के दम पर कुचल दिये गये या फिर किसी अन्य कूटनीतिक चाल से समाप्त कर दिये गये। उदाहरण के तौर पर अकबर के शासनकाल में ही कुछ विद्रोह सेना भेजकर दबा दिये गये तो कुछ अकबर की रातनीतिक सूझ–बूझ से खत्म हो गये। राजपूत भारतीय राजनीति में हमेशा से अलग भूमिका निभाते आ रहे थे। उन्होंने कभी–भी अपनी स्वतंत्रता से समझौता नहीं किया और सदैव केन्द्रीय शासन के समक्ष चुनौती खड़ा करते रहते थे। किन्तु अकबर की दूरदर्शी नीतियों से वह मुगल साम्राज्य के प्रहरी बन गये। हालांकि स्वयं अकबर काल में ही महाराणा प्रताप जैसे राजपूत ने अपनी स्वतंत्रता के लिए सदैव क्रांति का बीड़ा उठाये रखा। अकबर की राजपूत नीति मुगल साम्राज्य के स्थायित्व का महत्वपूर्ण स्तंभ बनी। अकबर ने राजपूताने से वैवाहिक संबंध जोड़कर एवं उन्हें क्षेत्र में स्वतंत्रता देकर उन्हें मुगल साम्राज्य का संरक्षक बना लिया। वैवाहिक संबंध दोनों के बीच की कड़वाहट को मिटाने में सफल रहें।

जहाँगीर और शाहजहाँ तक कमोबेश यही नीति चलती रही। राजपूत राजा मुगल साम्राज्य के प्रति वफादार बने रहे। किन्तु औरंगजेब काल में मुगल राजनीति में भारी बदलाव हुए। मुगल राजनीति में चरमपंथी तत्वों के उभार से नये समीकरण बनने शुरू हो गये। औरंगजेब को **सामूगढ़ के युद्ध** में दाराशिकोह के खिलाफ मिली सफलता में इस वर्ग का बड़ा हाथ था वे यह नहीं चाहते थे कि दाराशिकोह जैसा उदारवादी चरित्र का व्यक्ति मुगल सम्राट बने। दारा के सम्राट बनने से उनके हितों को झटका लगता। अतः उन्होंने औरंगजेब का साथ दिया। औरंगजेब ने भी उन्हें खुश करने के लिए हिन्दू मंदिरों को तुड़वाने एवं हिन्दू तीर्थयात्रियों पर जजिया कर थोपने जैसे निर्णय ले लिए। उसके इन कदमों से हिन्दू जनता में औरंगजेब की हिन्दू विरोधी शासक की छवि निर्मित हो गयी एवं आम जनता का भरोसा उस पर से उठने लगा। ऐसी स्थितियों में कुछ महत्वाकांक्षी क्षेत्रीय राजाओं ने मुगल शासन के खिलाफ आवाज उठायी तो उन्हें जनता का भरपूर समर्थन हासिल हुआ। पश्चिम भारत में शिवाजी ने विद्रोह का झंडा बुलंद किया तो राजपूताने में जसवंत सिंह की मृत्यु पर उत्तराधिकारी के सवाल पर दुर्गादास राठौर ने मुगलों को चुनौती दी। उत्तर में बुंदेलखंड में छत्रसाल ने मुगल साम्राज्य को कड़ी चुनौती दी।

### 3.1.2 शिवाजी के नेतृत्व में मराठा शक्ति का उदय –

हिन्दी कवियों ने जिस तरह से शिवाजी और छत्रसाल का वर्णन किया है उससे तो यही साबित होता है कि ये नायक जनता में काफी लोकप्रिय थे। शिवाजी और छत्रसाल दोनों ने ही मुगलों के एक बड़े क्षेत्र को अपने अधीन कर लिया था और कर (tax) प्राप्त किया था। औरंगजेब की 1707 ई. में मृत्यु तक ये दोनों ही राजनीतिक रूप से काफी शक्तिशाली हो गये थे और बाद में मराठा तो एक बड़ी शक्ति के रूप में उभरे। मराठाओं की शक्ति का उभार शिवाजी के साथ हुआ। भूषण के अनुसार शिवाजी शाहजी भोसला के पुत्र थे और इन्होंने बचपन में ही अपनी योग्यता का परिचय दे दिया था। भूषण के अनुसार शिवाजी ने बचपन में कई किले जीत लिये थे –

*''भूषण भनत बाललीला गढ़कोट जीते*
*साहिकै सिवाजी करि चहुंचक्क चाहकौं।*
*गोलकुण्डा बीजापुर जीत्यौ लरिकाइ ही मैं*
*ज्वानी आये जीत्यौं दिल्लीपति पात्स्याह कौ।''*[9]

इस पद में शिवाजी द्वारा गोलकुण्डा, बीजापुर, और औरंगजेब को जीत लेने का उल्लेख हुआ है। इसमें से पहले दोनों राज्य दक्षिण भारतीय हैं जो महाराष्ट्र के पड़ोस में स्थित हैं। शिवाजी ने अपनी तरूणाई में ही उधर के कई किले जीतकर दक्षिण में अपने पाँव पसारने शुरू कर दिया था। उस समय दक्षिण में शिवाजी द्वारा जीते गये किलों के स्वामी बीजापुर राज्य के अधिकारी थे। अतः बीजापुर का सम्राट शिवाजी के इस विजयों से शंकित हो गया और उसने शिवाजी को रोकने के लिए अफजल खाँ नामक अधिकारी को भेजा। इतिहास में अफजल खाँ और शिवाजी की भेंट का खासा महत्व है क्योंकि इसके बाद ही शिवाजी की शक्ति में काफी बढ़ोत्तरी हुई एवं दिल्ली बादशाह औरंगजेब को भी शिवाजी की बढ़ती शक्ति को रोकने के लिए दक्षिण पर ध्यान देना पड़ा था।

### 3.1.3 शिवाजी का बीजापुर के खिलाफ अभियान –

भूषण ने ***'शिवराजभूषण'*** में अपने कई छंदों में अफजल खाँ और शिवाजी की मुलाकात एवं उनके बीच हुए संघर्ष का ब्यौरा दिया है जो ज्यों का त्यों इतिहास में भी मिलता है। अफजल खाँ का जिक्र ***'शिवराजभूषण'*** में पहली बार 38वें छंद में आया है –

*''ज्यौं अफजल्लहि मारि महि पर कीरति श्री शिवराज सुधारी।''*[10]

इसके अलावा अन्य कई छंदों में अफजल खाँ का जिक्र हुआ है। सन् 1659 ई. में अफजल खाँ शिवाजी को रोकने हेतु 10,000 की सेना लेकर बीजापुर से रवाना हुआ। अफजल खाँ को उम्मीद थी कि शिवाजी उससे लड़ने की हिमाकत नहीं करेगा। अतः उसने शिवाजी से बातचीत करके मामले को सुलझाने की कोशिश किया। शिवाजी भी इस बात के लिए सहमत हो गये। अफजल खाँ ने एक दूत भेजकर बात करने का समय और स्थान निश्चित

किया। दोनों को ही एक–दूसरे पर हमला होने का अंदेशा था अतः दोनों ही तैयार होकर मिलन स्थल पर पहुँचे थे। जैसे ही अफजल खाँ शिवाजी के गले मिलने लगा तो बड़ी चालाकी से वह शिवाजी की गर्दन पकड़कर दबाने की कोशिश करने लगा। शिवाजी भी अपनी तरफ से तैयार थे और उन्होंने बघनख से हमला करके अफजल खाँ को मार दिया। वहाँ मौजूद अन्य अफजल खाँ के सैनिक भी मारे गये। इस सम्पूर्ण वाकयात को भूषण ने एक छंद में चित्रित किया है –

*''दानव आयौं दगा करि जावली दीह भयारो महामद भारयौ।*
*भूषण बाहुबली सरजा तेहि भेटिबे कौ निरंसक पधारयौं।।*
*बीछू के घाय गिरे अफजल्लहि ऊपर ही शिवराज निहारयौं।*
*दाबि यौं बैठो नरिंद अरिंदहि मानौ मयंद गयंद पछारयौ।।''*[11]

अर्थात् ''जावली (वह स्थान जहाँ शिवाजी ने अफजल खाँ को मारा था) में दानव (अफजल खाँ) दगा करने आया, जो लंबा–चौड़ा भयावना और बड़ा घमंडी था। भूषण कहता है, बाहुबल से युक्त शिवाजी बिना किसी शंका के–बेखटके–उससे मिलने को पधारे–गये। बिच्छू (एक शस्त्र) के घाव को खाकर जब अफजल खाँ गिरा, तो शिवाजी उसके ऊपर ही देख पड़े। वह नरेन्द्र अपने श्रेष्ठ शत्रु को नीचे दबाकर इस तरह बैठे, जैसे शेर ने हाथी को पछाड़ दिया।''[1]

अफजल खाँ की शिवाजी को रोकने की रणनीति बुरी तरह से फेल हुयी और उसे अहमन्यता के कारण अपना जीवन भी गँवाना पड़ा। इस कांड के पश्चात् शिवाजी की शक्ति में और वृद्धि ही हुयी तथा बीजापुर के नवाब को नीचा देखना पड़ा। **अफजल खाँ की मृत्यु के पश्चात् मराठे भी शिवाजी को अपना नेता मानने लगे एवं उनके नेतृत्व में इकट्ठे होने लगे।** अफजल खाँ के अलावा भूषण ने बीजापुर की सरकार द्वारा भेजे गये अन्य अधिकारियों को भी शिवाजी द्वारा मार भगाने का जिक्र किया है –

*''अफजल खाँ रूस्तमै जमान फत्तेखान कूटे लूटे जूटे ये वजीर बिजैपुर कै।''*[12]

[1]यह अनुवाद साभार भूषण के छंदों का तात्पर्य स्पष्ट करने के लिए 'शिवराज भूषण : भाषा टीका सहित' पुस्तक से दिया जा रहा है। ब. हि. वि. के पुस्कालय से यह मुझे प्राप्त हुई थी जिसमें टीकाकार के नाम वाला पृष्ठ गायब था। आगे भी जिन छंदों के अर्थ दिये गये हैं वह इसी पुस्तक से लिए गये हैं। यह कृति किताबघर प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित है।

अर्थात् रूस्तमे जमां फतह खाँ जैसे लोंगों को भी हराकर शिवाजी ने उन्हें सुलह करने पर विवश किया। अब स्थिति और नाजुक हो गयी। इसी समय तक मुगल क्षेत्रों पर भी शिवाजी हमला करने लगे। जदुनाथ सरकार ने अपनी पुस्तक *'Shivaji and his times'* में लिखा है कि ''1657 से पहले शिवाजी ने मुगल क्षेत्रों के साथ कोई छेड़खानी नहीं की थी।'[13] इस समय तक औरंगजेब दक्कन का ही काम देख रहा था। किन्तु बाद में यह नीति शिवाजी ने छोड़ दिया और मुगल क्षेत्रों पर भी आक्रमण करके उसे लूटने लगे। शिवाजी द्वारा मुगल क्षेत्रों के अतिक्रमण ने औरंगजेब को भी शिवाजी की तरफ ध्यान देने पर मजबूर कर दिया।

शिवाजी की बढ़ती शक्ति को रोकने के उद्देश्य से अफजल खाँ के पश्चात् जो दूसरा प्रमुख अधिकारी भेजा गया वह शाइस्ता खाँ था। इसका भी भूषण ने कई जगह उल्लेख किया है। शाइस्ता खाँ मुगल अधिकारी था और रिश्ते में औरंगजेब का मामा लगता था। औरंगजेब ने शिवाजी से मुगल क्षेत्र वापस लेने के लिए उसे भेजा और उसके साथ ही मारवाड़ शासक जसवंत सिंह को भी लगा दिया। जसवंत सिंह और शाइस्ता खाँ दोनों ने मराठा क्षेत्र में प्रवेश किया और पुणे में अपना पड़ाव डाला। भूषण ने इसका जिक्र ***शिवभूषण*** में 341 छंद (विश्वनाथ प्रसाद मिश्र) में किया है –

*''पूना बीच सुनिकै अमीरन की गति लीन*
*भाजिबे को मीरन अमीरन की गति है*
*मारूयों जुरि जंग जसवंत जावंत जाके।*
*केते रापैं रजपूत राजपूत अति हैं।।'' (छंद 341)*

इससे इस बात की पुष्टि होती है कि शाइस्ता खाँ के साथ जसवंत सिंह भी पूना में पड़ाव डाले हुए थे। यहाँ पर भूषण ने जसवंत सिंह के साथ युद्ध का भी वर्णन किया है या फिर अन्य छंदों में शिवाजी से डरकर बच निकलने का उल्लेख किया है। हालांकि इतिहासकारों ने जसवंत सिंह के संबंध में यह अनुमान जताया है कि उसने शाइस्ता खाँ की कोई मदद नहीं की। जिस समय शाइस्ता खाँ पर आक्रमण होने वाला था, उससे थोड़ी दूरी पर जसवंत सिंह का भी पड़ाव था। जदुनाथ सरकार ने लिखा है –

"आगे की ओर, सिंहगढ़ के दक्षिण की तरफ जाने वाली सड़क पर उनका सेनापति महाराजा जसवंत सिंह 10000 व्यक्तियों के साथ शिविर में रूका था।"[14]

भूषण ने शाइस्ता खाँ के आने का वर्णन निम्न छंद में किया है –

''दच्छिन को दाबि करि बैठो आन सायस्तखान, पूनामाहि गहिं जार करवार को।

हिन्दुआन खंभ गढ़पति दलखंभ मनै भूषण भिरैया कियौ सुजस अपार को।

मनसबदार धौकीदारान गँजाय, महलन में मचाय महाभारत सो भार को।

तो सौ को सिवाजी जिहि दौ सौ आदमी सों जीत्यौं संग सरदार सौ हजार असवार को।''[15]

अर्थात् ''शाइस्ता ने दक्षिण देश पर अपना अधिकार कर लिया और तलवारों का बल दूना कर पहले से दोगुनी सेना के साथ पुणे में रहने लगा। जिस दिन शिवाजी ने शाइस्ता खाँ के डेरे पर आक्रमण किया, उस सभी राग–रंग में मस्त होकर सुख की नींद सो रहे थे। शिवाजी ने शाइस्ता खाँ के मुसाहिब तथा चौकीदारों को खत्म कर बड़ा भारी महाभारत मचा (युद्ध कर) अपना यश फैलाया। ... एक लाख सिपाहियों के बीच अपने दो सौ आदमियों के साथ ही शिवाजी ने उस सरकार पर विजय पा ली।''[16]

इस छंद से स्पष्ट होता है कि औरंगजेब के आदेश से शाइस्ता खाँ दक्षिण में शांति स्थापित करने आया। शुरूआत में उसे शिवाजी के विरूद्ध सफलता भी मिली। उसने चाकण को जीता तत्पश्चात् पूना में वह रूका। शिवाजी ने उस पर आक्रमण करने के लिए रात का समय चुना। अपनी सेना को बाहर ही रखकर शिवाजी ने 200 लोगों के साथ शाईस्ता खाँ पर आक्रमण कर दिया। शाईस्ता खाँ के दरबान और मनसबदार मारे गये। इस हमले में शाईस्ता खाँ का बेटा मारा गया तथा स्वयं शाईस्ता खाँ ने अपना एक हाथ गवाँ दिया –

*''सायस्ताखाँ दक्षिण को प्रथम पठायौ वह बेटा के समेत हाथ जाइ कै गँवायौ है।''*[17]

जदुनाथ सरकार के अनुसार यह घटना 5 अप्रैल 1663 ई. की है।यहाँ भूषण द्वारा वर्णित सारा वर्णन इतिहासकारों द्वारा अनुमोदित है। यदुनाथ सरकार ने भी 200 आदमियों को लेकर शाईस्ता पर आक्रमण करने का उल्लेख किया है –

"शिवाजी अपने विश्वस्त चिमनाजी, बापूजी के साथ पहले हरम में घुसे और उनके पीछे से 200 आदमियों ने उनका अनुसरण किया।"[18]

शाइस्ता खाँ की दुर्गति का जिक्र भूषण ने अन्य कई छंदों में भी किया है जिससे यह साबित होता है कि इस घटना के पश्चात् मुगलों की काफी किरकिरी हुई; जिससे औरंगजेब को दक्षिण में शिवाजी की शक्ति का एहसास होने लगा। वह अब इस समस्या को निपटाने के लिए बड़ी तैयारी करने पर मजबूर हुआ। अन्ततः उसने अपने समय के सर्वश्रेष्ठ सेनापति एवं कूटनीतिज्ञ जयपुर के राजा जयसिंह को शिवाजी को रोकने हेतु भेजा। इससे पहले भी कुछ ऐसे कांड हो चुके थे जिनकी वजह से महाराजा जयसिंह को भेजना औरंगजेब के लिए अनिवार्य हो गया। जसवंत सिंह के शिवाजी को न रोक पाने के कारण औरंगजेब ने उन्हें वापस बुला लिया। इसी बीच **1664 ई. में शिवाजी ने मुगलों के अधिकार वाले सूरत नगर पर हमला कर उसे बुरी तरह से लूटा।** यह घटना 6 जनवरी 1664 को घटित हुई थी। इस लूट में शिवाजी को बहुत सारा लूट का माल हाथ लगा। सूरत लूट की घटना कई दिन तक चलती रही और नगर को बुरी तरह से लूटा गया। इस घटना ने भी औरंगजेब को जयसिंह को दक्षिण में भेजने के लिए मजबूर किया। ***'सूरत को मारि बदसूरत सिवा करी।'***वाले छंद में यह स्पष्टतया वर्णित है।

### 3.1.4 शिवाजी और मुगल

**मुगल इतिहास में जयसिंह और शिवाजी के बीच संघर्ष** और मुलाकात एक अभूतपूर्व घटना है। हालांकि भूषण के यहाँ शिवाजी और जयसिंह का वर्णन उतने विस्तार से नहीं मिलता जितना कि अफजल खाँ और शाइस्ता खाँ वाले प्रकरण का मिलता है। जयसिंह की प्रशंसा में भूषण ने अलग से एक छंद रचा है किन्तु उसमें किसी घटना का जिक्र नहीं आया है। एक दो अन्य प्रसंगों में भूषण ने इस बात का संकेत किया है कि राजा जयसिंह को शिवाजी ने कई किले उपहार में सौंप दिये थे। दरअसल जयसिंह ने कूटनीतिक और सैन्य

दबाव डालकर शिवाजी को समर्पण करने पर मजबूर कर दिया था। अतः शिवाजी को मुगलों से छीने हुए कई किले उन्हें लौटाने पड़े। भूषण ने इसी घटना का जिक्र किया है –

*''सरजा सवाई सिवराज तैं सुहाई लीबे*
*सौगुनी बड़ाई गढ़ दीने दिलीस कौं।''*[19]

यहाँ पर वर्णित गढ़ देने का जो सन्दर्भ आया है वह शिवाजी द्वारा **पुरन्दर की संधि** के पश्चात् दिल्लीश्वर औरंगजेब को गढ़ यानी किले देने का जिक्र है। यहाँ सवाई का तात्पर्य मिश्रबंधुओं ने राजा जयसिंह से लगाया है जबकि विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने शिवाजी के विशेषण के तौर पर इसका प्रयोग किया है। एक अन्य छंद में इसी छंद का उल्लेख इस तरह से मिलता है–

*''तैं जयसिंहहि गढ़ दिये सिव सरजा जसहेत।*
*लीन्हें कैयो बार में बार न लागी देत।।''*[20]

इन छंदों से यह पता चलता है कि पुरन्दर की संधि (1665 ई.) के पश्चात् शिवाजी को अपने जीते हुए किले औरंगजेब को लौटाने पड़े थे। राजनीतिक रूप से यह मराठाओं की पहली बड़ी शिकस्त थी। इस घटना के पश्चात् शिवाजी को अपने किले तो खोने ही पड़े, साथ ही औरंगजेब के दरबार में अपने पुत्र शंभाजी को भेजना पड़ा। स्वयं भी औरंगजेब से मिलने दरबार में जाना पड़ा। वस्तुतः जयसिंह ने इस मसले को बहुत ही चतुराई से निपटाया था एवं शिवाजी को अपनी शर्तों पर दिल्ली भेजने में सफलता प्राप्त की थी। **भूषण ने पुरन्दर की संधि पर इसलिए भी अधिक नहीं लिखा होगा क्योंकि यह उन्हें अपने आश्रयदाता की जीत न होने पर प्रेरणादायी नहीं लगा होगा** क्योंकि इस घटना के पश्चात् शिवाजी को औरंगजेब के दरबार में जाना पड़ा था। इसी घटना के बाद औंरगजेब और शिवाजी एक–दूसरे से मिले थे जिसका भूषण ने बहुत बार जिक्र किया है कि जब शिवाजी मिलने पहुँचे तो औरंगजेब डर कर गुसलखाने में छिप गया था। हालांकि यह कवि की अतिश्योक्ति है क्योंकि औरंगजेब जैसा बादशाह अपनी दबंग छवि के लिए इतिहास में प्रसिद्ध है। शिवाजी के दिल्ली दरबार में पहुँचने पर उनका औरंगजेब ने उचित

मान–सम्मान नहीं किया जिससे शिवाजी रूष्ट हो गये। औरंगजेब ने उन्हें पंचहजारी मनसब दिया जिसे शिवाजी ने अपना अपमान समझा और उठकर वहाँ से चलने लगे। शिवाजी को पंचहजारी मनसब देकर औरंगजेब ने अपना अहंकार ही प्रदर्शित किया था क्योंकि शिवाजी अपने–आप को एक स्वतंत्र शासक के रूप में स्थापित करने के लिए मराठाओं को एक छत्र के नीचे लाने का प्रयास कर रहे थे जिसमें शुरूआत में ही वह काफी सफल रहे थे। पुरन्दर की संधि ने शिवाजी और मराठाओं को हतोत्साहित जरूर किया था लेकिन वे निराश नहीं हुए, जैसा कि बाद के उदाहरणों से पता चलता है। मराठा शिवाजी के नेतृत्व में अपने लिए एक विशाल साम्राज्य की कल्पना कर रहे थे एवं मुगलों की ही भाँति राष्ट्रीय फलक पर अपनी पहचान बनाना चाहते थे। मराठा राष्ट्र की कल्पना इसी का परिणाम था। औरंगजेब के सामने मराठाओं की शक्ति को नियंत्रित करने का जयसिंह ने एक अच्छा अवसर उपलब्ध कराया था किन्तु औरंगजेब इसका फायदा उठाने में नाकाम रहा। वह मराठाओं को अन्य आन्तरिक विद्रोहों में से एक समझ रहा था और शिवाजी की शक्ति को हल्के में ले रहा था।

*''पंच–हजारान बीच खराकिया मैं उसका कुछ भेद न पाया''*[21]

भूषण अपने इस अन्तिम पद में बहुत कुछ कह गये हैं। 'उसका कुछ भेद न पाया' अर्थात् औरंगजेब द्वारा शिवाजी की शक्ति को न पहचानना और उनकी महत्वाकांक्षा को भांप न पाना भविष्य में उसके लिए कितना कड़वा साबित हुआ वह इतिहास में साबित हो चुका है और इसी बात की ओर भूषण का इशारा है।

पंच हजारी मनसब शिवाजी के लिए एक अपमान की बात थी क्योंकि यही मनसब उनके पुत्र को भी औरंगजेब के दरबार में मिल चुका था। सिर्फ मनसबदारी ही नहीं जन्मदिन के उत्सव पर शिवाजी को उचित मान–सम्मान भी औरंगजेब ने नहीं दिया जिससे शिवाजी क्रोधित हो गये और दरबार से उठकर जाने का प्रयास किया। शिवाजी के इस कृत्य से नाराज होकर औरंगजेब ने उन्हें बन्दी बनाने का हुक्म दिया। यह घटना सन् 1666 ई. की है। इसका भूषण ने अपनी कविता में कई बार जिक्र किया है–

*''पंच हजारन बीच खरा किया मैं उसका कुछ भेद न पाया।*
*भूषण यौं कहि औरंगजेब उजीरन सों हिसाब रिसाया।।*

*कम्मर की त कटारी कई इस नाम ने गोसलखाना बचाया।*

*जोर सिवा करता अतरथ्थ भली भई हथ्थ हथ्यार न आया।।'*[22]

यहाँ इस छंद में भूषण ने साफ उल्लेख किया है कि पंचहजारी मनसबदारी दिये जाने पर शिवाजी ने उसे अपना अपमान समझा जिसे औरंगजेब समझ नहीं पाया। शिवाजी के विरोध से औरंगजेब बहुत परेशान हुआ। भूषण ने कहा है कि शुक्र था कि शिवाजी के हाथ में कटार नहीं थी वरना वहाँ कुछ अनर्थ हो जाता। भूषण के दिये इस विवरण से पता चलता है कि शिवाजी को पहचानने में औरंगजेब ने भूल की थी। जिसका खामियाजा उसे बाद में भुगतना पड़ा। औरंगजेब की इस भूल को इतिहासकार भी मानते हैं। अगर वहाँ शिवाजी का अपमान नहीं हुआ होता तो सम्भवतः मराठा भी राजपूतों की तरह मुगल साम्राज्य के मजबूत स्तंभ बन सकते थे। हालांकि यह केवल एक संभावना ही है क्योंकि औरंगजेब के पश्चात् मुगलों के सभी मजबूत स्तंभ भरभराकर ढह गये। औरंगजेब के उत्तराधिकारी साम्राज्य के पतन को रोकने में नाकामयाब रहे और धीरे–धीरे मुगलों की केन्द्रीय शक्ति का स्थान अलग–अलग क्षेत्रीय शक्तियों ने ले लिया।

भूषण के अनुसार औरंगजेब उनसे बचकर रहना चाहता था क्योंकि उसे डर था कि शिवाजी उस पर हमला भी कर सकते हैं। गुसलखाने में जाकर अपनी जान बचाने की बात भूषण ने कई बार कहा है। शिवाजी और औरंगजेब की मुलाकात के विषय में एक और छंद दर्शनीय है –

*''ह्यातें चल्यों चकतैं सुख देन को गोसलखाने गये दुख दीनों।*

*जाय दिल्ली–दरगाह सलाह को साह को बैर बिसन्हि कैलीनों।।'*[23]

यहाँ गुसलखाना[2]में औरंगजेब का छुपना या चले जाना इस बात का भी संकेत है कि शिवाजी द्वारा उचित शिष्टाचार न निभाने पर तनावपूर्ण माहौल में औरंगजेब गुसलखाने में चला गया। मुगलों के समय में गुसलखाने का प्रयोग विश्वस्त अधिकारियों से बातचीत करने में किया जाता था। इस मुलाकात के बाद औरंगजेब द्वारा शिवाजी को बंदी बना लिया गया। इस प्रकरण से शिवाजी और मुगलों के संबंध हमेशा के लिए खराब हो गये। अपनी अस्मिता की पहचान के लिए बेचैन मराठे अब और आक्रामक हो गये। बंदी बनाने के

[2]दीवानखाना या हरम के बीच का कमरा। अबुल फजल ने इसके लिये दौलतखाना शब्द का इस्तेमाल किया है। जहांगीर के समय में यह गुसलखाना ही कहलाता था।

पश्चात् शिवाजी को आगरा की जेल में रखा गया जहाँ से बड़ी चालाकी से वह निकल भागे और महाराष्ट्र पहुँचने में सफल हो गये। इसका जिक्र भूषण ने अपने कई छंदों में किया है।अपने देश लौटने के पश्चात् शिवाजी का लक्ष्य साफ था। वह एक नये साम्राज्य की स्थापना करना चाहते थे अतः अब उन्होंने मुगलों से युद्ध के लिए अपनी सेना को तैयार करना शुरू कर दिया। उनके सामने अब अपने खोये हुए गढ़ों और किलों को वापस लेने और उसे सुरक्षित रखने का लक्ष्य था जिसमें मुगलों के साथ सीधी लड़ाई होने की संभावना थी। इसी के संदर्भ में **सल्हेर का युद्ध, पन्हाले का युद्ध** का वर्णन भूषण ने प्रमुखता से किया है। इन दोनों युद्धों में मराठों को विजय मिली और मुगलों की स्थिति दक्षिण–पश्चिम में काफी खराब हो गयी। इन दोनों युद्धों का ऐतिहासिक महत्व भी काफी अधिक है। साल्हेर का युद्ध 1670 ई. से शुरू होकर 1672 तक चला। मुगलों की घेराबंदी काफी बड़ी थी और इसमें बड़े–बड़े मुगल अधिकारी किले को फतह करने के लिए एड़ी–चोटी का जोर लगा रहे थे। उनकी सेना में बहलोल खान, अमरसिंह चंदावत, मोहकम सिंह जैसे सेनापति थे। भूषण ने युद्ध की परिणति पर लिखा है–

*''सिवाजी खुमान सलहेर के दिलीस–दल कीनौ कतलान करवान गहिका में।*
*सुभट सराहे चंद्राउत, कछवाहे मुगलै पठान ठाहे फरकत परे कर में।।*
*भूषण भनत श्बैसिला के भट उदभट जीति घर आये धाक फैली घर–घर में।*
*मारू के करैया अरि गे अपरपुर तऊ अजौ मारू–मारू सोर होते है समर में।''*[24]

अर्थात् ''खुमान शिवाजी ने मलवार हाथ में लेकर सलहेरि के युद्ध के युद्ध में दिल्ली के दल में कत्लेआम कर दिया। सराहे अर्थात् मशहूर सुभट चन्द्रावत कछवाहे काट कर गिरा दिये। मुगल और पठान भी फर में पड़े फटकते थे, भूषण कहता है भौंसिला शिवाजी के उदभट् भट (विकट योद्धा) समर जीतकर घर लौट आये और उनकी धाक घर–घर में फैल गयी। मार करने वाले यद्यपि स्वर्ग चले गये तथापि अभी तक समर भूमि में 'मारो–मारो' का शोर होता है।''[25]

भूषण के विवरण से पता चलता है कि इस युद्ध में मुगलों की करारी हार हुयी थी और औरंगजेब को अपने कई सेनापति खोने पड़े थे जैसा कि एक–दूसरे छंद में भूषण कहते हैं–

*''गतबल खानदलेल हुव खानबहादुर मुद्ध।*
*सिव सरजा सलहेरि ढ़िग कुद्धद्धरि किय जुद्ध।।*
*जंगगति सुनि रंगग्गलि अवरंग तबल।''*[26]

''खानदलेल (दिलेर खान) गतबल (हीनबल) हो गया। बहादुर खाँ मुग्ध हो गया (बेबकूफ बन गया), जब सरजा शिवाजी ने सलहेरि के पास क्रोध धारण करके युद्ध किया। जंग की गति (युद्ध का हाल) सुनकर औरंगजेब का रंग गलित हो गया– उड़ गया और वह गतबल (साहस से हीन) हो गया।''[27]

वह आगे लिखते हैं –

''लिय धरि मोहकमसिंह कहँ अमँ किसोर नृप कुम्म।
मोल्लहिं जस नोल्लरि बहलोल्लिय धरि।।''[28]

अर्थात् ''श्रीसरजा शिवाजी ने मोहकमसिंह और नृपशिरोमणि किशोर सिंह को पकड़ लिया और पृथ्वी तल पर धूम के साथ संग्राम किया ..... नवल यश लड़कर मोल लिया और बहलोल खाँ को पकड़ लिया।''[29]

इन उद्धरणों की ऐतिहासिकता असंदिग्ध है। **सल्हेरि के युद्ध** में मुगलों की तरफ से लड़े सभी ऐतिहासिक पात्रों की दुर्दशा का भूषण ने सटीक विवरण दिया है। इस युद्ध में मोहकमसिंह, बहलोल खाँ और किशोर सिंह पकड़े गये थे। अमरसिंह चन्दावत वीरगति को प्राप्त हुआ और बहुत से सैयदों और पठानों की मृत्यु हुयी थी। लगभग तीन साल चले इस युद्ध में अंतिम विजय मराठों की हुयी। इस युद्ध की परिणति पर यदुनाथ सरकार ने लिखा है कि –

**"**वहां प्रतापराव, आनंदराव और पेशवा मोरो पंत की बड़ी सेना ने साल्हेर को घेर कर हमला किया। एक कड़े संघर्ष के बाद, इखलास खान और राव अमर सिंह चुंडावत का पुत्र मुहकम सिंह घायल हो गये और उन्हें उनके अन्य अधिकारियों के साथ पकड़ लिया गया। जबकि राव अमरसिंह और उसके कई अधिकारियों को उनके सैनिकों के साथ मार डाला गया और उनके शिविर को शत्रु सेना द्वारा कब्जे में ले लिया गया।"[30]

इसयुद्ध में जीत के बाद मराठों की शक्ति में और वृद्धि हुई जैसाकि जदुनाथ सरकार लिखते हैं –

"उनकी (शिवाजी की) इन सफलताओं से शिवाजी की प्रतिष्ठा और उनके प्रति विश्वास में बहुत बढ़ोत्तरी हुई।"[31]

अगर जदुनाथ सरकार के निष्कर्षों की भूषण के साथ तुलना करके देखें तो भूषण के दिये हुए विवरणों में समानताएँ हैं। भूषण भी युद्ध के बाद शिवाजी की घर–घर में धाक बनने का जिक्र करते हैं। युद्ध के अन्य विवरण भी मेल खाते हैं। इसके साथ ही मुगलों के साथ मराठों की झड़प बढ़ती गयी। 1670 के दौरान ही सूरत को शिवाजी ने दोबारा लूटा। इसके अलावा सन 1670 में ही **डिन्डौरी का युद्ध** भी हुआ था। इस युद्ध में भी मुगलों की काफी क्षति हुई थी जिससे मराठों के आत्मविश्वास में और बढ़ोतरी हुयी। सल्हेर के युद्ध के बाद 1673 में **उमरानी का युद्ध** भी दोनों पक्षों के बीच लड़ा गया। मुगलों के अलावा शिवाजी दक्षिणी ताकतों से भी संघर्षरत रहे। इन दक्षिणी ताकतों में बीजापुर, अहमद नगर, गोलकुंडा, बीदर, बरार जैसी ताकतें शामिल थीं। दक्षिण में औरंगजेब भी इन राज्यों से लड़ता रहता था। अतः इधर सदैव त्रिकोणीय संघर्ष की भी स्थिति बनी रहती थी। भूषण के ग्रंथ में इन पड़ोसी राज्यों का भी खूब वर्णन मिलता है। शिवाजी की यश कीर्ति का बखान करने के लिए भूषण ने इनके साथ हुए युद्धों को भी अपने काव्य का विषय बनाया है। शिवाजी के साथ हुए युद्धों में इन्हें भी हार का मुँह देखना पड़ा था। अफजल खाँ वाला प्रसंग बीजापुर राज्य से जुड़ा हुआ था जिसका उल्लेख पहले ही हो चुका है। दरअसल मराठे पहले इन्हीं राज्यों के दरबारों में अपनी सेवाएँ देते आ रहे थे। स्वयं शिवाजी के पिता साहू जी बीजापुर के राज्य से जुड़े हुए थे। इसी वजह से मराठों में राजनीतिक एकीकरण शिवाजी से पहले भी दिखायी देता। मराठाओं के उदय पर विचार करते हुए उनकी स्थिति को पी.वी. रानाडे ने इस तरह से स्पष्ट किया है –

''मराठा शक्ति का उत्कर्ष तथा मराठा राष्ट्रीयता का उदय एक ही समय में घटित हुए। इस तथ्य के बावजूद कि मराठा विभिन्न प्रशासनिक तथा भौगोलिक ईकाईयों के अन्तर्गत रह रहे थे ..... अहमद नगर, बीजापुर तथा गोलकुंडा पर मुगल विजय ने उस तिहरी दीवार को नष्ट कर दिया जिसने राजनीतिक दृष्टि से मराठों को अलग रखा था।''[32]

इन राज्यों पर मुगलों की विजय ने शिवाजी के पक्ष में मराठों को एकजुट होने का अवसर प्रदान किया जिससे अलग–अलग दिखने वाली मराठा शक्तियाँ शिवाजी के झंडे के नीचे एकत्र हो गयीं। हालांकि यह प्रक्रिया लम्बे समय तक चलती रही किन्तु शिवाजी ने शुरूआत से ही इन राज्यों के प्रति भी आक्रामक रवैया अपनाये रखा। भूषण द्वारा उल्लेखित पन्हाले के युद्ध का ऐसे ही सन्दर्भ आया है जिसका कोई प्रत्यक्षतः ऐतिहासिक विवरण कम ही मिलता है। पन्हाले का किला आदिलशाही शासकों के अधीन था और उस समय अवश्य ही महत्वपूर्ण रहा होगा क्योंकि भूषण के काव्य ग्रंथ में इसका बार–बार जिक्र आया है।इससे यह पता चलता है कि शिवाजी ने इस गढ़ को प्राप्त करने के लिए भरपूर उद्योग किया होगा। इतिहास ग्रंथों में पन्हाले की विजय पर कम जानकारी मिलती है। स्वयं यदुनाथ सरकार ने भी इसके उपलब्ध स्त्रोतों के अनुसार अनुमान व्यक्त करते हुए इसके बारे में सन् 1659 में इसे शिवाजी के अधिकार में आने की बात कही है। यदि भूषण के पन्हाला विजय से संबंधित छंदों को देखें तो तिथि तो हमें नहीं मिलती लेकिन इसके विषय में जरूर कुछ तथ्य सामने लाये जा सकते हैं। परनाले के किले से संबंधित छंदों में प्रमुख छंद है –

*''ले परनालों सिवा सरजा करनाटक लौं कुल देस बिगुँचे।*
*बैरिन के भजि बालक–बृन्द कटै कबि भूषण दूर पहुँचे।।*
*नाँघत–नाँघत घोर घने बन तारि परे यौंकटे जनु मूँचे।*
*राजकुमार कहाँ सुकुमार कहाँ बिकरार पहार वे ऊँचे।।''*[33]

अर्थात् ''सरजा सिवा ने परनाला लेकर कर्नाटक तक सब देशों का तहस–नहस कर डाला या उन्हें अपने हाथों में कर लिया। भूषण कहता है, वैरियों के बालक वृन्द भागे और वे दूर पहुँचे। घोर घने वन नाँघते–नाँघते हारकर यों गिर पड़े जैसे उनके ऊँचे (घुड़नस जो पैर में होती है) कट गये। कहाँ सुकुमार राजकुमार और कहाँ वे विकराल ऊँचे पहाड़।''[34]

इस छंद से कुछ तथ्य सामने आते हैं उनसे पता चलता है कि दुर्ग दुर्गम जगह पर था जिसे शिवाजी ने हस्तगत कर लिया और इसके पश्चात उन्होंने पूरा कर्नाटक रौंद डाला। दरअसल शिवाजी द्वारा कर्नाटक पर हमले के सन्दर्भ में तत्कालीन ऐतिहासिक ग्रंथों में उल्लेख कम मिलता है। डॉ. राजमल बोरा ने कर्नाटक पर शिवाजी के हमले से संबंधित

तत्कालीन ग्रंथों से मिले साक्ष्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि 'सन् 1659 के बाद से ही शिवाजी ने कर्नाटक के कई क्षेत्रों पर आक्रमण किया और उनसे कर वसूले।'[35]अतः भूषण द्वारा दिया गया पन्हाले की विजय का साक्ष्य सही मालूम पड़ता है। जदुनाथ सरकार ने भी पन्हाले पर हमले के विषय में जो विवरण दिया है वह भूषण के दिये विवरणों से मेल खाते हैं। हालांकि परनाला के किले पर शिवाजी ने कई बार आक्रमण किया। सन् 1659 में हुआ पहली था तथा दूसरा हमला 1666 ई. में किया गया जिसमें शिवाजी को सफलता नहीं मिली, परन्तु सन् 1673 ई. में मराठों द्वारा पन्हाला को विजित कर लिया गया जिसका विवरण भूषण ने दिया है। भूषण ने लिखा है कि परनाले के दुर्ग को हासिल करने के लिए मावली सेना उसके (दुर्ग के ऊपर) चढ़ गयी और अचानक हमला बोल दिया। किले में मौजूद लोग हमले के लिए तैयार नहीं थे अतः मराठों ने उसे आसानी से जीत लिया। पन्हाले की घटना सुनकर बीजापुर दरबार में काफी शोर–शराबा हुआ[3]और तत्कालीन मंत्री खवास खाँ पर इस हार का दोष मढ़ा गया। इसके पश्चात् बहलोल खाँ शिवाजी को परास्त करने के लिए भेजा गया लेकिन उसकी भी वही दुर्गति हुयी जो अफजल खाँ की हुयी थी। शिवाजी के साथ हुए युद्ध में बहलोल खाँ पराजित हुआ और कर देकर किसी तरह अपना जीवन बचाया था। बहलोल खाँ को बरजते हुए भूषण का एक छंद द्रष्टव्य है –

*''बचैगा न समुहाने बहलोल खाँ अयाने भूषण बखाने दिल आनि मेरा बरता।*
*तुझ ते सवाई तेरा भाई सलहेरि पास कैद किया साथ का न कोई वीर गरजा।*
*साहिन के साहि उसी औरंग के लीन्हे गढ़ जिसका तू चाकर और जिसकी है परजा।*
*साहि का ललन दिली दल का दलन अफजल का मलन सिवराज आया सरजा।''*[36]

भूषण ने शिवाजी के नेतृत्व में मराठों के उत्थान को बखूबी अपने काव्यग्रंथ में स्थान दिया है। ये भूषण की महज कोरी कल्पना नहीं है बल्कि उनका अपने आँख–कान की देखी–सुनी घटनाएँ हैं जिनके आधार पर उन्होंने शिवाजी के वीर चरित्र को अपने काव्य का नायक बनाकर प्रस्तुत किया है। भूषण राजदरबार में भी रहकर शिवाजी की झूठी प्रशंसा नहीं करते। उन्होंने जैसा शिवा का चरित्र देखा है वैसा ही वर्णन किया है। अगर उन्हें झूठी प्रशंसा ही करनी होती तो वे उत्तर के किसी राजदरबार में रहकर अपनी

[3]एदिल की सभा बोल उठी यो सलाह करौं व कहां भाजि जैहों। छंद

कविताएँ सुनाकर ख्याति अर्जित कर सकते थे अथवा औरंगजेब के ही दरबार में रह सकते थे किन्तु अपनी कविता के लिए एक उपयुक्त नायक की तलाश में वह दक्षिण–पश्चिम भारत में चले गये और शिवाजी के दरबार में वह आखिर तक रहे। हालांकि शिवाजी के राज्यारोहण तक का वर्णन ***शिवराजभूषण***में नहीं मिलता अतः ये अनुमान लगाया गया है कि उससे पहले ही भूषण अपने घर लौट गये थे। इसी वजह से ***शिवराजभूषण*** में उसके बाद की घटनाएँ नहीं मिलती है। लेकिन जहाँ तक का वर्णन भूषण ने किया है वह ऐतिहासिक रूप से सत्य है। पेशेवर इतिहासकार की तरह उनमें तिथियों का वर्णन नहीं मिलता या घटनाओं में क्रमबद्धता नहीं पायी जाती लेकिन उनमें दिये हुए साक्ष्य सत्य के काफी करीब हैं। पात्रों एवं घटनाओं में भी आपस में सम्बद्धता मौजूद है अतः इस तरह की ऐतिहासिक भूलें भूषण में प्रायः नहीं मिलती।

### *3.1.5 शिवाजी और छत्रसाल की भेंट –*

इसके अलावा भूषण ने छत्रसाल और शिवाजी की भेंट का उल्लेख अपने काव्यग्रंथ में किया है। उत्तर में जब छत्रसाल मुगलों के विरूद्ध अपना पाँव जमाने की कोशिश कर रहे थे तभी उन्होंने शिवाजी से मुलाकात करने का निश्चय किया। शिवाजी और छत्रसाल की मुलाकात 1670–71 के जाड़े में हुई थी।छत्रसाल के सन्दर्भ में भूषण ने जो विवरण दिये हैं वह इस प्रकार है –

*''रैयाराव चंपति को चढ़ो छत्रसाल सिंह भूषण भनत गजराज जोम जमके।*
*भादो की घटा सी उड़ि गरद घिरे सलैंसमसेरैं फिरे दामिनी सी दमके।*
*खान उमरावन के आन राजारावन के सनि उर लागैं घन कैसे छमके।*
*बैयर बगारन की अरि के अगारन की लाँघती पगारन नगारन नगारन के धमके।''*[37]

यहाँ चंपत राय के पुत्र छत्रसाल बुंदेला की प्रशंसा में भूषण ने जो भी उक्तियाँ कही हैं वह उनके हृदय के सच्चे उद्‌गार ही नहीं हैं बल्कि छत्रसाल जैसे नायक की सच्ची प्रशंसा भी हैं।कहा जाता है कि शिवाजी के अलावा, भूषण कुछ समय तक छत्रसाल के दरबार में भी रहे थे। छत्रसाल ने अपने राजनीतिक सफर की शुरूआत शिवाजी के परामर्श के पश्चात की थी अतः छत्रसाल के लिए उनके मन में आदर–भाव रहा होगा तभी भूषण उनके यहाँ

गये होंगे। भूषण को भी छत्रसाल ने काफी मान–सम्मान दिया था और भूषण के एक छंद के अनुसार कवि के सम्मान में उन्होंने उनकी पालकी में भी कंधा लगाया था। अतः निश्चय ही शिवाजी के पश्चात छत्रसाल जैसे नायक की प्रशंसा करना भूषण के लिए औचित्यपूर्ण था। छत्रसाल भी शिवाजी की तरह अपने राज्य को प्राप्त करने के लिए मुगलों से लगातार युद्ध कर रहे थे। भूषण के लिए छत्रपति शिवाजी की तरह ही छत्रसाल भी हिन्दुओं की चोटी रखने के लिए लगातार प्रयत्न कर रहे थे एवं औरंगजेब की विद्वेषपूर्ण नीतियों के खिलाफ न्याय का युद्ध लड़ रहे थे। दिल्ली दरबार द्वारा बुंदेलों के खिलाफ शेर अफगन को भेजे जाने का उल्लेख करते हुए उसकी सेना का सगर के 60,000 पुत्रों की तरह ही बर्बाद हो जाने का उल्लेख करते हुए भूषण कहते हैं –

*''सैद अफगन–सेन–सगर सुतन लागी कपिल–सराय लौं तराप तोपखाने की।''*[38]

इसी तरह छत्रसाल द्वारा किये हुए अनेक युद्धों में मुगल प्रशासकों को हराने के उल्लेख उनके एकाधिक छंदों में मिलते हैं जो तत्कालीन इतिहास से मेल खाते हैं एवं इनका जिक्र छत्रसाल के एक अन्य दरबारी कवि लाल के ***छत्रप्रकाश***में भी मिलता है जिससे यह साबित होता है कि छत्रसाल के संदर्भ में दिये हुए उनके साक्ष्य ऐतिहासिक सत्य के करीब हैं। छत्रसाल के सन्दर्भ में शिवाजी की तरह विस्तारपूर्वक इन घटनाओं का उल्लेख भूषण नहीं करते लेकिन उनके दिये हुए ऐतिहासिक चरित्र यह साबित करते हैं कि अवश्य ही छत्रसाल के साथ हुए उनके युद्धों के विषय में भूषण को जानकारी थी जिसका प्रयोग उन्होंने अपनी कविता में किया है।

इसके अलावा औरंगजेब की सत्ता का विरोध करने वाले **बूंदी के हाड़ा राजा**की भी उन्होंने (भूषण ने) प्रशंसा की है। अपने दोहे में वह छत्रसाल और हाड़ा को औरंगजेब को दुःख पहुँचाने वाला कहते हैं –

*''इक हाड़ा बूंदी–धनी मरद महेवालाल।*
*सालव औरंगजेब उर ये दोनों छत्रसाल।।''*[39]

दरअसल भूषण **औरंगजेब को भारत की हिन्दू प्रजा पर कहर ढाने वाले शासक के रूप में देखते हैं जो हिन्दू मंदिरों को गिराता है और मूर्तियों को तोड़ता है।** अपने शासनकाल में

औरंगजेब ने अकबर के शासनकाल में हटा दिये गये जजिया नामक तीर्थयात्रा कर को फिर से शुरू करवा दिया था जो औरंगजेब की हिन्दू विरोधी छवि निर्मित करने का एक बड़ा कारण बन गया। अतः हिन्दू प्रजा में इसके प्रति असंतोष गहरा गया। इस असंतोष को ही भुनाकर क्षेत्रीय शासकों ने हिन्दू प्रजा को अपनी ओर आकृष्ट करने का प्रयास किया और वे उसमें सफल रहे। भूषण ने सीधे तौर पर औरंगजेब को हिन्दू विरोधी मानकर उसको एक खलपात्र के रूप में चित्रित किया है एवं शिवाजी और छत्रसाल जैसे नेता जो औरंगजेब के विरूद्ध थे उन्हें अपना नायक बनाया जो उनके हिन्दू आदर्शों के अनुरूप थे। हालांकि मुस्लिम प्रशासकों द्वारा हिन्दू मंदिरों का ध्वंस कोई नयी बात नहीं थी लेकिन औरंगजेब के समय उसके कट्टर इस्लामिक विचारों ने इस प्रक्रिया को तीव्र कर दिया जिसकी प्रतिक्रिया मिलनी स्वाभाविक थी। हिन्दू जनता उसके इस रूप से आतंकित तो पहले से ही थी बाद में यह प्रतिक्रियास्वरूप अनेक विद्रोहों के रूप में फूटने लगा। ऐसे में मुगल साम्राज्य के खिलाफ जो भी खड़ा हुआ आम–जनता ने उसका स्वागत किया और उसे मुस्लिम बनाम हिन्दू का रूप दे दिया गया जिसकी प्रतिच्छवियाँ हम भूषण के काव्य में पाते हैं। ***शिवाजी न होतो तौसुन्नत होती सबकी***छंद की पंक्तियाँ इस संदर्भ में यही व्याख्यायित कर रही हैं। इसके अलावा कुछ तात्कालिक परिस्थितियाँ भी इसके लिए उतरदायी थीं।

औरंगजेब की सत्ता पर काबिज होने के पश्चात् उसकी साम्राज्यवादी नीतियों का विस्तार हुआ। दक्कन का जो मुगलों के कभी अधीन नहीं हो पाया था वह औरंगतेब के काल में उसके अधीन आ गया जिससे मुगल साम्राज्य काफी विस्तृत हो गया। इसके साथ ही प्रशासनिक समस्याएँ आनी भी उतनी ही स्वाभाविक थीं। औरंगजेब द्वारा सभी जगह ध्यान दे पाना संभव नहीं था अतः जब वह अपने साम्राज्य के एक कोने की व्यवस्था देख रहा होता था तब दूसरे कोने में अस्थिरता बढ़ने लगती थी। इन अस्थिरताओं ने ही महत्वाकांक्षी लोगों को एकजुट लेकर कार्य करने में सहायता प्रदान की। राज्य द्वारा लगाये गये कर भी आम–जनता के लिए दुःखदायी होते थे अतः इन सम्मिलित कारकों की वजह से केन्द्रीय सत्ता को नुकसान पहुँचा और क्षेत्रीय शक्तियों को मजबूती मिली।

### 3.1.5 भूषण की कविता में हिन्दू राष्ट्र की संकल्पना –

भूषण ने औरंगजेब और शिवाजी के द्वंद्व में राजनैतिक कारणों के अलावा **धार्मिक कारणों** पर विशेष बल दिया है जो नायक के पक्ष में उनका अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। जनता के समर्थन को उनकी लोक स्वीकृति मानकर भूषण ने उन्हें अपना काव्य नायक बनाया जो हिन्दुओं का उद्धार करने के लिए एक आतयायी सत्ता से युद्धरत थे। शिवाजी ने भी स्वयं को इसी रूप में प्रस्तुत किया था। अतः भूषण के काव्यनायक शिवाजी ऐसे ही हिन्दूरक्षक एवं प्रजापालक राजा के रूप में हमारे सामने आते हैं। काव्यनायक की रूढ़िगत परम्परा के अनुकूल ही वह शिवाजी के लिए कहते हैं कि शिवाजी अतिशय बलशाली बुद्धिमान दुश्मनों के हृदय में आतंक पैदा करने के लिए ही ईश्वर का अवतार बनकर आये हैं। इसमें कोई शक नहीं कि शिवाजी का उत्थान भारतीय इतिहास में एक चमत्कारिक घटना की तरह घटित हुआ और जिस तरह से उन्होंने एक शक्तिशाली मराठा साम्राज्य का निर्माण किया वह अभूतपूर्व था एवं इसमें उनके करिश्माई व्यक्तित्व का योगदान सर्वाधिक महत्वपूर्ण था। उनकी असाधारण राजनीतिक एवं सामरिक विजयों ने मराठाओं में नया आत्मविश्वास पैदा किया जिससे वह एक प्रमुख लड़ाकू जाति के रूप में भारतीय परिदृश्य पर उभरकर आ सके। शिवाजी के इस उत्थान को राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने राष्ट्रीय नायक के रूप में उनकी छवि निर्मित की जो हिन्दू राष्ट्र की अवधारणा को पोषित करता था। भूषण ने शिवाजी के करिश्माई व्यक्तित्व को अपनी कविता के अनुकूल पाया एवं उसका वर्णन किया लेकिन जहाँ कहीं भी इसके विपरीत परिस्थितियां आयीं, भूषण की निष्ठा में कोई फर्क नहीं आया। उदाहरण स्वरूप 1665 ई. की शिवाजी और जयसिंह के मध्य हुई संधि से मराठाओं को बहुत हानि हुयी थी और शिवाजी को अपने मिले मुगलों को लौटाने पड़े थे। साथ ही अपने एक पुत्र को भी मुगल दरबार में रखना पड़ा था। स्वयं शिवाजी को दिल्ली दरबार में हाजिर होना पड़ा। यह घटनाएँ मराठाओं की प्रतिष्ठा के खिलाफ थी। भूषण ने इन सब घटनाओं का वर्णन किया है लेकिन कहीं भी अपने काव्यनायक की प्रतिष्ठा पर आँच नहीं आने दिया है। किले देने की बात भी वह दान देने की तरह से अभिव्यक्त करते हैं। दान देने में किसी तरह की मजबूरी का एहसास नहीं होता अतः वह इसे इसी रूप में चित्रित करते हैं। जयसिंह की कूटनीतिक सफलता पर भी

वह अपनी कोई प्रतिक्रिया नहीं देते। बिहारी जैसे रीतिकाल के बड़े कवि इन्हीं जयसिंह के दरबार में रहते थे जिन्होंने अपने नायक की प्रशंसा में प्रसिद्ध दोहे कहे हैं। भूषण इसी तरह की मिली–जुली प्रतिक्रिया जसवंत सिंह के संदर्भ में भी करते हैं। जबकि जयसिंह और जसवंत सिंह दोनों ही राजपूताने के शक्तिशाली राजा थे जो मुगल साम्राज्य की सेवा में थे। ये तथ्य इस बात की ओर इशारा करते हैं कि मुगलों की तरफ से लड़ने वाले हिन्दू राजाओं के प्रति उदार रवैया होने के बावजूद भूषण उन्हें बतौर विपक्षी ही देख रहे थे।

भूषण की कविता में हिन्दू राष्ट्र की संकल्पना भी देखने योग्य है। कई जगह वे शिवाजी को हिन्दुओं के रक्षक के रूप में प्रस्तुत करते हैं। हालांकि यह अनायास नहीं है क्योंकि स्वयं शिवाजी के राज्यारोहण में 'छत्रपति' का ताज धारण करने को इतिहासकारों ने उनकी इसी इच्छा का प्रतिफलन देखा है। अपने काव्यनायक की इच्छा के अनुरूप ही भूषण ने उनका चरित्र दिखलाया है। शिवाजी हिन्दुओं के उद्धारकर्ता के रूप में चित्रित हुए हैं। लेकिन उसी हिन्दू जनता के दुख–दर्दों पर भूषण एकदम से चुप हैं। उन्होंने अपने काव्य में आम–जनता के लिए अपने दृष्टिकोण का वर्णन या कोई प्रतिक्रिया नहीं दी है जो भी जिक्र आये हैं वह राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में आये हैं या धार्मिक परिप्रेक्ष्य में, पूरे रीतिकाल में आम–जनता के प्रति एक ठंडी उदासीनता मिलती है जो उसे दरबारी कविता कहे जाने के लिए प्रेरित करती है। अपने नायकों की इच्छानुसार केवल उनके परिप्रेक्ष्य में ही कविता करना इन कवियों की प्रमुख विशेषता रही। जिस तरह से राजनीति सदा–सर्वदा से आम–जन से एक दूरी बरतती आयी है वही रीतिकालीन कविता में भी परिलक्षित होती है। परन्तु राजनीति आम–जनता को प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से उसे प्रभावित भी करती है। उदाहरण के लिए अत्यधिक कर का बोझ पड़ने पर किसानों के विद्रोह या अपने धर्म के प्रति कोई विशेष फरमान पर उसका विरोध। मुगल काल में लगभग सभी शासकों के काल में किसानों के विद्रोह हुए जो उनके प्रति राज्य की अनदेखी के कारणों से उत्पन्न हुए थे दूसरे शब्दों में कहे तो आर्थिक कारणों से ज्यादा हुए। तत्कालीन साक्ष्यों से पता चलता है कि औरंगजेब द्वारा जजिया कर लगाये जाने का भी संगठित विरोध हुआ था। मराठों में राष्ट्र की अवधारणा अपने आदिम रूप में विद्यमान थी न कि आधुनिक अर्थों में। आधुनिक राष्ट्र की धारणा का विकास उपनिवेशवाद के खिलाफ था जो अपनी विशिष्ट परिस्थितियों में उत्पन्न हुआ था।

भूषण ने उपरोक्त जिन स्थितियों का वर्णन किया है वह साबित करती है कि औरंगजेब की हिन्दू–विरोधी नीतियों का आम–जनता पर उल्टा असर पड़ा था और इसकी वजह से हिन्दू बनाम मुसलमान जैसी परिस्थितियाँ बनी जिसने अन्ततः मुगल साम्राज्य को ही क्षति पहुँचायी और धीरे–धीरे वह साम्राज्य अपने पतन की ओर अग्रसर हो चला था।

## 3.2 गोरेलाल कृत *छत्रप्रकाशः* कवि एवं ग्रंथ परिचय

हिन्दी वीरचरितकाव्यों के रचयिताओं में लाल कवि अथवा गोरेलाल ही एकमात्र ऐसे कवि हैं जिन्हें सच्चा इतिहासकार भी कहा जा सकता है। लाल कवि ने काव्य और इतिहास में संतुलन स्थापित करते हुये उसे कहीं भी अतिरंजित करने का प्रयास नहीं किया है। इसी संतुलन ने उन्हें कवि और इतिहासकार दोनों ही रूपों में स्थापित करने में सफलता प्राप्त की है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रंथ ***हिन्दी साहित्य का इतिहास*** में इनके सन्दर्भ में जो टिप्पणी की है वह सर्वथा उचित है –

''ग्रंथ की रचना प्रौढ़ और काव्यगुण युक्त है। लाल कवि में प्रबंध पटुता पूरी थी। संबंध का निर्वाह भी अच्छा है और वर्णन विस्तार बहुत ही कम मिलता है, सारांश यह कि लाल कवि का सा प्रबंध कौशल हिन्दी के कुछ गिने–चुने कवियों में ही पाया जाता है। शब्द वैचिन्त्र्य और चमत्कार के फेर में इन्होंने कृत्रिमता कही से नहीं आने दी है।''[40]

यह तो शुक्लजी ने कवि के काव्य सौष्ठव पर विचार किया है जो लाल कवि की प्रबंधपटुता पर प्रकाश डालता है। इसके अलावा उनकी इतिहास चेतना पर प्रकाश डालते हुए शुक्लजी आगे लिखते हैं –

''देश की दशा की ओर भी कवि का पूरा ध्यान जान पड़ता है। शिवाजी का जो वीर व्रत था वही छत्रसाल का भी था। छत्रसाल का जो भक्तिभाव शिवाजी पर कवि ने दिखाया है तथा दोनों के सम्मिलन का जो दृश्य खींचा है दोनों इस संबंध में ध्यान देने योग्य है।''[41]

कवि भूषण की ही भाँति लाल कवि ने अपने विषय में बहुत कम लिखा है। उनका समय भी अनिश्चित है किन्तु विवादित नहीं क्योंकि ***छत्रप्रकाश***में उन्होंने उल्लेख किया है कि इस ग्रंथ की रचना उन्होंने महाराज छत्रसाल की आज्ञा पर की है –

*''धनि चंपति के औतरो, पंचम श्री छत्रसाल।*
*जिनकी आज्ञा सीस धरि, करि किहानी लाल।।''*[42]

इस दोहे से स्पष्ट होता है कि लाल कवि महाराज छत्रसाल के समकालीन थे और उनके दरबार में रहते थे। इसके अलावा कवि ने राजनीतिक हलचलों का जिस सूक्ष्मता एवं सजगता से वर्णन किया है उससे भी स्पष्ट होता है कि कवि उस समय की घटनाओं का प्रत्यक्षदर्शी था। लाल कवि की जन्मतिथि अज्ञात है और विद्वानों द्वारा लगाये गये अनुमानों पर आधारित है। आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास में लालकवि का जन्म संवत् नहीं बतलाया है। ***'छत्रप्रकाश'*** का संपादन करने वाले संपादक डॉ. महेन्द्र प्रताप सिंह ने बुंदेलखण्ड से प्रकाशित कुछ इतिहास ग्रंथों और बुंदेलखंड के कवि परिचयात्मक पुस्तकों से मिली सूचनाओं के आधार पर कवि जन्म संवत् 1715 विक्रम से 1725 के बीच माना है जो उचित भी लगता है। हालांकि सम्पादक ने छत्रसाल से लालकवि को उम्र में छोटे होने का तर्क दिया है। ग्रंथ की समाप्ति का वर्ष 1707 ई. या 1764 संवत् हैं। इस वर्ष के पश्चात् यह ग्रथ समाप्त हो गया है। अतः शुक्लजी ने कवि का जीवनकाल यहीं तक माना है। 1707 में ग्रंथ की अचानक समाप्ति के कारण ही इस तरह के अनुमान लगाये गये हैं। जो भी हो 1707 ई. तक तो गोरेलाल का होना निश्चित है।

लाल कवि का संबंध दक्षिण भारत से था। उनके पूर्वज आंध्र प्रदेश के राजमहेन्द्री जिले से ताल्लुक रखते थे। इनके पूर्वज पुरोहित थे और भट्ट कहलाते थे। दक्षिण भारत से यह यज्ञ कराने के लिए उत्तर भारत में आमंत्रित किये गये थे तभी से वह इधर ही बस गये थे। इनके वंश में एक लड़की का विवाह वल्लभाचार्य से हुआ था। तत्कालीन दिल्ली के बादशाह सिकन्दर लोदी ने भट्ट परिवार के 6 पुत्रों को एक–एक गाँव उपहार में प्रदान किया था। बाद में ये गाँव इन्हीं के नाम से जाने गये। लाल कवि का संबंध 'गिट्टा' नामक ग्राम से था।

कवि की मृत्यु के सन्दर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ग्रंथ की समाप्ति 1707 ई0 में होने से जोड़कर लगाया है कि सम्भवतः उनका जीवनकाल यहीं तक है। कुछ अन्य प्रमाणों के आधार पर लालकवि का इसके बाद भी जीवित होना ***छत्रप्रकाश***के संपादक ने स्वीकार किया है। इसके लिए उन्होंने दो ऐसी सनदों का प्रमाण प्रस्तुत किया है जिससे यह सिद्ध होता है कि इस ग्रंथ के आगे भी लिखे जाने के लिये उन्हें ये सनदें भेजी गयी थीं जिनका समय 1712 ई0 और 1723 ई0 है। इन सनदों का उल्लेख हालांकि संपादक ने छत्रसाल के साथ लालकवि की समकालीनता सिद्ध करने और उनकी मृत्यु का समय निश्चित करने के लिये किया है जिससे यह प्रमाणित होता है कि ग्रंथ समाप्ति के पश्चात् भी लालकवि जीवित थे, इसके साथ ही इस सनद से लालकवि द्वारा ग्रंथ को आगे न लिखे जाने की उनकी प्रतिबद्धता के कारणों की खोज करने के लिए भी ये हमें प्रेरित करता है। ये दोनों सनदें संपादक को लालकवि के वंशजों के यहां से प्राप्त हुई हैं जो आज भी पन्ना के मढ़ी नामक गांव, अमानगंज में रहते हैं। इन सनदों में कवि को आगे लिखने के लिए प्रेरित किया गया है और ग्रंथ की समाप्ति पर उन्हें पुरस्कारों से सम्मानित करने की बात कही गयी है। अगर ये सनदें प्रामाणिक मानी जायें तो निश्चित रूप से लालकवि के व्यक्तित्व के अन्य पहलुओं पर भी प्रकाश पड़ता है। पहली सनद का मजमून इस प्रकार है –

''श्री राधा कृष्न जू

जगद्वित मुन्द्रा

सासना जा समुन्द्रा

सगाय : जय जय इह

छत्रसाला नरिन्द्र''

श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री छत्र सालजू देव येते राव लाल कवि साहि नाटक जन्म भूमि ग्राम पदारथ दयौ। प्रगना पावइ तापै छीपा कौ मौनिम ढिज 1 सौ व करार खाये पाए जाए। जब ग्रंथ की पूर्ति होयगी तब बहुत सो ख्याल करो जैहे। अबै बरोबरी की बैठक बकसी जात है। महिर गुबान माफिक असुन सुदी 13 संवत् 1769 की साल लिखी गयी। मुकाम परना।''[43]

सनद का आशय संपादक ने इस प्रकार दिया है –

''सनद देने की तिथि को छत्रसाल ने कवि 'लाल' को अपना इतिवृत्त लिखने का अनुबंध लिखा जिसे 'लाल' ने 'आज्ञा' के रूप में स्वीकार किया।''[44]

इस सनद की सूचना के आधार पर यह पता चलता है कि कवि को छत्रसाल के बराबर की बैठक मिली थी जो छत्रसाल के दरबार में उनकी हैसियत का द्योतक है। इस सनद के अलावा दूसरी सनद भी इसी आशय के साथ जारी की गयी लेकिन सम्भवतः कवि इसके आगे की घटनाओं को नहीं लिखना चाहता था। दूसरी सनद का समय 1723 ई. है अतः यहां तक लालकवि के जीवित होने का प्रमाण मिलता है।

इन सनदों के आधार पर लालकवि के द्वारा आगे छत्रसाल के राज्यारोहण के बाद ग्रंथ को आगे न लिखने की कवि की इच्छा से कुछ प्रश्न खड़े होते हैं जो विचारणीय हैं। आखिरकार लालकवि को आगे लिखने के लिए आमंत्रित किया जा रहा था और उन्हें पुरस्कारों से नवाजने की भी बात कही जा रही थी; जो एक दरबारी कवि के लिये सम्मान की बात थी। फिर भी कवि प्रलोभनों के बावजूद राजी नहीं हुआ। क्या छत्रसाल के राज्यारोहण के पश्चात् छत्रसाल में किसी प्रकार का बदलाव आ गया था जो कवि को प्रेरित नहीं कर पा रहा था। या कवि को छत्रसाल का विद्रोही रूप ही अधिक पसंद था जो भारतीय काव्यपरंपरा के अनुसार काव्यनायक के गुणों के अनुरूप था और सम्राट बनने के पश्चात कवि का उद्देश्य भी पूरा हो जाता था। ये दोनों ही बातें हो सकती हैं। नायक का संघर्ष ही वीरकाव्यों की प्रमुख विशेषता रही है और उसी ने कवियों को प्रेरणा प्रदान किया है। यह हम केशवदास के ***वीरसिंहचरित*** में भी देख सकते हैं जिसमें राज्यारोहण के पश्चात् केशव आगे की घटनाओं को नहीं लिखते और ग्रंथ समाप्त कर देते हैं। संयोग से भूषण के साथ भी यही पाया जाता है। भूषण ने भी शिवाजी के राज्यारोहण का कोई उल्लेख नहीं किया है और उसके बाद की राजनीतिक घटनाओं पर वह मौन हैं।

अगर हम लालकवि को एक इतिहासकार कवि के रूप देखते हैं तो निश्चय ही हमारा ध्यान लालकवि के समय की राजनैतिक घटनाओं के सन्दर्भ में तथ्यों तक उनकी पहुंच और उसकी प्रामाणिकता की तरफ भी जायेगा। दोहा–चौपाई शैली में ***छत्रप्रकाश*** तक आते–आते प्रबंधकाव्य की सफलता असंदिग्ध हो गयी थी। फारसी गद्य इतिहासों की वर्णनात्मक शैली अब ब्रजभाषा कविता में भी प्रयोग की जाने लगी। लालकवि का यह ग्रंथ

इस बात का उदाहरण है। गद्य भाषा विकसित न होने के कारण ऐतिहासिक काव्य लिखे जाने लगे थे। ब्रजभाषा के कवियों को यह श्रेय जाता है कि संस्कृत एवं फारसी में गद्य लेखन की परंपरा होने पर भी उन्होंने अपने क्षेत्र की मातृभाषा को सर्वोपरि रखा और उन्हें जो भी कहना था ब्रज भाषा के माध्यम से ही कहा।

लाल कवि की कीर्ति का आधार ***छत्रप्रकाश***है जिसका प्रकाशन सर्वप्रथम एक अंग्रेज अधिकारी ने कराया था। दरअसल बुंदेलों का इतिहास लिखने का आरंभिक स्त्रोत ***छत्रप्रकाश*** ही था। अतः कैप्टन डब्ल्यू. आर. पाग्सन ने इसका अंग्रेजी अनुवाद कराया तथा इसी के आधार पर सन् 1828 ई. में *A history of Bundelas*शीर्षक से इसे छपवाया था। इसके बाद ही यह ग्रंथ हिन्दी में प्रकाशित हुआ। बाद में बाबू श्यामसुन्दर दास ने नागरी प्रचारिणी सभा से सन् 1903 में प्रकाशित कराया। ***छत्रप्रकाश*** के अलावा कवि का एक और ग्रंथ ***विष्णुविलास*** है। यह नायिका भेद का ग्रंथ हैं। कुछ लोग ***बिहारी सतसई*** की लाल टीका को भी इसी लाल कवि से जोड़कर देखते हैं परन्तु यह केवल अनुमान है प्रमाण नहीं। किन्तु लालकवि की कीर्ति का आधार स्तंभ ***छत्रप्रकाश*** ही है। इससे पहले बुन्देलों पर केशवदास ने लिखा है जिनको दूसरे अध्याय में हम देख चुके हैं। महाराजा छत्रसाल का सम्बंध भी उसी बुन्देल वंश से है। वंशावली परिचय में लालकवि और केशव द्वारा दी गयी वंशावलियों के मिलान से यह स्पष्ट हो जाता है कि ओरछाधीश रूद्रप्रताप के ही वंशजों में महाराजा छत्रसाल हुए जिन्होंने पन्ना में अपनी राजधानी स्थापित किया था। लालकवि इन्हीं महाराज छत्रसाल के दरबारी कवि थे।

***छत्रप्रकाश*** में बुंदेलों का इतिहास सुरक्षित है। इसे कवि ने दोहा–चौपाई शैली में लिखा है। इसमें 26 अध्याय हैं जिसमें आरंभिक अध्यायों में चंपत राय (छत्रसाल के पिता) का जिक्र है जो स्वयं संकटमय जीवन जीते रहे और अपने शत्रुओं से लोहा लेते रहे। एक जुझारू व्यक्तित्व के रूप में चंपत राय का कवि ने अच्छा चरित्र–चित्रण किया है। चंपतराय जीवन भर अपने लिए सुरक्षित पनाह ढूंढ़ते रहे और शत्रुओं की नजर में चढ़े रहे। उन्हें सदैव एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना पड़ता था। अपने पिता के संघर्ष के दिनों में छत्रसाल अपने मामा के घर में रहे। पिता की मृत्यु के पश्चात् छत्रसाल की कथा आरंभ होती है जिसमें छत्रसाल एक कठोर निर्णय के साथ अपने मामा गृह को त्यागकर अपने सपने को पूरा करने निकल पड़ते हैं। छत्रसाल के जीवन की घटनाओं को कवि ने बड़े ही सजीव

ढ़ंग से अपनी काव्य कृति में उतारा है। परन्तु अन्य रीतिकालीन कवियों की तरह लालकवि ने अपने नायक का वर्णन अति उत्साह में नहीं बल्कि संतुलित ढंग से किया है। अपने नायक की पराजय को भी वह उसी तरह से तटस्थ होकर चित्रित करते हैं जैसे उसकी विजयों को करते हैं। लालकवि की यही विशेषता उन्हें अन्य कवियों से अलगकर एक इतिहासकार कवि के रूप में प्रतिष्ठित करती है।

भूषण की ही भाँति लाल कवि ने छत्रसाल बुंदेला के ऐतिहासिक चरित्र पर अपना महत्वपूर्ण काव्यग्रंथ ***छत्रप्रकाश*** रचा है। यह प्रबंधात्मक शैली में लिखा गया है जिसमें बुंदेलों के उत्थान एवं छत्रसाल द्वारा अपने राज्य की स्थापना तक का ऐतिहासिक विवरण मिलता है। यह ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण रचना है जो बुंदेला राज्य के समय का बेहतरीन इतिहास प्रस्तुत करता है। औरंगजेब कालीन समय में ही छत्रसाल बुंदेला का उद्‌भव हुआ और उसने बुंदेला समाज को अपने नेतृत्व में संगठित कर एक सुदृढ़ राज्य की नींव डाली। हालांकि उसके उत्तराधिकारी उस नींव को पुख्ता नहीं कर सके। छत्रसाल के पश्चात्‌उनके आपसी मनमुटावों ने बुंदेलाओं मे एक–दूसरे के विरूद्ध संघर्षों को जन्म दिया जिससे उनका राज्य छिन्न–भिन्न हो गया और वे मराठाओं की भाँति एक बड़े साम्राज्य का निर्माण करने से वंचित रह गये।

### 3.2.1 बुंदेल राज्य वंशावलीः छत्रसाल के नेतृत्व में बुंदेल शक्ति का पुनर्गठन

बुंदेला राज्य चंदेलों की भूमि पर विकसित हुआ था। यह आधुनिक पश्चिमी उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश का उत्तरी–पश्चिमी भागों वाले भौगोलिक क्षेत्र में आता है।इसका नाम यहाँ राज्य करने वाले बुंदेलों की वजह से ही बुंदेलखण्ड पड़ा। छत्रप्रकाशकार ने बुंदेला वंश का परिचय काफी विस्तार से दिया है। ग्रंथ की शुरूआत में ही शिवाजी और छत्रसाल की मुलाकात का वर्णन है जिसमें वह छत्रसाल को आशीर्वाद देते हुए मुगलों के विरूद्ध कार्य करने का निर्देश देते हैं। छत्रसाल इससे उत्साहित होकर कार्य करने के लिए प्रवृत्त होते हैं। यदुनाथ सरकार के अनुसार छत्रपति शिवाजी और छत्रसाल की मुलाकात 1670–71 के बीच हुयी थी।इस तिथि के स्पष्टीकरण से यह निश्चित हो जाता है कि छत्रसाल ने अपना

राजनीतिक सफर मुगलों के विरूद्ध शिवाजी की प्रेरणा के पश्चात् शुरू किया था जो उस समय मुगलों के कट्टर शत्रु के रूप में स्थापित हो चुके थे।

वंश परिचय में कविने परम्परानुसार ही मिथकों से लेकर छत्रसाल तक का वर्णन किया है। अर्थात् मनु जैसे मिथकीय चरित्र (जल प्लावन के पश्चात् बचे हुए एकमात्र मनुष्य जिनसे धरती पर मनुष्य का विकास हुआ। मनुष्य से उत्पन्न होने के कारण ही भारतीय मिथकों में 'मनुष्य' शब्द का प्रचलन शुरू हुआ) मनु के ही वंशजों में रामचन्द्र (अब ईश्वरीय अवतार)जिनके लव–कुश नामक पुत्र हुए और उन्होंने अवधपुरी में शासन किया। इन्हीं के वंश में आगे चलकर काशीराज हुए जिन्होंने काशी में अपना राज्य बसाया। इन्हीं के वंशज गहरवार हुए (गहरदेव राजा के नाम पर) इन्हीं के पुत्र गोपचंद हुए एवं उनके पुत्र गोविन्द चन्द्र हुए जिनके तिहुनपाल नामक पुत्र पैदा हुआ। इन तिहुनपाल के विंध्यराज नामक पुत्र हुआ। इन्हीं के पोते बीझलदेव या बीजलदेव हुए जिनके पुत्र युद्ध में अर्जुन का पराक्रम दिखाने के कारण अर्जुन कहलाये। अर्जुनदेव के पुत्र वीरभद्र एवं बीरभद्र के पाँच पुत्र हुए जिनमें से चार को छोड़कर पाँचवें वंशज का वंश का परिचय कवि ने दिया है। पंचमसिंह की रानियों को कोई पुत्र पैदा नहीं हो रहा था अतः उन्होंने विंध्यवासिनी देवी आराधना शुरू कर दी। भूखे–प्यासे राजा को 7 दिन हो गये तब देवी ने प्रसन्न होकर उन्हें आशीर्वाद दिया। इससे पहले देवी के न प्रसन्न होने पर राजा ने अपना सिर काटकर उन्हें भेंट करने का निश्चय किया। जैसे ही मुंड पर तलवार रखा भवानी ने प्रकट होकर उनका हाथ पकड़ लिया। इसी दौरान गले से कुछ खून की बूँदें धरती पर गिर पड़ी तब भवानी ने उसी बूँद से कुँवर की रचना की। **बूँद से उत्पन्न होने के कारण ही उनके वंशज बुंदेला कहलाए और तभी से विंध्यवासिनी उन बुंदेलों की कुलदेवी कहलायीं।**

पंचम बुंदेला ने राज्य स्थापना के लिए आधुनिक बुंदेलखंड का स्थान चुना। उनके वंशजों ने कालिंजर, कालपी, गढ़कुंडार, महौनी जैसे किलों को जीता और उनपर शासन किया। महौनी कुछ समय तक बुंदेलों की राजधानी भी रही। इन्हीं के वंशजों में मलखान सिंह जैसे बुंदेला राजा हुए जिनके वंशजों ने ओरछा नगर बसा कर उसे अपनी राजधानी बनाया। मलखान सिंह के ही वंश में **मधुकर शाह हुए ( रूद्रप्रताप के दूसरे पुत्र )।इन्हीं के पुत्रों के राजकवि हिन्दी के प्रसिद्ध कवि केशवदास हुए।** मधुकरशाह को ओरछा राज्य भारतीचन्द के निःसन्तान मरने की वजह से मिला था। मधुकर शाह के भाई उदयाजीत थे

उन्ही के वंश में छत्रसाल हुए। उदयजीत मधुकरशाह के समय में महेवा की जागीर को देखते थे। उदयजीत के पुत्र प्रेमचन्द हुए जिन्होंने मुगल पठानों को युद्ध में हराया था। प्रेमचन्द के तीन पुत्रों में भगवत राव भी थे। इन्हीं भगवतराव के पुत्र चम्पतराय हुए जिनके पुत्र छत्रसाल थे। महराजा चंपत ओरछा की गद्दी पर केवल कुछ समय के लिए ही 1587–61 गद्दी पर बैठे थे लेकिन छोटे से शासनकाल में ही बुंदेली जनता में उन्होंने अपनी पैठ बना ली थी। हालांकि उस समय ओरछा की गद्दी पर जो भी बैठता था उसे महाराजा चंपतराय अपना सहयोग देते थे। जुझारसिंह के समय में शाहजहां के आदेश पर ओरछा के खजाने की जांच हुई थी जिससे वह विद्रोही हो गये थे। विद्रोह शान्त करने के लिए शाहजहां ने पूरे बुंदेलखंड को रौंद डाला था, तभी से चंपतराय शाहजहां के विरोधी हो गये। चंपतराय ने अपने बुद्धि बल से मुगलों की सेना को खूब छकाया एवं बाद में शाहजहां के पुत्रों के बीच हुए उत्तराधिकार युद्ध में औरंगजेब का साथ दिया था। जैसा कि लालकवि कहते हैं –

*''बुद्धि बल चंपति बल भयौ सहाई,*
*आलमगीर दिली तब पाई।''*[45]

**जुझारसिंह के अवसान के पश्चात् चंपतराय की राजनीति का केन्द्रबिन्दु बदल गया।** और धीरे–धीरे वह मुगलों के विरोधी हो रहे थे। बुंदेलों की अधिकांश सेना विनष्ट हो चुकी थी ऐसे में बुंदेलों ने चंपतराय के नेतृत्व में छापामार युद्ध का आश्रय लिया और जहां–तहां मुगलों को परास्त किया। चंपतराय ने नौसेरी खां को (इसे बुंदेलों के विरूद्ध गौड़ों के साथ भेजा गया था) हराया और उनसे चौथ[4] वसूला। अपने प्रशासकों की हार सुनकर शाहजहां ने फिर से मुगल फौज को खानजहां के नेतृत्व में चंपतराय का दमन करने भेजा ताकि विद्रोह कोशांत किया जा सके। खानजहां के साथ बहादुर खां रूहिल्ला पठान और अब्दुल्ला खां भी मदद के लिए भेजे गये। इनके साथ हुए युद्ध का लालकवि ने बड़ा ही सजीव चित्र खींचा है–

*''कबहुंक प्रगटि जुद्ध में हांकै, मुगलन मारि पुहुमि तल ढांकै।*
*कबहुंक हांकि हरौलनि कूटै, कबहुंक चांपि चंदौलनि लूटै।*

[4]एक प्रकार का कर जो विद्रोही द्वारा किसी क्षेत्र के शासक को विजित करने के बाद मांगा जाता था।

*कबहुं उमड़ि अचानक आवै, घन से उमड़ि लोह बरसावै।*
*कबहुं जुरै फौज सौं आछे, लेत लगाई चालु दै पाछै।*
*बांकै ढौर गोरि कै मंडै, हा हा करै डांडु लै छंडै।*
*कबहुं देस दौरि के लावै, रसद कहुंकी कढ़न न पावै।*
*बाननि बरखि गयंदन फौरे, तुरकीन तमकि तेग तर तौरें।*
*चौकी कहैं कहां ह्वै जैए, जित देखे तित चंपति हैए।'*[46]

इस उद्धरण में युद्ध की छापामार शैली का वर्णन हुआ है जो अपने से बड़े दुश्मन की बड़ी सेना होने पर प्रयोग में लायी जाती है। दरअसल इस युद्ध में छुपकर अचानक हमला कर शत्रु को अधिकाधिक नुकसान पहुंचाया जाता है। जब शत्रु युद्ध करने के लिए तैयार न हो तब यह शैली कारगर होती है। भारत में इसका प्रयोग बहुत पुराना है। ***बाबरनामा*** में बाबर ने मेदिनीराय के भतीजे के द्वारा इस तरह की युद्ध शैली अपनाने का उल्लेख किया है। तत्पश्चात् अकबर के विरूद्ध महाराणा प्रताप द्वारा छापामार युद्ध शैली का प्रयोग किया गया। स्वयं मराठे मुगलों के खिलाफ इस युद्ध शैली का प्रयोग करते रहते थे जिसका अनुसरण छत्रसाल ने भी आगे चलकर किया। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान जगदीशपुर (बिहार) के राजा कुंवरसिंह ने भी अंग्रजों के विरूद्ध छापामार शैली का प्रयोग कर उन्हें काफी हानि पहुंचायी थी। लालकवि ने बड़े सुन्दर ढंग से इस युद्ध शैली का वर्णन ***छत्रप्रकाश*** में यत्र–तत्र किया है जो यह साबित करता है कि बुन्देलों ने इस युद्ध शैली का मुगलों के विरूद्ध व्यापक रूप से प्रयोग किया और उन्हें रणक्षेत्र मेंछकाया।

यहां लालकवि ने उस ऐतिहासिक तथ्य का उल्लेख किया है जो जहांगीर के समय में ओरछा में उत्तराधिकार को लेकर शुरू हुआ था। यह पूरा वाकयात केशवदास के ***वीरसिंह देव चरित*** में भी आया है। जहांगीर द्वारा ओरछे की गद्दी वीरसिंह को देने और शाहजहां द्वारा उसके वंशज से ओरछा की गद्दी छीन लेने का तथ्य इतिहासानुमोदित है। चंपतराय की ओर से शाहजहां को यह खबर भिजवाया गया कि ओरछे की गद्दी पर वीरसिंह का ही उत्तराधिकारी होना चाहिए। ऐसे में वीरसिंह के तीसरे पुत्र पहाड़सिंह को राजा बनाया गया जिसे शाहजहां ने भी स्वीकार कर लिया। पूरे बुंदेलखंड में पहाड़सिंह की ताजपोशी पर उत्सव मनाया गया। हांलाकि तत्कालीन इतिहासग्रंथों में इस उत्तराधिकार के झगड़े में

चंपतराय की भूमिका मानी गयी है। बुंदेलखंड में शाहजहां द्वारा पहाड़सिंह को उत्तराधिकारी घोषित करवाने में चंपतराय की भूमिका के कारण प्रजा में उनकी धाक बनना स्वाभाविक था। बाद में पहाड़सिंह चंपतराय से सशंकित रहने लगा और उसे यह डर सताने लगाा कि आगे मुगलविरोधी चंपतराय के किसी कार्य की वजह से शाहजहां रुष्ट हो जायेगा। ऐसे में वह चंपतराय को रास्ते से हटाने की बात सोचने लगा। चंपतराय और अन्य सभी परिवारजन को खाने पर बुलाया गया। जब सब लोग खाने पर बैठे तभी चंपतराय के एक सहयोगी भीमसिंह को पहाड़सिंह की मंशा पर शक हो गया। उसने चंपतराय की थाली अपने सामने रख ली। खाने में जहर था जिसकी वजह से उसकी जान चली गयी और चंपतराय बच निकले। पहाड़सिंह द्वारा चंपतराय को मारने के लगातार प्रयास होने लगे लेकिन अपने बुद्धि बल से चंपतराय बच निकलते थे। इसी समय चंपतराय ओरछा छोड़ दारा के साथ कंधार विजय के अभियान पर चले गये। लालकवि ने दारा के कंधार अभियान पर उसकी जीत में चंपतराय का होना भी उल्लेख किया है–

*''दारा गढ़ खंधार की खाई, पाई फते अचूक।*
*चंपति की हिम्मत लखे, उठी हिये में हूंक।।''*[47]

हालांकि तत्कालीन ऐतिहासिक स्त्रोतों के अनुसार दारा यह अभियान पूरा नहीं कर पाया था और वापस लौट आया था। इस अभियान में गये लोगों के नामों चंपतराय का नाम नहीं मिलता जिससे इसकी प्रामाणिकता में संदेह है। ***छत्रप्रकाश*** के संपादक का इस सन्दर्भ में कहना है कि–

''फारसी इतिहासों में चंपतराय का नाम नहीं मिलता। इसका कारण समझ में आ जाता है। उद्दंड एवं विद्रोही आचरण के कारण इतिहासकारों एवं वाकयानिगारों ने उनके नाम को उड़ा दिया होगा।''[48]

लालकवि के अनुसार **कंधार अभियान** में चंपतराय की वीरता देखकर दाराशिकोह उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका और उसने चंपतराय को मुगल दरबार में आमंत्रित किया। मुगल दरबार के साथ चंपतराय का बढ़ता मेल मिलाप पहाड़सिंह को बिल्कुल नहीं भाया। अतः उसने चंपतराय के यहां चोरी का माल पकड़वा दिया जिससे चंपतराय की दरबार में छवि खराब हो गयी। दरअसल चोरियां पहाड़सिंह के लोग करते थे लेकिन चंपतराय के

यहां माल पकड़वा दिया जाता था जिससे चंपतराय बदनाम हो गये। अतः एक बार फिर से चंपतराय और मुगलों के बीच सम्बंध खराब हो गये और युद्ध की स्थिति बन गयी। चंपतराय बादशाह की सेवा छोड़ महेवा लौट आये–

*''छाड़ि पातसाहन की सेवा, कियौ अलंकृत आन महेवा।''*[49]

महेवा लौटकर चंपतराय ने अपनी सेना को सुसंगठित करने का काम किया। लालकवि ने तीसरे अध्याय तक में छत्रसाल के पिता का वंशपरिचय देते हुए उनके जीवन संघर्ष को दिखलाया है। चंपतराय के मुगलों के साथ बनते बिगड़ते रिश्तों एवं कुटिल पारिवारिक राजनीति के बीच ही छत्रसाल का जन्म हुआ था जिसमें मुगल विरोध उन्हें विरासत में प्राप्त हुआ था। हांलाकि लालकवि ने चंपतराय के आगे का जीवनवृत्त जिस तरीके से दिया है उसमें छत्रसाल के व्यक्तित्व निर्माण की परिस्थितियां स्पष्टतया लक्षित हो जाती हैं।

**चौथे अध्याय** में लालकवि ने मुगल सत्ता पर प्रकाश डाला है। यह वह समय था जब शाहजहां दिल्ली की गद्दी पर शासन कर रहा था। उसके शासनकाल के उत्तरार्ध में मुगल साम्राज्य को एक ऐसी परिस्थिति का सामना करना पड़ा जिसने पूरे साम्राज्य को ही नहीं बल्कि समस्त भारतीय राजनीति को ही झकझोर डाला। शाहजहां की अस्वस्थता ने उसके जीते–जी ही साम्राज्य पाने की होड़ में उसके बेटों में उत्तराधिकार के युद्ध को जन्म दे दिया जो लम्बे समय तक चला। लालकवि ने निर्देश किया है कि यह युद्ध शाहजहां के शासनकाल के बत्तीसवें वर्ष में शुरू हुआ जब शाहजहां ने अपने पुत्र दाराशिकोह को साम्राज्य का उत्तराधिकारी नियुक्त करने का विचार किया–

*''साहिजहां या चित्त विचारी, दारा को दिन्हीं सिरदारी।''*[50]

दारा के तीन भाई मुरादशाह, शुजा और औरंगजेब भी साम्राज्य जाने की लालसा रखते थे अतः युद्ध होना अवश्यंभावी था।

छत्रप्रकाशकार ने युद्धपूर्व की सारी परिस्थितियों पर सटीक प्रकाश डाला है। राजनीति के दांवपेंच कैसे–कैसे अपने ही भाइयों के खिलाफ आजमाये गये, इसका पूरा विवरण हमें ***छत्रप्रकाश*** में देखने को मिलता है। मुराद ने तो अपने नाम का सिक्का तक चलवा दिया था। औरंगजेब ने कूटनीति से काम लिया और अपने भाई को ढाल बना कर दक्षिण से

उत्तर की तरफ आया। सभी भाईयों ने एक–दूसरे को विश्वास दिलाया कि वे सत्ता के भूखे नहीं हैं बल्कि तुम्हारे लिए लड़ रहे हैं–

''हमें न इच्छा तखत की, यह जानत सब कोई।
चलौ तुम्हें लै देहिगें, होनी होई सु होई।''[51]

औरंगजेब के लिए कवि ने नौरंगजेब शब्द का प्रयोग किया है जो भूषण भी करते हैं। **नौरंगजेब शब्द औरंगजेब के कुटिल चरित्र की लाक्षणिक व्याख्या करता है।** इसी समय चंपतराय को भी औरंगजेब के अवंती आने का समाचार मिला। दारा के विरूद्ध औरंगजेब ने चंपतराय को मदद करने का फरमान भेजा। चंपतराय दारा से पहले ही रूष्ट बैठे थे। अतः उन्होंने औरंगजेब के निमंत्रण को स्वीकार कर लिया औरंगजेब को इस युद्ध में चंपतराय से हर सुविधा मिली। चंपतराय ने औरंगजेब की सेना को चम्बल नदी पार कराने में बड़ी भूमिका निभायी। चम्बल पार करते ही युद्ध का नगाड़ा बज गया। युद्ध में दारा की सेना हारने लगी। अतः उसने मैदान छोड़ना शुरू कर दिया। औरंगजेब को युद्ध में विजय मिली और दारा को पकड़ लिया गया–

*''पाई फतै भयौ मन भायौ, हय हथियार छांड़ि भगिबाच्यौ।*
*दारा पकड़ि पठाननि लीन्हों, साह मुराद कैद में कीन्हों।।'*[52]

कवि की टिप्पणी है कि विजय तख्त तो औरंगजेब को मिला जबकि चंपतिराय को यशप्राप्ति हुई। युद्ध के पश्चात औरंगजेब ने चंपतराय को 12000 हजार मनसब एवं जात सवार प्रदान किया। इसके अलावा चंपतराय को ऐरछ, सहिजादपुर, कौंच जालौन और कनार जैसी महत्वपूर्ण जागीरें मिली। लेकिन इसके साथ ही औरंगजेब ने अपना असली चरित्र दिखलाया और शुजा को रोकने के बहाने चंपतराय को भी निशाना बनाया। शाही फरमान जारी कर उनकी जागीरें छीन ली गयीं। चंपतराय को औरंगजेब के इस फरमान से बहुत धक्का लगा और एक बार फिर चंपतराय राज्यविहीन हो गये।

**पांचवे अध्याय** में चंपतराय के भांडेर किले को लूटने का जिक्र हुआ है। सम्राटविरोधी कृत्यों से औरंगजेब तिलमिला गया लेकिन अभी उसके सामने राज्य का एक अन्य दावेदार शुजा था जिसे अपने रास्ते से हटाना औरंगजेब के लिए जरूरी था। शुजा से निपटकर औरंगजेब

ने बुंदेलखंड की तरफ ध्यान दिया। ओरछा की गद्दी वीरसिंह के वंशज दतिया के राजा शुभकर्ण को दी गयी और चंपतराय का दमन करने के लिए उन्हें भेजा गया।

ऐरछ में दोनों के बीच युद्ध में चपतराय ने असाधारण वीरता का प्रदर्शन किया लेकिन चौदहा सरदार के एक तीर से वह घायल हो गये। उनके घायल होने पर युद्ध रुक गया। इस बीच सुजानराय चंपतराय के भाई की मदद से मध्यस्थता की बातें भी चली। चंपतराय इसके लिए राजी नहीं हुए।अतः बात वहीं रुक गयी और चंपतराय ने स्वस्थ होने पर मुगलों के विरूद्ध फिर से युद्ध में संलग्न हो गये। इसी सब के बीच कुछ समय के लिए चंपतराय बेदपुर में ठहरे जहां छत्रसाल ने अपने पिता से मुलाकात की।

मेल–मिलाप की कोशिशें नाकाम रहने पर शुभकर्ण ने चंपतराय पर फिर से हमला किया। इस बार उसके साथ नामदार खां (यह उस समय दक्षिण में नियुक्त था) को दक्षिण से बुलाकर चंपतराय के विरूद्ध भेजा गया। उनके साथ रतनशाह भी आया था। बादशाह को खबर दी गयी कि चंपतराय कैद कर लिए गये हैं। किन्तु सुजानराय की वजह से चंपतराय के विषय में एक नया बखेड़ा शुरू हो गया। **उस समय ओरछे का वास्तविक शासक पहाड़सिंह की पटरानी हीरादेई थी उसने सुजानराय को चंपतराय के विरूद्ध कार्रवाई करने के लिए उकसाया,** लेकिन सुजानराय इसके लिए राजी नहीं हुए और ओरछा से बेदपुर आ गये जहां पर बालक छत्रसाल अपने मामा के घर रह रहे थे। हीरादेई ने मुगलसत्ता के प्रति अपनी निष्ठा दरसाने के लिए वेदपुर पर हमला करवा दिया। वेदपुर पर विपत्ति आयी देख सबने मिलकर युद्ध किया लेकिन इस बीच सुजानराय की मृत्यु हो गयी। चंपतराय वहां से निकल पड़े लेकिन रानी की फौजें उनके पीछे लगी रहीं। चंपतराय के लिए परिस्थितियां कठिन होती जा रहीं थी और उनका शरीर भी साथ नहीं दे रहा था हालांकि इसी बीच इन्द्रमणि भी उनकी सहायता के लिए आ गया लेकिन वह भी ज्यादा साथ नहीं दे सका और चंपतराय को बचाने के प्रयास में दुश्मन के हाथ वह मारा गया। चंपतराय के साथ ही उनकी पत्नी भी साथ थीं। चंपतराय के सहरा जाने का निर्णय लिया गया जो धंधेरों का इलाका था। वहां पर कुछ समय के लिए सुरक्षित रह सकते थे लेकिन वहां भी वह सुरक्षित नहीं रह सके। एक गुप्त पत्र के द्वारा दुश्मनों को चंपतराय के वहां होने की खबर दे दी गयी। चंपतराय के वहां होने की खबर दे दी गयी। चंपतराय को इसकी भनक मिल गयी और वह वहां से निकल पड़े। लालकवि के अनुसार बालक छत्रसाल को वहां से

विदा कर चंपतराय अपने बहनोई के गांव की तरफ बढ़े लेकिन वहां भी उन्हें मदद नहीं मिली और राजकोप के डर से उनके बहनोई ने उन्हें मदद देने से इन्कार कर दिया। इस गांव से उस गांव भाग रहे चंपतराय अपनी अस्वस्थता में भी हिम्मत रखे हुए थे। इन सबमें उनकी पत्नी लालकुंवरि सदैव उनके साथ रहीं और हर कदम पर अपने पति का साथ दिया। चंपतराय को एक बार फिर अपने ही लोगों ने धोखा दिया। लालचवश सहरियों ने ही चंपतराय दंपति की हत्या कर दी कवि ने इसका मार्मिक चित्र खींचा है–

*''दै दै घाउ मरी ठकुरानी, चंपतिराई दगा तब जानी।*
*यह संसार तुच्छ निरधार्‌यो, मारि कटारि उदर बिदार्‌यौ।*
*चले विमान बैठि संग दोउ, जै बोलत सुरपुर सब कोउ।*
*धनि चंपत तुम राख्यो पानी, धनि धनि लालकुंवरि ठकुरानी।''*[53]

इस तरह चंपतराय के विद्रोही चरित्र का एक दुखद अंत हुआ। छत्रसाल के माता–पिता की मृत्यु 1661 ई0 की घटना है। चंपतराय के दगा करने वाले लोगों ने अमानुषिकता का परिचय देते हुए दंपति का सिर औरंगजेब के दरबार में भेजा।

पिता की मृत्यु के पश्चात छत्रसाल के आगे के जीवन पर लालकवि ने सातवें अध्याय से प्रकाश डाला है। यहां से महाराजा छत्रसाल का जीवन संघर्ष शुरू होता है। पिता की विद्रोही छवि का असर बचपन से ही छत्रसाल के उपर भी पड़ा और उन्होंने अपने पिता से मिली विरासत का प्रयोग अपने जीवन में खूब किया। पिता को कभी राज्य मिला तो कभी राज्य से निर्वासन भी झेलना पड़ा। विपरीत परिस्थितियों में बचपन से ही बालक छत्रसाल को एक निर्भीक एवं चतुर बनने के लिए उपयुक्त भूमि का काम किया। बचपन में ही उन्होंने अपनी युद्धकला की प्रतिभा का परिचय अपने माता–पिता को दे दिया था। लालकवि के अनुसार बचपन में ही चक्रवर्ती होने के सारे लक्षण बालक छत्रसाल में दिखने लगे थे। कवि के अनुसार छत्रसाल के पैदा होने पर ही पडितों ने उनके त्रिभुवनपति होने का आशीर्वाद दिया था। माता–पिता की इच्छा पूरी करने के लिए बचपन में ही वह सभी हथियारों में रूचि लेने लगे थे। औरंगजेब की मदद के बावजूद चंपतराय को उससे छल ही मिला था और उनकी जागीरें छीन ली गयी थीं जिससे वह दर–दर भटकने को मजबूर हो गये थे। ऐसी कठिन परिस्थितियों में माता–पिता दोनों की मृत्यु सुनकर छत्रसाल ने

अपना मामागृह वैसे ही छोड़ दिया था। वहां से वह अपने पिता की जागीरों को प्राप्त करने की बात कही। इसी बीच उनका ब्याह तय हो गया। पवांर कुल की देवकुंवरि उनकी पत्नी बनीं। यही देवकुंवरि उनकी पहली पत्नी थीं। इनके और छत्रसाल के पुत्र हिरदेशाह थे। **दसवें अध्याय** में छत्रसाल का महाराजा जयसिंह से मिलने का जिक्र लालकवि ने किया है। मिर्जा राजा जयसिंह जयपुर (आमेर के) राजा थे जो उस समय मुगल सेना में थे। छत्रसाल कुछ समय तक इनके साथ रहे –

*''मिलिकै नृप जयसिंह सौं , अंगद लिये बुलाइ।*
*मनासिब भयो दुहून कौ, रहे संग सुख पाइ।।''*[54]

जयसिंह के साथ रहते हुए छत्रसाल ने युद्धों में वीरता का खूब प्रदर्शन किया। मोर्चे पर वह सबसे आगे रहते थे। इसी बीच औरंगजेब का जयसिंह के लिए नया फरमान आया और उन्हें देवगढ़ गोंडवाना में बहादुर खां के साथ जाने का हुक्म हुआ। छत्रसाल भी इनके साथ गये। वहां विजय में मदद करने पर औरंगजेब की कुछ समय के लिए कृपादृष्टि प्राप्त हुई। इस युद्ध में छत्रसाल घायल हो गये तब उनकी रक्षा उनके घोड़े ने की थी जिसका नाम भले–भाई था। घोड़े को यह उपनाम इसी युद्ध में मिर्जा बहादुर खां ने दिया था। युद्ध के खत्म होने के बाद उनके साथी उन्हें ढूढ़ पाये थे –

*''सबकौ नजर दूर लौ दौरी, चीन्हों तुरी तबै वह औरी।*
*देख्यौ तहां तुरी बिरझानौ, स्वामिधर्म को बांधे बानौ।।''*[55]

सारी रात घोड़े ने छत्रसाल की रखवाली की और किसी को अपने पास फटकने नहीं दिया। विश्वस्त लोगों को देखकर ही वह वहां से हटा और छत्रसाल को ले जाया गया। युद्ध में बहादुरी से लड़ने के बाद भी बहादुर खां ने छत्रसाल की उपेक्षा की और उनकी कोई चर्चा नहीं की। इसके बाद छत्रसाल कुछ समय तक इनके साथ बने रहे। लेकिन जल्दी ही उनका मोहभंग हो गया और अपने पिता के बलिदान को वह भूल नहीं पाये जिन्होंने मुगलों के पैर उखाड़ कर बुंदेलखंड की इज्जत को सदैव ऊपर रखा। जल्दी ही छत्रसाल को अपनी भूल का एहसास हुआ–

*'' तिन चंपति के नंद हम, हितू जानि के वाहि।*

*हम भूले सेयौ वृथा, हितू जानि के वाहि।।'*[56]

अब छत्रसाल ने मुगलों को बुंदेलखंड से बाहर निकाल अपना राज्य स्थापित करने का निश्चय किया। अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए मुगलों के कट्टर शत्रु शिवाजी का आशीर्वाद और सुझाव लेना उन्होंने जरूरी समझा। वह उनसे मिलने दक्षिण की तरफ गये जिसका उल्लेख लालकवि ने पुस्तक के आरंभ में ही कर दिया है। **शिवा–छत्रसाल मुलाकात** के प्रारंभ में लालकवि ने भी भूषण की तरह औरंगजेब की हिन्दू विरोधी नीतियों का उल्लेख किया है–

*''हिन्दू तुरक दीन द्वै, तिनसो बैर सदा चलि आए।*
*लेख्यौ सुर असुरन को जैसो, केहरि करिन बखान्यौ तैसो।*
*जबते साह तखत पर बैठे, तबतैं हिन्दून सौं उर ऐंठे।*
*मंहगे कर तीरथनि लगाये, वेद दिवाले निदर ढहाए।*
*घर–घर बांधि जजिया लीने, अपने मन भाने सब कीने।।'*[57]

यहां लालकवि ने औरंगजेब की बदली हुयी नीतियों का वर्णन सावधानी से किया है। हिन्दू मंदिरों का ध्वंस, जजिया कर औरंगजेब के काल में हिन्दूओं पर बढा दिये गये थे। उसकी वजह से हिन्दू–मुसलमान बैर स्वतः बढ़ने लगा था। लालकवि के द्वारा छत्रसाल के मुगलविरोधी मन–परिवर्तन के समय इन तथ्यों का वर्णन इस बात की ओर इशारा करता है कि छत्रसाल ने अपने मुगलविरोधी कार्यो के लिए हिन्दू–मुसलमान वैमनस्य को तत्कालीन परिस्थितियों में समझ लिया था और अब वे उसके आधार पर अपने राज्य–गठन का सपना देखने लगे थे क्योंकि ऐसे समय में उन्हें जन–स्वीकृति आसानी से मिल जाने की सम्भावना थी; जैसा कि कवि द्वारा यह कहना कि शिवाजी आठ बादशाही ताकतों को दक्षिण समेत झकझोर चुके थे और उनसे कर वसूल चुके थे। इसमें जनता ने अपना अपूर्व सहयोग दिया था। अतः उत्तर में भी छत्रसाल के लिए अनुकूल भूमियां बनती दिखायी दे रही थी। शिवाजी ने भी मुलाकात में सेना इकट्ठा कर मुगलों के विरूद्ध युद्ध करने का सुझाव दिया था। शिवाजी ने छत्रसाल को अपनी भवानी नामक तलवार देकर उनका अभिषेक किया। छत्रसाल बुंदेलखंड लौट आये और मुगलों के विरूद्ध विद्रोह का ऐलान कर दिया। विद्रोह का समाचार औरंगजेब तक भी पहुंचा और उसने विद्रोह को दबाने के लिए भेजा। फिदाई

खां छत्रसाल के मुगल विरोध के फरमान को सुनकर मंदिरों को ढहाकर कुफ्र को मिटाने का प्रण लेकर चला–

*''ढाहि देवालय कुफर मिटाउं, तिनके ठौर मसीत बनाउं।*
*पतसाहि का नाउं चलाउं, तबै फिदाई खान कहाउं।'*[58]

इस युद्ध में फिदाई खां की एक न चली और विजयश्री छत्रसाल के हस्से में आयी। जैसे ही बुंदेलखंड में यह बात पहुंची, वहां औरंगजेब के कोप से डर का माहौल छा गया। वहां अब अपने–आप को बचाने की फिक्र होने लगी। उन्होंने छत्रसाल को भी औरंगजेब से बचने की सलाह दिया। उस वक्त ओरछा में राजा सुजानसिंह शासन कर रहे थे। अतः उन्होंने उस समय हालांकि छत्रसाल की मदद की। छत्रसाल ने भी राजकीय कोप से उन्हें बचाने का आश्वासन दिया। सुजानसिंह ने भी इनका अभिषेक किया और विजयश्री का आशीर्वाद दिया। अब छत्रसाल के सामने विद्रोह को सफल बनाने के लिए एक उपयुक्त रणनीति की जरूरत थी। अतः पहले अपने सम्बन्धियों से बातचीत की। लालकवि के अनुसार संवत् 1728 विक्रम में छत्रसाल ये कार्रवाइयाँ कर रहे थे। छत्रसाल अपने भाई रतनशाह से मुलाकात की और उनसे अपना राज्य प्राप्त करने में सहयोग मांगा। रतनशाह ने शाही कोप के डर से मना कर दिया। तब छत्रसाल ने कुछ समय के लिए बांकी खां से मदद ली। इतिहास में बांकी खां का जिक्र नहीं मिलता लेकिन लालकवि के अनुसार छत्रसाल ने कुछ समय के लिए उसकी सेवाएं ली थीं। उन्होंने उसके साथ ही विद्रोह की नींव डाली। अपने संबंधियों और धंधेरों के साथ मिलकर एक सेना का गठन किया गया जिसका नेता छत्रसाल को चुना गया।

इस नवगठित सेना ने सबसे पहले उनके अधीन गांवों को जीता और अपने पिता का बदला लिया। अब धंधेरों को उनसे डर हो गया और उन्होंने तुरंत उनसे ब्याह संबंध बनाकर उनसे बचने का प्रयास किया। धंधेरों को वश में कर लेने पर पूरे क्षेत्र में उनके नाम का डंका बचने लगा। सिरौंज शहर में खौफ व्याप्त हो गया। यहां मुहम्मद हाशिम धौंसा के निकट उन्हें रोकने के लिए आया। युद्ध में लगभग 50 पठान मारे गये और उसके लोग वापस सिरौंज लौट आये। इस जीत के बाद छत्रसाल ने औडेर, तोरीतोरा, पिपरहट नामक गांवों को लूटा और मुगल अधिकारियों से कर वसूला। इसके बाद धौर सागर

(अहीरों का गांव), भेड़ा, पथरिया और धमौनी पर हमला कर उसे लूटा। धमौनी में उनकी भिड़न्त वहां के फौजदार के साथ हुई किन्तु छत्रसाल के लड़ाकों ने उसे पीछे हटने पर मजबूर कर दिया। भागती हुई सेना के साथ चन्द्रापुर, मैहर, रानगिरी जैसे गांवों में छोटी–छोटी मुठभेड़ें हुई। छत्रसाल ने इन गांवों को भी लूटा और फौजदार से तीस हजार की राशि मांगी किन्तु फौजदार ने असमर्थता जाहिर की तब छत्रसाल ने उसकी मजबूरी समझ उसे छोड़ दिया।

इसके पश्चात्**छत्रसाल ने दांगीवाड़ा के क्षेत्रों पर विजय** प्राप्त की। छत्रसाल की शुरूआती विजयों को लूट कहा जाना अधिक सत्य है। इस दौरान जिन–जिन गांवों पर धावा बोला गया उसे बुरी तरह से लूटा गया। उस समय तक बुंदेले अभी–भी एक राज्य के अन्तर्गत नहीं थे। अतः लूट ही उनकी आय का मुख्य स्त्रोत था। अतः वे युद्ध में विजयश्री के पश्चात् लूट–मार पर अधिक ध्यान देते थे। लूटमार की प्रवृत्ति को लालकवि ने छुपाने की कोशिश नहीं की है। अपितु छत्रसाल के वीरत्व की प्रशंसा में विपक्षी के साथ ऐसा करना उन्हें उचित लगता होगा।

बड़ी पठारी ( सागर जिले के वीना नदी का तटवर्ती पठारी क्षेत्र) को जीतने के पश्चात् छत्रसाल ने युद्धों से थोड़ा विश्राम लिया (14वां अध्याय)। इसी बीच मुगल क्षेत्रों में भी लूट–मार जारी रहा। ग्वालियर के पास शिकार खेलते हुए मुगलों ने उनपर हमला भी किया जिसमें वह बच निकले। ग्वालियर में बुंदेलों और मुगलों के बीच हुए युद्ध के पश्चात ग्वालियर को भी बुंदेलों ने लूटा। अब छत्रसाल ने अपने जीते हुए क्षेत्रों से चौथ नामक कर वसूलना शुरू किया (यह कर शासक पक्ष द्वारा विद्रोही नेता को दिया जाने वाला कर था)। छत्रसाल की विजयों को सुनकर बुंदेलों में जो अब–तक अलग–थलग रह रहे थे, नई आशा की किरण जागी और वे छत्रसाल के नेतृत्व में इकट्ठा होने लगे। **लालकवि ने बुंदेलों के राजघरानों विभिन्न राजकुमारों के छत्रसाल के यहां जुटने के साक्ष्य दिये हैं जो यह साबित कर देते हैं कि बुंदेल एक बार फिर से केन्द्रीय शासन के खिलाफ लड़ने के लिए एकजुट हो रहे थे।**

बुन्देलों के विद्रोह की खबर जल्दी ही औरंगजेब तक पहुंचायी गयी।**औरंगजेब ने धमौनी के फौजदार रणदूलह को बुंदेलों का विद्रोह समाप्त** करने के लिए नियुक्त किया। किन्तु

रणदूलह को छत्रसाल के विरूद्ध कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिल पायी और उसे युद्ध से हटना पड़ा। औरंगजेब उसकी असफलता से बहुत खिन्न हुआ –

*''सुनी दिलीस खबरि ठिकठाई , रनदूलह को लानति आइ।''*[59]

इसी बीच नरवर को बुंदेलों ने लूटा और रनदूलह से भी हरजाना लिया। औरंगजेब ने अफ़ासियाब खां रूमी (यह उस समय धमौनी का प्रशासक था) को रणदूलह की जगह पर नियुक्त किया। युद्ध में रूमी को भी छत्रसाल से हार का सामना करना पड़ा। इसी बीच औरंगजेब को एक नई समस्या का सामना करना पड़ा जो राजपूताने से सम्बन्धित था। लालकवि ने इसका जिक्र इस तरह से किया है –

*''नृप जसवंतहि कौ बेटा, कढ़े दिली को मारि चपेटा।*
*फिरे जोधपुर अनी अनियारे, अति साह अजमेर सिधारे।।''*
*त्यौं अकबर सहिजादौ साउ, राठौ रन पिल्यौ अगाउं।*
*त्यौं प्रपंच रचि बुद्धि बल, दुरगादास राठौर।*
*साहिजादै सौं मिलि कियौ, तखत लैन के डौर।।''*[60]

यहां लालकवि ने **मुगल साम्राज्य के सबसे मुख्य स्तंभ राजपूताने के मारवाड़ में उत्पन्न हुए संकट** का ब्यौरा दिया है।जसवंतसिंह के निःसन्तान मरने के बाद मारवाड़ में विद्रोह की अग्नि सुलग उठी थी क्योंकि जसवंतसिंह के मरने के बाद औरंगजेब ने मारवाड़ को खालसा घोषित किया था। मारवाड़ के दीवान दुर्गादास राठौर ने औरंगजेब के आदेश का पालन करने से मना कर दिया और जसवंतसिंह के मृत्योपरान्त जन्में बालक अजीतसिंह को मारवाड़ का शासक घोषित कर दिया। इसके अलावा दुर्गादास ने कूटनीति के तहत औरंगजेब के बेटे को विद्रोही बनाकर उसे उसके घर में ही उसे चुनौती दे डाली। औरंगजेब के बेटे अकबर को राठौरों ने (विद्रोही राजकुमार का) अपने ही यहां शरण दे दी। अपने पुत्र के विद्रोह से औरंगजेब को काफी धक्का लगा। वह राजस्थान में अजमेर विद्रोह को दबाने पहुंचा। **लालकवि ने दुर्गादास का बढ़िया चरित्रांकन किया है और उसकी कूटनीतिक बुद्धि की प्रशंसा की है।** अब औरंगजेब को सबकुछ छोड़कर अपने बेटे का विद्रोह दबाने के लिए उद्यत होना पड़ा। दुर्गादास ने शहजादा को राजस्थान से दक्षिण की तरफ भेज दिया और इस तरह से मारवाड़ को औरंगजेब के प्रकोप से बचा लिया।

औरंगजेब शहजादे को ढूढ़ते हुए दक्षिण पहुंच गया। इसके साथ ही दुर्गादास ने तहव्वर खां को भी शहजादे अकबर के पक्ष में फोड़ लिया था जो मुगल साम्राज्य का एक विश्वस्त सेनानायक था।

**छत्रसाल ने अफ़ासियाब खां रूमी को भी अपने मंसूबे में सफल नहीं होने दिया** और उसकी जगह तहव्वर खां कुछ समय के लिए बुंदेलखंड में आया था। किन्तु छत्रप्रकाश के अनुसार तहव्वुर खां और छत्रसाल में संधि हो गयी और बाद में ब्याह संबंध भी बना। युद्ध ब्याह के साथ संपन्न हुआ तथा इसमें छत्रसाल को विजय मिली।

इसके बाद बुंदेलों की महत्वपूर्ण विजय **कालिंजर की विजय** थी जिसके युद्ध की प्रत्येक घटना का लालकवि ने सजीव वर्णन किया है। इसमें बुंदेलों के बारह तथा मुगलों की फौज से तीन वीर खेत रहे। कालिंजर की विजय के पश्चात बुंदेलों ने जलालपुर, महोबा, पनवारी, करौरी के साथ–साथ धमौनी को फिर से लूटा और कर वसूल किया। मुगल सेनाएं हर जगह बुंदेलों को रोक पाने में असफल रहीं। छत्रसाल का प्रभाव पूरे क्षेत्र में फैल गया। अब छत्रसाल ने बेतवा नदी के पार भी अपना राज्य बढ़ाने का निर्णय किया। बेतवा के पार जालौन जिले में सेंगरों ने छत्रसाल को अपना सहयोग दिया था। इसके अलावा बुंदेलखंड क्षेत्र को उन्होंने अपने कब्जे में लेकर मुगल प्रशासन को खुली चुनौती दे दी। इन सभी युद्धों में कभी उन्होंने खुले में लड़ाईयां लड़ी तो कभी छापामार नीति अपनायी। इसके अलावा गांवों को लूटकर उन्हें छोड़ देने का भी सिलसिला जारी रखा। बुंदेलों की सेना अब सुसंगठित सेना बन चुकी थी जो एक साथ कई मोर्चों पर लड़ सकती थी और शत्रु को परास्त कर सकती थी। बुंदेले हमेशा से लड़ाकू प्रवृत्ति के माने गये है जो अपनी जान की परवाह न करके युद्ध में भाग लेते हैं। अतः औरंगजेब के लिए उस इलाके में वह बड़ी समस्या के रूप में उभर रहे थे जिसे अब–तक उसके प्रशासक नियंत्रित नहीं कर सके थे।

उत्तर प्रदेश के बांदा, जालौन एवं हमीरपुर जैसे जिलों को छत्रसाल ने बुरी तरह से रौंद दिया था तब औरंगजेब ने सदरूद्दीन मिर्जा को धमौनी का प्रशासक नियुक्त किया। सदरूद्दीन ने छल–बल के प्रयासों के बावजूद सफलता प्राप्त नहीं की अतः उसे वहां से हटा दिया गया। लालकवि ने इसके छत्रसाल के साथ हुए युद्ध का व्यापक वर्णन किया है।

युद्ध के निष्कर्ष के रूप में सदरूद्दीन मिर्जा को भी छत्रसाल को चौथ चुकाकर अपनी जान बचानी पड़ी –

*''सदरूद्दीन को कूटि दल, लीनी चौथ चुकाइ।*
*पहुंचे दल दरकूच ही, चित्रकूट को जाइ।।''*[61]

इसके बाद छत्रसाल ने शाही ठिकानों कनार, कालपी, उरई, खगसीस एवं कोटरा में मुगल सम्पत्ति को नुकसान पहुंचाया और लूटपाट की। उनको रोकने के चक्कर में के किलेदार लतीफ की बुरी हालत हुई और बुंदेलों ने उसके किले को दो महीने तक घेरे रखा। तब हम्मीर नामक एक धंधेरे की मध्यस्थता से 1 लाख का हरजाना देकर उसने अपनी जान बचायी।

अब छत्रसाल को रोकने के लिए औरंगजेब ने अब्दुल समद नामक सेनाधिकारी को भेजा जो मुगलों को उल्लेखनीय सेवाएं प्रदान कर चुका था और स्वयं औरंगजेब ने उसकी प्रसंशा की थी। दोनों सेनाओं में युद्ध की जोर–शोर से तैयारियां हुई और दोनों दल मौदहां नामक स्थान पर मिले। छत्रप्रकाशकार ने युद्ध का यमुना किनारे होना लिखा है। युद्ध का वर्णन इस प्रकार है –

*''छूटे बान कुहु–कुहु बोला, नभ गननाइ उठे गुरू गोला।*
*तरभर निबिड़ बंदूखनि माची, धूम धुंध नभ मंडल नाची।*
*दसहुं दिसनि गई पर कारी, देख्यौ समै भयानक भारी।*
*गोला गिरन गाज से लागे, बिडर काल के किंकर भागे।*
*त्यौं छत्रसाल बीर रस छाक्यौ, सनमुख सैन समद कौ ताक्यौ।*
*लरे उमड़ि भट समद के, अरे बुंदेला वीर।*
*परे परस्पर खेत कटि, टरे न टारे धीर।।''*[62]

दोनों पक्षों में जोरदार लड़ाई हुई लेकिन कुछ समय बाद बुंदेले पठानों की सेना पर भारी पड़ने लगे। अन्ततः इस युद्ध में मुगल सेना हारने लगी। शत्रु सेना का बहुत सा युद्ध का साजो–सामान बुंदेलों के हाथ लगा। छत्रसाल को अब्दुल समद के विरूद्ध मिली पराजय से औंरंगजेब का बुंदेलों के दमन का यह प्रयास भी निष्फल हो गया।

**इक्कीसवें अध्याय** में लालकवि ने बुंदेलों और मुगल सेनापति बहलोल खां के युद्ध का वर्णन किया है। बहलोल खां को छत्रसाल के भतीजे ने स्वयं रोककर रखने की कोशिश की किन्तु उसे सफलता नहीं मिली। बहलोल खां छत्रसाल तक पहुंचने में कामयाब रहा और राजगढ़ में सेना का पड़ाव डाल दिया। छत्रसाल के नेतृत्व में बुंन्देले बहुत वीरता से लड़े और बहलोल खां का सेनापति युद्ध में मारा गया। जब सेनापति खोकर उसका हाथी डेरे पर पहुंचा तो बहलोल खां के छक्के छूट गये। तीन दिनों तक लड़ने के पश्चात् चौथे दिन वह युद्ध क्षेत्र से वापस चला गया।

इसके पश्चात् छत्रसाल ने कुटरों, जसोपुर, सोहावल, घटरा, मौधा मौदहा, सिहुंड़ा में छत्रसाल की मुलाकात मुराद खां से हुई जिसकी शारीरिक शक्ति को कवि ने मरदानौ शब्द से व्यंजित किया है। युद्ध में मुराद खां मारा गया और सेंहुंड़ा को बुंदेलों ने बुरी तरह से लूटा। सेहुंड़ा के लूटे जाने और मुराद खां जैसे शक्तिशाली वीर की मृत्यु की खबर औरंगजेब तक तुरंत पहुंची। औरंगजेब के दरबार में दिलेर खां ने यह शिकायत पहुंचायी थी अतः बादशाह ने शिकायती लहजे में उसपर व्यंग्य कसा।

मुगल दरबार में बादशाह द्वारा किया गया व्यंग्य दिलेर खां को उकसाने के लिए काफी था। वह वहां से बुंदेलों को वश में करने का प्रण लेकर लौटा। आते ही उसने छत्रसाल के चौथ के जवाब में सेना लेकर युद्ध करने आ पहुंचा।बिना किसी तैयारी के युद्ध में जाने का हश्र उसे तुरंत उसे समझ आ गया। युद्ध में उसने अपनी जान गंवा दी और तब बुंदेलों ने उसके क्षेत्र में लूट–पाट की।

दिलेर खां का हश्र सुनकर और क्षेत्र में लूट–पाट का समाचार जानकर बुंदेलों को रोकने के लिए शाहकुली नामक सेनानायक को भेजा गया। सम्भवतः इतिहास में शाहकुली का जिक्र नहीं मिलता तभी संपादक ने अनुमान जताया है कि शाहकुली कुलीच खां प्रतीत होता है। दिसम्बर 1679 में कुलीच खां **सदरूस्सदर** की उपाधि से विभूषित हुआ था। संपादक ने ***मआसिरूल उमरा*** ग्रंथ के मिलान से यह निष्कर्ष निकाला है। साहकुली के साथ ही शेर अफगन आया । शेर अफगन ने बुंदेलों के साथ कई लड़ाइयां लड़ी और एक लड़ाई में बुंदेलों को हार का भी सामना करना पड़ा जिससे बुंदेल सेना में हताशा घर कर गयी। किन्तु छत्रसाल ने उत्कृष्ट नेता होने का परिचय दिया और सैनिकों का मनोबल

बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इसके अलावा छत्रसाल के आध्यात्मिक गुरू स्वामी प्राणिनाथ ने भी सैनिकों का समझाया–बुझाया। सैनिक फिर से जोश में आने लगे। छत्रसाल ने शेर अफगन के विरूद्ध पुनः युद्ध छेड़ दिया। अपनी पहली सफलता से शेर अफगन को प्रमाद हो गया था। उधर बुंदेल सेना नए उत्साह के साथ शेर अफगन के विरूद्ध लड़ने आयी थी। अतः इस बार हुए युद्ध में बाजी पलट गयी और शेर अफगन पराजित हो गया। सैयद लतीफ के बीच–बचाव से उसकी जान बच सकी और उसने जीवनदान के बदले बुंदेलों को चौथ के रूप में दंड चुकाया–

*''सैद लतीफ तहां चलि आयौ, मरत शेर अफगनहिं बचायौ।*
*दइ चौथ अरू डाड़ चुकायौ, जीवनदान अफगन तह पायौ।।''*[63]

औरंगजेब ने शेर अफगन का हश्र सुनकर उसे वापस बुला लिया और शाहकुली को फिर से बुंदेलखंड भेजा। शाहकुली को भी छत्रसाल के विरूद्ध विशेष सफलता नहीं मिल पायी और बुंदेलों ने उसे भी पराजित कर उससे मनमाना कर वसूल किया। लालकवि के अनुसार आठ हजार युद्ध का हरजाना उससे लिया गया और मुंहमांगा चौथ वसूला गया। इन्हीं सब युद्धों के बीच छत्रसाल की मुलाकात स्वामी प्राणिनाथ के साथ हुई जिनका छत्रसाल के जीवन पर बहुत बड़ा असर पड़ा। स्वामी प्राणिनाथ छत्रसाल के आध्यात्मिक गुरू बने और उनके जीवन में स्थिरता आयी। छत्रप्रकाश के तेइसवें, चौबीसवें अध्याय एवं पच्चीसवें अध्याय में प्राणीनाथ के द्वारा छत्रसाल को दिये उपदेश का वर्णन है। छत्रसाल और प्राणीनाथ के सम्पर्क का महत्व इस बात से भी आंका जा सकता है कि प्राणिनाथ के शिष्यों ने छत्रसाल और उनके सम्बन्धों पर खूब लिखा। सम्भवतः राजनीतिक आश्रय प्राणिनाथ के लिए भी महत्वपूर्ण रहा होगा और उन्होंने छत्रसाल के साथ अपने सम्बंधों को सदैव तरजीह दी होगी।

***छत्रप्रकाश*** के अन्तिम छब्बीसवें अध्याय में छत्रप्रकाशकार ने दिल्ली की गद्दी पर बहादुरशाह की ताजपोशी का वर्णन किया है। **बहादुरशाह का राज्याभिषेक 1707 ई. में हुआ था और वर्ष 1710 *छत्रप्रकाश* की समाप्ति का है।** छत्रसाल के चरित्र का आगे लालकवि वर्णन नहीं करते। ग्रंथ की समाप्ति पर मुगल सत्ता में बदलाव होने पर बुन्देलों और मुगलों के बीच कुछ समय के लिए शांति स्थापित हो गयी। बहादुरशाह ने छत्रसाल के नेतृत्व में **लोहागढ़ का अभियान** सम्पन्न कराया था। लोहागढ़ अभियान में सफलता के पश्चात

बहादुरशाह ने मनचाहा मनसब लेने का आग्रह किया लेकिन छत्रसाल ने विनम्रतापूर्वक मना कर दिया और आगे बादशाह की सेवा करने का वचन दिया। छत्रसाल का एक पुत्र मुगल दरबार में रहने के लिए वहीं रूक गया और महराजा छत्रसाल अपने गृह लौट आये। छत्रप्रकाश की कहानी यही सूचना देकर समाप्त हो जाती।

ग्रंथ की समाप्ति तक छत्रसाल ने बुंदेलखंड का एक बहुत बड़ा हिस्सा अपने कब्जे में कर लिया था और इन इलाकों में कर और चौथ वसूलने लगे थे। छत्रसाल की मजबूत स्थिति देखकर **मुगल सम्राट बहादुरशाह ने बुंदेलों के साथ मित्रता का हाथ बढ़ाया था।**औरंगजेब बुंदेलखंड में छत्रसाल के बढ़ते प्रभाव को अपने समय में पूर्ण रूप से नियंत्रित नहीं कर पाया था और उसके प्रशासक लगातार हारते रहे। इतना होने पर भी औरंगजेब कभी–भी स्वयं बुंदेलों का दमन करने के लिए प्रस्तुत नहीं हुआ यह प्रश्न विचारणीय है। औरंगजेब अपने समय में मुगल साम्राज्य का विस्तार उत्तर से दक्षिण तक फैला चुका था। उसी के अनुरूप उसकी समस्याएं भी बढ़ती जा रहीं थी। दक्कन की समस्याओं को निपटाने मेंवह सदैव व्यस्त रहा। इसी बीच राजपूताने में भी विद्रोह सुलगने लगा था। उधर मराठे भी लगातार अपना प्रभाव क्षेत्र बढ़ाते चले जा रहे थे। राज्य के कई क्षेत्रों में किसान विद्रोह भी लगातार हो रहे थे ऐसे में बुंदेलों का प्रभाव विस्तार एक सीमित जगह पर था जिसे औरंगजेब एक छोटी समस्या मानता था। हालांकि यह सत्य भी था क्योंकि बुंदेले उस समय तक असंगठित रूप में ही लड़ रहे थे और राज्य निर्माण से ज्यादा उनका ध्यान लूट–पाट पर अधिक रहता था। एक लम्बे समय तक छत्रसाल एवं उनके साथियों की यही रणनीति रही। बाद में छत्रसाल ने राज्याभिषेक कर अपने राज्य को व्यवस्थित रूप देने का प्रयत्न अवश्य किया लेकिन वह भी केवल उनके समय तक ही फलीभूत हो पाया बाद में बुंदेले एक बार पुनः अपनी शक्ति गवां बैठे और अलग–अलग हो गये । वह क्षेत्रीय शक्ति के रूप में भारतीय राजनीति में मराठों की तरह छाप छोड़ने में नाकाम रहे।

### 3.2.2 लाल कवि की इतिहास दृष्टि : मुगल, बुंदेल शक्ति के संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में

सम्पादक डॉ. महेन्द्र प्रताप सिंह ने सम्पूर्ण ग्रंथ को तीन प्रभागों में बांटकर देखा है जिसके प्रथम प्रभाग में वंशावली, दूसरे प्रभाग में चंपतराय प्रसंग एवं तीसरे प्रभाग में छत्रसाल से जुड़ी घटनाओं का विस्तार से वर्णन मिलता है। हालांकि कवि ने इस तरह का स्वयं कोई प्रभाग नहीं रखा बल्कि बुंदेलवंश उत्पत्ति वंशावली और चंपतराय एवं छत्रसाल के विरोधियों के साथ हुए संघर्षों के आधार पर ही अपने ग्रंथ का अध्याय विभाजन किया है। बुंदेल वंशावली के पश्चात् चंपतराय के संघर्षों का विस्तारपूर्वक वर्णन तत्कालीन समय राजनीतिक हलचलों के परिप्रेक्ष्य में बुंदेलखंड की स्थिति को समझने एवं बालक छत्रसाल के संघर्षमय जीवन के तनावों को स्पष्टता से समझने में सहायक सिद्ध हुआ है। छत्रसाल का चरित्र चित्रण कवि ने बहुत सोच– समझकर किया है। यह ग्रंथ उनके मुगलों के साथ विरोध को समझने में ही मदद नहीं करता बल्कि मुगल शासन की आंतरिक कमजोरियों को चिन्हित करते हुए राजनीतिकछल–बल और कृतघ्नता के दंश को झेलते हुए छत्रसाल के विद्रोही रूप को भी समझने में हमारी मदद करता है। चंपतराय की विकट परिस्थितियों में आत्महत्या ने निश्चित रूप से छत्रसाल को तलवार के दम पर अपने लिए राज्य हासिल करने की प्रवृत्ति को उकसाया जो आगे चलकर मुगल विद्रोह के रूप परिणत हो गया।

केशव के समय में हम देख आये हैं कि जहांगीर के समय वीरसिंह देव को बुंदेलखंड का शासन मिल गया था और उनके शासन काल में शाही छत्रछाया में बुंदेलखंड ने खूब उन्नति की। 1627 ई0 तक जब–तक वीरसिंहऔर जहांगीर जीवित रहे तब–तक मुगलों और जहांगीर जीवित रहे तब–तक मुगलों और बुंदेलों की मित्रता प्रगाढ़ रही किन्तु **शाहजहां के 1627 ई0 में गद्दी पर बैठने के साथ ही दोनों के संबंध बिगड़ गये।** संबंध के बिगड़ने का कारण कवि ने जो दिया है वह निम्नवत् है –

*''एक समै दिल्ली सुर कोप्यौ, पग न जुझारसिंह नृप रोप्यो।*
*अरब खरब लौं हतो खजानौ, सो न जानिए कहां बिलानौ।*
*साठि हजार सुभट दल फूट्यौ, कोउ काहू न मार्‌यौ लूट्यौ।*
*साहि जहान देस सब लीनौ, कियौ बुंदेलखंड बल हीनौ।''*[64]

विवरण के अनुसार शाहजहां ने ओरछे के राजकोष की जांच कराने को आदेश दिया था। इस बात से बुंदेलखंड में रोष फैल गया। जुझारसिंह ने मुगलों के साथ विद्रोह कर दिया था। चंपतराय ने इस मामले में जुझारसिंह का पक्ष लिया और उसकी तरफ से युद्ध लड़ा। शाहजहां को ओरछे का कुछ खजाना भी हाथ लगा। इस विद्रोह के बाद बुंदेलखंड की पूर्वस्थिति में बदलाव आ गया था। इस युद्ध के बाद बुंदेलखंड श्रीहीन हो गया। विद्रोह में जुझारसिंह का अवसान निश्चित हो गया और इस बीच ओरछा में चंपतराय की भूमिका भी बढ़ गयी थी। इस तरह से हमें ग्रंथ में चंपतराय को महत्व देने का तर्कपूर्ण कारण समझ में आ जाता है।

चंपतराय की सलाह पर शाहजहां ने ओरछा का शासक जुझारसिंह के भाई पहाड़सिंह को बनाया। पहाड़सिंह और चंपतराय में थोड़े ही दिनों में अनबन हो गयी और चंपतराय का ओरछे में रहना मुश्किल हो गया क्योंकि उनके खिलाफ साजिशें रची जाने लगी थीं। अपनी माता की सलाह पर चंपतराय शाहजहां के दरबार में चले गये जहां से शाहजहां ने उन्हें दारा के साथ कंधार अभियान पर भेज दिया।

**शाहजहां के शासनकाल में कंधार अभियान**का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। यह शाहजहां की महत्वांकाक्षी परियोजना थी। कंधार विजय के लिए दाराशिकोह के नेतृत्व में मुगल सेना को भेजा गया था। कंधार में दाराशिकोह 23 अप्रैल 1653 ई0 में पहुंचा था। लालकवि के अनुसार चंपतराय भी इस अभियान में शामिल थे लेकिन तत्कालीन फारसी स्त्रोतों में इसका उल्लेख नहीं है। लालकवि लिखते हैं –

*''दै मनसब खंधार पठाये, दारा की ताबीन लगाये।*
*गढ़ खंधार जाइ के घेरयो, मुलुकन हुकम साहि को फेरयो।*
*दारा गढ़ खंधार की, पाई फतै अचूक।*
*चंपति की हिम्मत लखै, उठी हिये में हूक।'*[65]

**कंधार अभियान** में मुगलों को विजय नहीं प्राप्त हो सकी थी और सेना को वापस बुला लिया गया था। लालकवि ने इस अभियान चंपतराय के सन्दर्भ में विजय का होना लिखा है। पूरे प्रसंग को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि चंपतराय को युद्धों मिली विजयों को ही लालकवि ने कंधार फतह के रूप में दिखाया है। चंपतराय का नाम तत्कालील फारसी

सन्दर्भ ग्रंथों में नहीं मिलनासंदेह उत्पन्न करता है। लालकवि ने दारा और चंपतराय के संबंधों में यहीं से खटास शुरू होने का संकेत दे दिया है। इस अभियान के पश्चात् शाही सेना के लौटने पर चंपतराय को दारा ने विशेष तवज्जो नहीं दी जिससे खिन्न होकर वह मुगल सेना छोड़कर वापस ओरछा लौट आये।

दारा चंपतराय के महत्व को पहचानने में भूलकर बैठा था जिसका खामियाजा उसे उत्तराधिकार युद्ध में उन्हें अपना सहयोगी खोकर मिला। कवि के अनुसार दोनों के रिश्ते खराब करने के लिए ओरछाधीश पहाड़सिंह भी उत्तरदायी था। पहाड़सिंह के उकसाने पर दारा ने कौंच की जागीर उसे सौंप दी जिससे चंपतराय नाराज हो गये। मुगल दरबार में चुगलखोरियों पर कवि ने तीखा कटाक्ष किया है –

*''जहां न गुन की बूझ बड़ाई, चुगली सुनै चित्त दै साई।*
*रीझ ठौर प्रभु खीझ जनावै, तहां कौन गुन गुनी चलावै।।''*

### 3.2.3 शाहजहां के पुत्रों में उत्तराधिकार युद्ध एवं उसकी परिणति –

साम्राज्य के लिए जहांगीर से शुरू हुआ विद्रोह शाहजहां के समय में और वीभत्स रूप में प्रकट हुआ था। अब यह उत्तराधिकार युद्ध के रूप में हर बार सत्ता के लिए रक्तरंजित होने लगा। शाहजहां के बीमार पड़ने पर उसके चारों पुत्रों में भयंकर युद्ध छिड़ गया। शाहजहां ने इसे रोकने के लिए दारा को अपने साम्राज्य का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था लेकिन वह अपने अन्य पुत्रों की साम्राज्य लिप्सा को शांत नहीं कर पाया। लालकवि ने शाहजहां की बादशाही और उसके पुत्रों के विषय में सटीक जानकारियां दी हैं। सम्राट बनने की हड़बड़ी में मुरादशाह ने अपने नाम का सिक्का तक चलवा दिया था –

*'' तखत लेन के डौल विचारे, ब्यौंत विसाल बुद्धि के डारै।*
*साहि मुराद हियौ हुलसायौ, गज सिक्का अपनो फुरमायौ।।''*[66]

परंतु औरंगजेब महान कूटनीतिज्ञ राजनेता था जिसकी लालकवि ने भी *बिलसाइ बर बुद्धि प्रवीनी* कहकर प्रशंसा की है। उसने तख्त पाने की अपनी इच्छा को तुरंत प्रकट नहीं किया

और मुरादशाह को अपने में मिला लिया। दूसरी तरफ दारा और शुजा भी युद्ध की तैयारी कर रहे थे। उधर चंपतराय को भी मौका मिल गया। मौका मिलते ही चंपतराय औरंगजेब से मिल गये। लालकवि ने उल्लेख किया है कि औरंगजेब का फरमान मिलते ही चंपतराय दारा को रोकने के लिए आये। यह घटना मई 1658 ई0 की है जब चंबल पार करने के लिए औरंगजेब ग्वालियर में रूका था। चंपतराय ने चंबल पार करने में औरंगजेब को हरसंभव मदद पहुंचाया। उधर से दारा धौलपुर होते हुए चंबल किनारे आया। इधर औरंगजेब ने भी चंबल पार कर लिया। औरंगजेब के आने तक चंपतराय ने दारा को आगे बढ़ने से रोककर रखा था। दारा के हरावल दस्ते में छत्रसाल हाड़ा भी था जिसे युद्ध में वीरगति प्राप्त हुई।

युद्ध में दारा को पीछे हटना पड़ा और औरंगजेब की निर्णायक जीत हुई। उसके तख्त पर बैठने के पश्चात् चंपतिराय को *मनसब दीनौ दुदस हजारी* पुरस्कार मिला। छत्रप्रकाश में इस युद्ध के दौरान ही औरंगजेब पहली बार हमारे सामने आया है। उसके चरित्र चित्रण के सन्दर्भ में कवि की दृष्टि को देखना आवश्यक है। लालकवि ने उसका परिचय ***औरंगशाह समान न दूजा*** कहकर दिया है। इन्हीं शब्दों से यह ध्वनिगत होता है कि कवि उसे विलक्षण बुद्धि का मालिक समझता है। उसके नामों में वह आलमगीर, नौरंगजेब, औरंगजेब, औरंगशाह आदि नामों का प्रयोग करते हैं जिसका अभिप्राय औरंगजेब की कूटनीतिज्ञता को दर्शाने से सम्बन्धित है।

लालकवि औरंगजेब की कूटनीति के महत्व को समझते हुए यह उद्धृत करते हैं कि कैसे उसने अपने भाईयों के सामने तो पहले यह प्रदर्शित किया कि उसे तख्त नहीं चाहिए और दारा को हराने के लिए उनकी मदद ली किन्तु बाद में वह अपने सभी भाईयों को कूटनीति से मार दिया और स्वयं तख्त पर आसीन हो गया। कवि लिखता है –

*''पाई फतै भयौ मन भायौ, औरंग उमड़ि आगरै आयौ।*
*दारा पकरि पठाननि लीन्हौं, साह मुराद, कैद में कीन्हौं।*
*धरनी लोक दुहुन तैं छूट्यौ, नौरंगसाह तखत सुख लूट्यौं।।''* (चौथे अध्याय में वर्णित)

या

*सो अवरंग चित्त धर लीनी, पहिल फिकिर सूजा की कीनी।*

*नौरंगसाह साज दल धायौ, जूझ जीत सूजा बिचलायौ।*
*दावादार रह्यौ नहिं कोई, बैठ्यौ तखत साहिबी जोई।।''*(पांचवें अध्याय में वर्णित)
औरंगजेब द्वारा अपनाये गये दांव–पेंच निश्चित रूप से राजनीति के महारथी के रूप में उसे स्थापित करते हैं। अतः लालकवि का औरंगजेब का चारित्रिक मूल्यांकन निःसन्देह सटीक बैठता है। राजनीतिक रूप से वह अपने सभी भाईयों में सर्वश्रेष्ठ था। अपने साम्राज्य को निष्कंटक रखने के लिए उसने किसी भी दावेदार को जीवित नहीं छोड़ा। उसके व्यक्तित्व के अनेक पहलुओं को हम ***छत्रप्रकाश*** में देख सकते हैं।

### 3.2.4 *छत्रप्रकाश* में औरंगजेब की धार्मिक नीति की आलोचना –

औरंगजेब के शासन काल के कुछ प्रमुख मुद्दों पर लालकवि ने संक्षेप में प्रकाश डाला है जो आज भी इतिहास में विवादास्पद हैं। वे प्रसंग हैं औरंगजेब की **हिन्दू–मुसलमान धार्मिक नीति, जजिया कर, मूर्तियों का विध्वंसीकरण और उसके समय का मराठा विद्रोह।**

लालकवि ने खासतौर पर उसकी हिन्दू मुसलमान नीतियों की खूब आलोचना की है। वे स्वयं भी हिन्दू और मुसलमान में स्वाभाविक विरोध मानते आये हैं। वे लिखते हैं –

*''हिन्दू तुरक दीन द्वै गाए, तिनसों सदा वैर चलि आये।*
*लेख्यौ सुर असुरन को जैसो, केहरि करिन बखान्यौ तैसो।''*

औरंगजेब की नीति की आलोचना करते–करते स्वयं कवि ने हिन्दू और मुसलमानमें स्वाभाविक बैर कहकर दोनों धर्मों कोएक–दूसरे का बैरी बना दिया है। आम जनता से दूर राजनीतिक हलकों में रहने वाले कवि की यह अपनी धारणा है। अन्यथा प्रेमाश्रयी काव्यधारा के कवियों ने इस बैर को भुलाकर काव्य रचना किया था और उन्हें व्यापक जनस्वीकृति भी मिली थी। राजनीतिक स्तर भी इनमें धार्मिकता के आधार पर वैमनस्यता नहीं दिखायी देती। हां, यह बात अवश्य है कि औरंगजेब की धार्मिक नीति अपने पूर्वजों के समान नहीं थी और उसने फिर से हिंदुओं पर जजिया कर लगा दिया, जिसका काफी विरोध हो रहा था। इसके अलावा हिन्दुओं पर तीर्थयात्रा कर भी लगाया गया था और कुछ मंदिर भी

ढहाये गये जो आम जनता के लिए धार्मिक भावना के आधार पर पीड़ादायी थे। भूषण ने भी अपने काव्य में उसकी इन नीतियों का विरोध किया है।

औरंगजेब की बदली हुई धार्मिक नीतियों पर सभी इतिहासकार एकमत नहीं हैं। प्रो0 सतीश चन्द्र और इरफान हबीब जैसे इतिहासकारों ने औरगजेब की इन नीतियों की राजनीतक परिप्रेक्ष्य में ही आलोचना की है। उनका मानना है कि तत्कालीन राजनीतिक–आर्थिक परिस्थितियों के कारण ही उसकी धार्मिक नीतियों में बदलाव आया और उसे हमें उसी परिप्रेक्ष्य में रखकर देखना चाहिए। धर्म का उपयोग राजनीति के लिए हमेशा से होता आया है और यह आज के समय में भी उतना ही सच है जितना औरंगजेब के समय में था।

लालकवि ने शिवाजी और छत्रसाल का वर्णन अपने काव्यग्रंथ में बतौर हिन्दू रक्षक के रूप में किया है। भूषण की तरह वह उनका धर्मरक्षक रूप लेकर आये हैं। कवि ने उन राजपूत राजाओं की भर्त्सना की है जो औरंगजेब के दरबार में शीश नवाने जाते थे और उसकी आज्ञाओं का पालन करते थे। औरंगजेब के शासनकाल में हिन्दू मंदिरों के तोड़े जाने और वहां पर मस्जिद बनवाये जाने का भी कवि ने क्षोभपूर्वक वर्णन किया है। औरंगजेब की धार्मिक नीति के विरोधी के रूप में ही छत्रसाल के नायकत्व की कवि ने प्रशंसा की है।

औरंगजेब के द्वारा दरबार में **कट्टर मुसलमानों के एक वर्ग की महत्वाकांक्षा को संयमित** करने के लिए भी अपनी धार्मिक नीतियों में बदलाव करना पड़ा था क्योंकि वह हिन्दू विद्रोहों को शान्त करने के लिए उनके सहयोग को जरूरी मानता था। उसे खुश करने के लिए उसके ये सूबेदार हिन्दू मंदिरों के विध्वंस का कार्य बखूबी अजांम देते थे। लालकवि ने छत्रसाल के विद्रोह के बाद बुंदेलखंड में मंदिरों के विध्वंस का जो वर्णन किया है वह इसी की प्रतिक्रियास्वरूप है।

कट्टर मुसलमान मंदिरों से उठती घंटे और शंख की ध्वनियों को सुनकर अपने कान बंद कर लेते थे और कुफ्र को मिटाने का संकल्प करते थे।[5] बुंदेलखंड आते समय फिदाई खान यही संकल्प लेकर आया था। औरंगजेब के ही दरबार के एक कवि वृन्द ने भी औरंगजेब की धार्मिक नीति की आलोचना की है। इन सन्दर्भ में उनका एक छंद है –

[5]जौ कहुं कान संखधुनि आवै, मुसलमान तौ भिस्त न पावै।
सीसौ औटि कान जौ नावे, तौ दोजख ते खुदा बचावै।
तातैं ढाहिं देवाले ईजै, तिनके ठौर मसीदे कीजै।

*''छोड़े फिरे तखत बखत दिल्ली पति, सोच ही रहत जाकूं बात चित्त चाही को।*
*गाम गाम धाम धाम जजिया की धूमधाम, साम सूम होइ रह्यो सबै जाहि ताही को।*
*राग है न रंग है न कहूं कछु ढंग है, हित चित भंग तंग बसत सिपाही को।*
*राजा जसवंत सिंह आयुबल खूंटत ही, लूटि गयौ को खजानो पातसाहि को।'*[67]

वृन्द के इस कथन से यह जाहिर होता है कि उस समय औरंगजेब की नीतियों के खिलाफ ब्रज कविता में काफी कुछ लिखा जा रहा था और इस तरह के उदाहरण अन्य कवियों में भी खोजे जा सकते हैं।

लालकवि के काव्य ग्रंथ में इन प्रकरणों में हिन्दू–मुसलमान दोनों की प्रतिक्रिया सुरक्षित है। इन घटनाओं का वर्णन कर लालकवि अपने नायकों को हिन्दू धर्म का रक्षक घोषित कर उन्हें लोक की सहज स्वीकृति दिलाने की आकांक्षा रखते हैं। इसी कारण से वह अपने नायक द्वारा मनसब ठुकराये जाने और उसके विद्रोही जीवन के वरण के संकल्प को विशेष तौर पर रेखांकित करते हैं। इस तरह के नायक के नायकत्व को उभारने के लिए औरगजेब एक कट्टर मुसलमान के रूप में चित्रित हुआ है जो हिन्दू जनता को प्रताड़ित करने वाला शासक है। उसके लिए वह लिखते हैं **'पातसाह लागे करन, हिन्दू धर्म को नासु'**। अतः छत्रसाल को मिले जनसमर्थन को हमें इसी परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिए जो उनकी लोकप्रियता को कारण बना।

छत्रसाल के नेतृत्व में बुंदेलखंड राज्य कुछ ही समय के लिए लेकिन महत्वपूर्णस्थिति में अवश्य आ गया था। बुंदेलों की वीरता की कीर्ति फिर से चमकने लगी थी जिसका विवरण हम भूषण की भी रचना में पा सकते हैं। शिवाजी की ही तरह भूषण के काव्यनायक छत्रसाल भी रहे जिन्हें कवि ने लोकनायक का दर्जा दिया भूषण और लालकवि दोनों ने ही औरंगजेबकालीन इतिहास पर अच्छा प्रकाश डाला है हालांकि भूषण की दृष्टि लालकवि से बिल्कुल भिन्न और साहित्यिक थी अतः वे शिवाजी के समय का इतिहास निरंतरता में न लिखकर केवल प्रतीकात्मक ढंग से उसका उल्लेख करते चलते हैं।हालांकि इस तरह से भी उनके ऐतिहासिक साक्ष्यों की प्रामाणिकता संदिग्ध नहीं मानी जा सकती। छत्रप्रकाशकार लालकवि ने भले ही सन–सम्वत् का उल्लेख न किया हो लेकिन उनकी वर्णन शैली एक इतिहासकार की भांति ही निरंतरता पर पूरा ध्यान देती है।

लालकवि आधुनिक दृष्टि से एक इतिहासकार तो नहीं किन्तु उसके आस–पास जरूर ठहरते हैं। एक कवि द्वारा इस तरह की ऐतिहासिक निष्ठा का पालन उस समय के बहुत कम साहित्यकारों में मिलता है। राजदरबार में कवि रहते हुए भी वह अनैतिहासिक वर्णनों के चक्कर में नहीं पड़े हैं और जो भी देखा या सुना उसे परखकर उसी तरह से अपने ग्रंथ में उतारने में वह कामयाब हुए हैं। सारा वर्णन संयमित और सटीक है हालांकि कवि होने के नाते युद्धों के वर्णन में वह जरूर ऊँची–ऊँची उड़ान भरते हैं किन्तु ऐसा होना भी स्वाभाविक है। वह कवि हैं और कविता की मर्यादा के अनुसार ही छूट लेते हैं। इससे उनके ऐतिहासिक वर्णन पर कोई अनर्गल प्रभाव नहीं पड़ता।

# सन्दर्भ सूची


[1]विश्वनाथ प्रसादमिश्र, भूषण ग्रंथावली, वाणी प्रकाशन, पृ. सं. 69
[2] राजमल बोरा , भूषण, मोनोग्राफ, साहित्य अकादेमी, पृ. सं. 10
[3] विश्वनाथ प्रसादमिश्र, भूषण ग्रंथावली, वाणी प्रकाशन, पृ. सं. 129
[4] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, भूषण ग्रंथावली, वाणी प्रकाशन, पृ. सं. 133
[5] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, भूषण ग्रंथावली, वाणी प्रकाशन, पृ. सं.
[6] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, भूषण ग्रंथावली, वाणी प्रकाशन, पृ. सं. 75
[7]वही, पृ, सं 75
[8] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, भूषण ग्रंथावली, वाणी प्रकाशन, पृ. सं. 129
[9] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, भूषण ग्रंथावली, वाणी प्रकाशन, पृ. सं. 130
[10] मिश्रबन्धु, भूषण ग्रंथावली, काशी नागरी प्रचारिणी सभा प्रकाशन, पृ. सं. 65
[11]विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, भूषण ग्रंथावली, वाणी प्रकाशन, पृ. सं. 196
[12]विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, भूषण ग्रंथावली, वाणी प्रकाशन, पृ. सं 170
[13]मिश्र विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, भूषण ग्रंथावली, वाणी प्रकाशन, पृ. सं. 49
[14]जदुनाथ सरकार, शिवाजी एंड हिज टाइम्स, पृ सं. 88
[15] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, भूषण ग्रंथावली, वाणी प्रकाशन, पृ. सं 161
[16]राजमल बोरा, भूषण, मोनोग्राफ, साहित्य अकादमी, पृ. सं. 65
[17] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, भूषण ग्रंथावली, वाणी प्रकाशन, पृ. सं 185
[18] जदुनाथ सरकार, शिवाजी एंड हिज टाइम्स, पृ, सं, 88
[19] विश्वनाथ प्रसादमिश्र, भूषण ग्रंथावली, वाणी प्रकाशन, पृ. सं. 165
[20]वही, पृ. सं. 198, परिशिष्ट में उद्धृत 370वां छंद
[21] विश्वनाथ प्रसादमिश्र, भूषण ग्रंथावली, वाणी प्रकाशन, पृ. सं 165
[22] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, भूषण ग्रंथावली, वाणी प्रकाशन, पृ. सं. 191
[23]वही, पृ. सं. 186
[24] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, भूषण ग्रंथावली, वाणी प्रकाशन, पृ. सं. 202
[25] शिवराज भूषण, किताबघर प्रकाशन, पृ सं. 104
[26]वही, पृ सं. 144
[27]वही, पृ सं. 144
[28]वही, पृ सं. 144
[29] शिवराज भूषण, किताबघर प्रकाशन, पृ सं. 144–145
[30] जदुनाथ सरकार, शिवाजी एंह हिज टाइम्स, पृ. सं. 185
[31]वही, पृ, सं, 185
[32]सम्पा. इरफान हबीब, मध्यकालीन भारत, भाग दो, लेख पी, वी, रानाडे से उद्धृत, पृ. सं. 65
[33]शिवराज भूषण, किताबघर प्रकाशन, पृ सं. 98
[34]वही, पृ. सं. 98
[35]राजमल बोरा, भूषण, मोनोग्राफ, साहित्य अकादमी, पृ. सं. 76
[36] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, भूषण ग्रंथावली, परिशिष्ट, वाणी प्रकाशन, पृ. सं. 155
[37] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, भूषण ग्रंथावली, परिशिष्ट, वाणी प्रकाशन, पृ. सं. 229
[38] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, भूषण ग्रंथावली, परिशिष्ट, वाणी प्रकाशन, पृ. सं. 230
[39]वही, पृ, सं, 232
[40]शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रयाग पब्लिकेशन, पृ. सं. 200
[41]वही, पृ. सं. 200
[42]गोरेलाल, छत्रप्रकाश, श्रीपटल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. 17
[43]गोरेलाल, छत्रप्रकाश, श्रीपटल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. 17
[44]वही,
[45]गोरेलाल, छत्रप्रकाश, श्रीपटल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं.16
[46]गोरेलाल, छत्रप्रकाश, श्रीपटल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. 25
[47]गोरेलाल, छत्रप्रकाश, श्रीपटल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. 31
[48]गोरेलाल, छत्रप्रकाश, श्रीपटल प्रकाशन, नई दिल्ली, भूमिका से उद्धृत्
[49]गोरेलाल, छत्रप्रकाश, श्रीपटल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. 34
[50]वही, पृ. सं. 35
[51]गोरेलाल, छत्रप्रकाश, श्रीपटल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. 36
[52]वही, पृ. सं. 41
[53]गोरेलाल, छत्रप्रकाश, श्रीपटल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. 60

[54]गोरेलाल, छत्रप्रकाश, श्रीपटल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. 79
[55]वही, पृ. सं. 83
[56]गोरेलाल, छत्रप्रकाश, श्रीपटल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. 85
[57]वही, पृ. सं. 86
[58]गोरेलाल, छत्रप्रकाश, श्रीपटल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. 87
[59]गोरेलाल, छत्रप्रकाश, श्रीपटल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. 121
[60]वही, पृ. सं. 123
[61]गोरेलाल, छत्रप्रकाश, श्रीपटल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. 153
[62]वही, पृ सं, 158–59
[63]गोरेलाल, छत्रप्रकाश, श्रीपटल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. 181
[64]वही, पृ. सं. 16
[65]गोरेलाल, छत्रप्रकाश, पृ. सं. 31
[66]गोरेलाल, छत्रप्रकाश, श्रीपटल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. 35
[67]बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ. सं. 212

# चतुर्थ अध्याय

## श्रीधर एवं सूदन की रचनाओं में इतिहास : मुगल शासन में उत्तराधिकार की समस्या तथा क्षेत्रीय शक्तियों का प्रभुत्व

4.1 श्रीधर : कवि एवं ग्रंथ परिचय

4.1.1 *जंगनामा* में वर्णित उत्तराधिकार की लड़ाई से पूर्व की राजनैतिक परिस्थितियां

4.1.2 उत्तराधिकार की लड़ाई और *जंगनामा*

4.1.3 आगरा का युद्ध एवं उसके परिणाम

4.1.4 *जंगनामा* में वर्णित अमीर वर्ग का उभार और दरबार में गुटबाजी का नया दौर

4.2 सूदन : *सुजानचरित*

4.2.1 सूदन : कवि एवं ग्रंथ परिचय

4.2.2 *सुजानचरित* का वर्ण्य विषय : जाट शक्ति का विस्तार

4.2.3 *सुजानचरित* में वर्णित दरबार की गुटबाजी एवं वजीर की स्थिति

4.2.4 मुगल साम्राज्य एवं जाट, मराठा शक्ति

4.2.5 सूदन की इतिहासदृष्टि

## श्रीधर एवं सूदन की रचनाओं में इतिहास : मुगल शासन में उत्तराधिकार की समस्या तथा क्षेत्रीय शक्तियों का प्रभुत्व

हिन्दी साहित्य के इतिहास में श्रीधर और सूदन ऐसे कवि हैं जिनकी रचनाओं में औरंगजेबोत्तर इतिहास की झलकियां मौजूद हैं। रीतिकाल में इनका मूल्यांकन केवल साहित्य इतिहासलेखन के सन्दर्भ में ही हुआ है। काव्य में वीर रस के प्रमुख कवियों के रूप में दोनों की चर्चा अवश्य की जाती है। वीर रसयुक्त ग्रंथ की रचना के लिए विषय वस्तु के रूप में इन कवियों ने ऐतिहासिक साक्ष्यों एवं ऐतिहासिक व्यक्तियों का चुनाव किया है जो उनके समकालीन थे। श्रीधर ने मुगल बादशाह फर्रुखसियरतो सूदन ने जाटनरेश सूरजमल के चरित्र का वर्णन किया है। श्रीधर का ***जंगनामा*** एक संक्षिप्त रचना है जिसमें बहादुरशाह के पुत्रों के बीच हुआ उत्तराधिकार युद्ध वर्णित है। इस युद्ध के माध्यम से तत्कालीन मुगल दरबार की आंतरिक स्थिति एवं अमीरों के बीच के तनावों को समझा जा सकता है। वस्तुतः इन सभी स्थितियों का वर्णन ***जंगनामा*** में संक्षेप में ही आया है लेकिन जितना भी आ पाया है वह काफी महत्वपूर्ण है। सूदन के ***सुजानचरित*** में जंगनामा से आगे परिस्थितियों पर प्रकाश पड़ता है जो फर्रुखसियरके काल में पैदा हुयी थीं और उन्होंने आगे चलकर मुगल साम्राज्य को काफी प्रभावित किया था। इसलिए उस काल की प्रवृत्तियों को समझने के लिए इन दोनों रचनाकारों का अध्ययन इस अध्याय में किया जायेगा। जाटनरेश सूरजमल के समय में मुगल सल्तनत की स्थिति काफी कमजोर हो गयी थी और उनकी दिल्ली लूट की घटना ने मुगल साम्राज्य की राजधानी की कमजोरियों को बाहर ला दिया और दूसरी शक्तियों कोकमजोर पड़ चुके साम्राज्य को लूटने के लिए उकसाने का काम किया जिसने अन्ततः मुगल साम्राज्य के पतन की प्रक्रिया को तेज कर दिया।

## 4.1 श्रीधर : कवि एवं ग्रंथ परिचय

श्रीधर के विषय में हिन्दी साहित्येतिहासों में कुछ खास जानकारी नहीं मिलती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ***हिन्दी साहित्य का इतिहास***में महज 5–6 पंक्तियों में ही उनका परिचय एवं ग्रंथ की जानकारी सब–कुछ समेट लिया है। ***जंगनामा*** रचना के विषय में पहली बार विलियम इर्विन नामक विद्वान को खबर लगी थी जो हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' के यहा से उसे प्राप्त हुई थी। बाद में इस ग्रंथ को राधाकृष्ण दास ने संपादित कर इसे प्रकाशित कराया। बाद में कृति के अप्राप्य हो जाने पर पुनः नागरी प्रचारिणी सभा के प्रयत्नों से डॉ. रघुवीर सिंह ने इसे प्रकाशित कराया। श्रीधर के विषय में इस संपादित कृति में 1904 ई. में राधाकृष्ण दास द्वारा संपादित ग्रंथ का ही संपादकीय वक्तव्य 'ग्रंथ और ग्रंथकर्ता' को शामिल किया गया है। उसी में कुछ टिप्पणियों के माध्यम से श्रीधर के विषय में कुछ जानकारी मिल पाती है। स्वयं अपने विषय में ***जंगनामा***में श्रीधर ने बहुत कम जानकारी दी है। उन्होंने जो अपना परिचय दिया है वह निम्नवत् है–

*''श्रीधर मुरलीधर उरझ, द्विजवर बसत प्रयाग।*
*रूचिर कथा यह शाह की, बढ़यो कथन अनुराग।।''*[1]

इस दोहे से हमें केवल यही जानकारी मिलती है कि कवि का नाम श्रीधर या मुरलीधर था और वह प्रयाग में रहते थे। जन्म–मृत्यु का उल्लेख और कहीं भी नहीं मिलता। राधाकृष्ण दास ने अपने संपादकीय में इस बात का उल्लेख किया है कि ग्रियर्सन ने इनका समय सन् 1683 ई. माना है। परन्तु, 1712–13 ई. में जंगनामा लिखे जाने के कारण मिस्टर इर्विन ने इनके समय में 1712 या 13 तक कम–से–कम तीस साल का अन्तराल मानना उचित समझा है। जंगनामें के वर्ण्य विषय और भाषा देखकर इर्विन का मत ज्यादा सही प्रतीत होता है क्योंकि तब–तक कवि में पर्याप्त परिपक्वता आ गयी होगी जिसकी झलक जंगनामें के अध्ययन के दौरान हमें देखने को मिलती है। श्रीधर की जीविका का आधार काव्य रचना ही था।काव्य रचना कर उससे मिलने वाली आय से ही उनका भरण पोषण होता था। अतः शाह (फर्रूखसियर) के अलावा अन्य अमीर–उमरा की प्रशंसा में भी इन्होंने कविताएं रची हैं। ***जंगनामा***के अलावा कवि ने राग–रागिनियों पर आधारित ग्रंथ भी लिखे

हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से कवि का ***जंगनामा*** ही उसकी प्रसिद्ध रचना है। जंगनामें में वर्णित युद्ध जहांदार शाह और फर्रुखसियरके बीच लड़ा गया युद्ध है जिसका विधिवत वर्णन श्रीधर ने किया है। पूरी कृति केवल एक जंग पर ही आधारित है जैसाकि उसके शीर्षक से ही स्पष्ट हो जाता है। ग्रंथ की भाषा ब्रज है जो उस समय की महत्वपूर्ण साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी। कवि ने युद्धों के वर्णन में अपनी कवित्व प्रतिभा का सुन्दर प्रदर्शन किया है इसी लिए वीरकाव्यों में इसकी गिनती अच्छे काव्य ग्रंथ के रूप में होती है।

***जंगनामा*** की ऐतिहासिकता पर प्रकाश डालने से पूर्व ***जंगनामा*** की काव्य प्रवृत्ति की संक्षिप्त चर्चा आवश्यक है, इससे जंगनामा के वर्ण्य विषय और उसके साथ श्रीधर की ऐतिहासिक दृष्टि पर प्रकाश डालना अपेक्षाकृत आसान होगा क्योंकि कवि ने सिर्फ एक युद्ध का यहां पर वर्णन किया है जिसमें केवल उतने ही ऐतिहासिक साक्ष्यों की उपलब्धता पर विचार किया जा सकता है। जंगनामा एक प्रकार का युद्धकाव्य होता है जो इसके नाम से ही स्पष्ट हो जाता है। डॉ. भगवान दास तिवारी ने ***जंगनामा*** की वर्ण्य वस्तु पर प्रकाश डालते हुए कहा है –

''जंगनामा वर्ण्य–विषय की दृष्टि से आख्यानक युद्धकाव्य कहा जा सकता है। ऐसे ग्रंथों में प्रामाणिकता की रक्षा के लिये कवि इतिहास सम्मत व्यक्ति, तिथियां, घटनाओं और विशेषकर उसके होने वाले युद्ध का छंदबद्ध वर्णन करता है।.....जंगनामें में युद्ध के संश्लिष्ट चित्रों को बड़ी तन्मयता से काव्यबद्ध करता है। विशेषकर सेना के आक्रमण एवं पावस के आगमन के सांगरूपक काव्यकला की दृष्टि से अत्यंत सरस है। जंगनामा का मुख्य रस वीर है।''[2]

इसमें जंगनामें के वर्ण्य विषय पर बात करते हुए भगवान दास तिवारी ने श्रीधर की विशेषताओं को भी इंगित किया है। दरअसल जंगनामा में एक युद्ध ही मुख्य विषय होता है। अतः उसमें समय, घटना की क्रमबद्धता और इतिहास से सम्बंधित व्यक्ति होना आवश्यक होता है। श्रीधर की ही भांति **अणीराय ने भी *जंगनामा*** लिखा है जो श्रीधर के जंगनामें की ही तरह है। श्रीधर ने इतिहाससम्मत दो व्यक्तित्व जहांदारशाह और फर्रुखसियरको लिया है एवं उनके बीच 1712–13 ई. में हुए उत्तराधिकार युद्ध को अपने

काव्य का विषय बनाया है। अन्य पात्र भी ऐतिहासिक हैं। ग्रंथ के शुरूआत से ही युद्ध से जुड़ी हर घटना का जिक्र वह अपने युद्धकाव्य में विवरणसहित करते चलते हैं।

### 4.1.1 *जंगनामा* में वर्णित उत्तराधिकार की लड़ाई से पूर्व की राजनीतिक परिस्थितियां

17वीं सदी के उत्तरार्द्ध में मुगल साम्राज्य का भौगोलिक विस्तार लगभग भारत के सम्पूर्ण भौगोलिक क्षेत्र पर विस्तृत था जिसको एकीकृत करने का अधिकांश श्रेय औरंगजेब को जाता था। अपने 50 वर्ष के लम्बे शासनकाल में उसने मुगल साम्राज्य को अपने बलबूते पर अनेक विरोधी शक्तियों के बावजूद सुदृढता से उसे संभाले रखा था। 1707 ई0 में उसकी मृत्यु हो गयी और उत्तराधिकारियों के बीच सिंहासन के लिये पुनः युद्ध हुआ जिसमें उसका बेटा **मुअज्जम विजयी हुआ। वह मुगल साम्राज्य के सिंहासन पर बहादुर शाह के नाम से बैठा।** तृतीय अध्याय में हम देख चुके हैं कि औरंगजेब उत्तराधिकार युद्ध में अपनी शातिर चालों से अपने भाइयों को बरगलाकर युद्ध में विजय हासिल करने में सफल रहा था जिसका उल्लेख भूषण और लालकवि दोनों ने किया है। अपने विरोधियों को परास्त करने के लिए उसने धर्म और सत्ता दोनों का सहारा लिया। बहुत से इतिहासकारों ने यह स्वीकार किया है कि मजबूरी में ही सही दारा को समाप्त करने के लिए उसे धार्मिक कट्टरता का बाना धारण करना पड़ा जिससे वह आगे भी उसके प्रयोग के लिए मजबूर बना रहा। उसके परवर्ती शासनकाल में उसकी धार्मिक नीतियों में आया बदलाव काफी हद तक उसी के परिणामस्वरूप निर्धारित हुआ। औरंगजेब की विस्तारवादी नीतियों ने दक्कन को भी मुगल साम्राज्य के अधीन कर लिया था जो इससे पहले कोई भी मुगल शासक नहीं कर सका था।

लम्बे–चौड़े भौगोलिक क्षेत्र पर शांतिपूर्ण शासन औरंगजेब जैसे शासक के लिये असम्भव नही ंतो मुश्किल जरूर साबित हुआ। सेना के बल पर ही वह अपने समय तक राज्य में शांति स्थापित कर सका। हालांकि इसमें उसकी चतुराईपूर्ण रणनीतियों का भी बहुत बड़ा हाथ रहा।उसने दक्कन में किसी भी अन्य विरोधी दलों को एकजुट नहीं होने दिया जिससे कोई भी क्षेत्रीय शक्ति एकजुट होकर उसे चुनौती नहीं दे पायी। लेकिन 1707 ई. तक

आते–आते परिस्थितियां काफी बदल गयीं थीं। अपने अन्तिम समय में साम्राज्य में उसे कई तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ा जो राजनीतिक–आर्थिक छोरों पर उसे नुकसान पहुंचा रहीं थी। राजकोष खाली हो रहा था, साम्राज्य के विभिन्न हिस्सों में विद्रोह की घटनाएं बढ़ती ही जा रहीं थीं। अपने अथक प्रयत्नों से वह साम्राज्य को संभाले रहा किन्तु उसके उत्तराधिकारी उसकी तरह चतुर कूटनीतिज्ञ नहीं थे। अतः उसके मरते ही मुगल साम्राज्य तेजी से अपने पतन की ओर बढ़ चला।

मुगल साम्राज्य के क्षीण होते जाने की परिस्थितियों के बीच ही साम्राज्य को अपने भीतर भी कई समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था। छोटे–छोटे अन्तराल पर ही साम्राज्य में उत्तराधिकार के युद्ध होते रहे जिसमें उसकी अपनी ही सेनाएं आमने–सामने रहती थीं और सेना को नुकसान उठाना पड़ता था। यह समस्या इस्लामी राज्यों में अपने शुरूआती चरण से ही मौजूद रही। उत्तराधिकार की यह समस्या इस्लामी कानूनों में कोई निश्चित नियम न होने के कारण सभी इस्लामी राज्यों के लिए समस्या का कारण बनती रहती थी जिसके कारण साम्राज्यों को सदैव अस्थिरता को सामना करना पड़ता था। मुस्लिम समाज में शिया सुन्नी विवाद भी इसी समस्या से जुड़ा हुआ था। भारत में मुगलों की स्थापना के बाद लम्बे समय तक साम्राज्य को इस समस्या से दो चार होना पड़ा था। बादशाही को पाने के लिए मुगल शहजादों द्वारा कोशिशें कर शासनकाल में देखने को मिलती है। शाहजहां ने अपने समय में युद्ध कर सत्ता को हासिल करने के नियम को लागू कर दिया और उसके बाद तो मुगल साम्राज्य हर बार तख्त के उत्तराधिकारियों में युद्ध का साक्षी बनने लगा। उत्तराधिकार के युद्ध के समय ही साम्राज्य के सम्भावित सभी उत्तराधिकारियों को खत्म कर दिया जाता था ताकि भविष्य में विद्रोह की सम्भावनाओं को भी खत्म किया जा सके। औरंगजेब ने अपनी ताजपोशी के वक्त अपने सभी भाइयों को खत्म कर अपने लिए एक निष्कंटक साम्राज्य पाने की पाने की लालसा में ही सम्पूर्ण छल–बल का सहारा लेकर उनका दर्दनाक अंत किया था।

निष्कंटक साम्राज्य पाने की लालसा में **शाही परिवार के लोगों का कत्ल** अब एक सामान्य घटना हो गयी थी।इस नीति का पालन औंरंगजेब के पुत्रों ने भी किया और उनके उत्तराधिकारियों ने भी। इन घटनाओं ने साम्राज्य की सैनिक शक्ति को तो नुकसान पहुंचाया ही शाही परिवार में भी फूट के बीज डाले। साम्राज्य के सभी उत्तराधिकारी

गुटबंदी के शिकार थे और एक–दूसरे के प्रति सदैव सशंकित रहते थे। यहा तक इन गुटबंदियों में हरम की औरतें भी शामिल होती थीं और अपने–अपने सहयोगियों की स्थिति को प्रभावित करती थीं। शाहजहां की बेटियों का अलग–अलग भाइयों को अपना समर्थन देना इसका अच्छा उदाहरण है। इसके अलावा शाही राजकुमार दरबार के अनेक उमरावों और मनसबदारों की स्थिति को भी प्रभावित करते थे और अपने–अपने पक्ष में उन्हें रखने के लिए प्रयासरत रहते थे। इन सब परिस्थितियों में उन्हें खुद से मिला कर रखने के लिए प्रयासरत रहते थे। इन सब परिस्थितियों में अन्ततः साम्राज्य को ही नुकसान हुआ और धीरे–धीरे साम्राज्य की एकता और प्रशासनिक क्षमताओं का ह्रास हुआ और दरबार षड्यत्रों का केन्द्र बन गया। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् बहादुरशाह प्रथम उत्तराधिकार युद्ध में विजयी हुआ। किन्तु वह लम्बे समय तक शासन नहीं कर सका और 1712 ई0 में उसकी मृत्यु हो गयी। उससे पहले अपने संक्षिप्त शासन काल में औरंगजेब की कुछ अनुसार नीतियों को बदलने की कोशिश की लेकिन उसकी अतिशय उदारता ने कट्टरपंथियों के कान खड़े कर दिये। इसके अलावा राजपूतों और दक्षिण की समस्याओं से भी वह निपट नहीं पाया और उसी के समय में पंजाब में सिक्खों का विद्रोह फैल गया। इसके शासनकाल में ही **अमीर–उमरावों का दखल शासन में बढ़ने लगा** और वे काफी मजबूत हो गये। उनमें गुटबाजी का इस कदर माहौल व्याप्त हुआ कि उसके मृत्योपरान्त हुए **उत्तराधिकार युद्ध में अमीर गुटों में भी वर्चस्व की लड़ाई** लड़ी गयी। इस गुटबाजी में साम्राज्य के भावी उत्तराधिकारियों ने भी बढ़–चढ़ कर हिस्सा लिया जिससे शहंशाह की स्थिति में परिवर्तन आना स्वाभाविक हो गया।

हिन्दी की तत्कालीन कविता में उत्तराधिकार युद्ध की कई छवियां देखने को मिलती हैं। भारतीय राजनीति में हालांकि यह कोई नई बात नहीं थी किन्तु हिन्दी कवियों का मन पारिवारिक खून खराबे के प्रति के प्रति अधिक संवेदनशील था। औरंगजेब के उत्तराधिकार के युद्ध पर तत्कालीन कवियों जैसे भूषण एवं लालकवि ने भी इस पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है एवं अपने ही भाई बंधुओं को मारने के लिये उसकी तीव्र भर्त्सना की है।

### 4.1.2 उत्तराधिकार की लड़ाई और *जंगनामा*

सन् 1712 ई0 में मुगल सम्राट बहादुरशाह की मृत्यु के उपरांत हुए उत्तराधिकार युद्ध पर तत्कालीन कवि श्रीधर ने अपना प्रसिद्ध ***जंगनामा*** लिखा जिसकी केन्द्रीय विषय वस्तु उसके पुत्रों के बीच तख्त के लिये लड़े गये युद्ध पर आधारित है। इस जंग में फर्रुखसियर को मुगल ताज हासिल हुआ और वह 1713 ई0 में मुगल सिंहासन पर बैठा।

जंगनामें की शुरूआत में ही वर्ण्य विषय पर प्रकाश डालते हुए कवि कहता है –

*''फर्रुखसियर से साह की, बरनो प्रबल प्रबंध।*
*अरू करतूतें सबन की, जे अमीर समकंध।।'*[3]

अर्थात् कवि ने यहा स्पष्ट कर दिया है कि यह ग्रंथ लड़ाई के दो उत्तराधिकारियों के साथ–साथ अमीरों की भी करतूतों को जाहिर करने के लिए लिखा गया है। इस प्रकार उनका चरित्र भी इस युद्ध के माध्यम से प्रकट होगा। बहादुर शाह के मरने की खबर फर्रुखसियर को एक पत्र के माध्यम से मिली। बहादुर की मृत्यु की खबर सुनते ही दिल्ली का अगला बादशाह बनने के लिए जंग की तैयारियां शुरू हो गयी। अपनी फौज को तैयार रखने के लिये फर्रुखसियर ने आजम खां को बुलाकर जरूरी आदेश दिया और कुछ ही समय में उसने भी अपने अमीरों के साथ स्वयं को बादशाह घोषित किया। जुल्फिकार खां ने फौज में फूट डालकर कुछ सैनिकों को अपनी तरफ मिला लिया और दिल्ली की तरफ कूंच कर दिया था। उसके आने की खबर फर्रुखसियर को लगी तब उसने अपने अमीरों को बुलाया और उनसे मदद करने का आग्रह किया। अब्दुल्ला खां ने उसे मदद का आश्वासन देकर फौज लेकर वहां से दिल्ली की तरफ प्रस्थान किया।

इस जंग में फर्रुखसियर का प्रतिद्वंद्वी जहांदार शाह था। उस समय अब्दुल्ला खां इलाहाबाद का सूबेदार था उससे मदद पाने के लिए फर्रुखसियर जल्दी ही इलाहाबाद पहुंचा और वहां अपने अमीरों से मिलकर युद्ध की रणनीति पर विचार किया। इलाहाबाद में मीर जुमला ने मौजुद्दीन को अपनी तरफ मिलाने में सफलता प्राप्त की और अन्य सूबेदारों और मनसबदारों को भी फोड़ने में भी वह सफल रहा और इस तरह जल्दी ही एक बड़ी सेना तैयार हो गयी।

**जहांदारशाह उस समय तक दिल्ली के तख्त पर अपना अधिकार जमा चुका था।** जहांदारशाह बहादुर शाह का बड़ा पुत्र था जबकि फर्रुखसियर बहादुरशाह के तीसरे पुत्र अजीमुश्शान का बेटा था। 1712 ई0 में ही अजीमुश्शान की मृत्यु हो चुकी थी। अपने पिता के आधार पर ही फर्रुखसियर उत्तराधिकार की लड़ाई लड़ रहा था। इसी आधार पर दरबारी अमीरों को अपने पक्ष में करने की दलीलें दे रहा था। फर्रुखसियर पटना में ही अपने आप को सम्राट घोषित कर चुका था और जहांदार शाह से मुकाबले के लिए लोगों को अपनी तरफ मिलाने की हरसंभव कोशिश कर रहा था।

श्रीधर ने हालांकि इन घटनाओं का विशेष वर्णन नहीं किया। केवल फर्रूसियर के पटना से चलने के पश्चात् उसकी जंग की तैयारियों को ही बतलाया है। मीर जुमला के विषय में श्रीधर ने खासतौर से इस बात का उल्लेख किया है कि वह बादशाह जहांदार शाह के पक्ष में रहा किन्तु वह फर्रुखसियर को दरबार की सूचनाएं उपलब्ध करवाता रहा। उसकी इस कार्रवाई से अन्ततः नुकसान जहांदार शाह के पक्ष को हुआ क्योंकि उसके विरोधियों को दरबार की सारी सूचनाएं मिलती रहीं और वह उसके खिलाफ प्रभावी रणनीतियां बना सकने में सफल रहे। इसी बीच अब्दुल्ला खां ने इलाहाबाद में पूरी तरह से शांति स्थापित कर लिया था। मीर जुमला ने खबर भिजवाया कि **जहांदार शाह की तरफ से सैयद राजीखान को इलाहाबाद का सूबेदार नियुक्त किया गया है।** अब दोनों तरफ से टकराव होना निश्चित हो गया। अब्दुल्ला खां को इलाहाबाद से बाहर निकालने के लिए अब्दुल गफ्फार को भेजा गया। तब फर्रुखसियर के नाराज होने पर हुसैन अली खां (अब्दुल्ला खां का भाई) ने उसे सुझाव दिया कि उसको रोकने के लिए शत्रु को आदेश दे दीजिये। फर्रुखसियर को उसका सुझाव पसंद आया और उसने तुरन्त अब्दुल्ला खां को आदेश देकर वहां से रवाना किया। फर्रुखसियर का आदेश मिलते ही अब्दुल्ला खां ने प्रयाग से निकलकर सराय आलमचंद में जाकर शत्रु का रास्ता रोक लिया –

*''वह हुकम सिर धरि दे नगारो सुमिरिप्रभु को पाई।*
*डेरा सु आलमचंद करि अरि राह रोक्यो जाई।।''*[4]

इसके बाद वह स्वयं प्रयाग लौटकर आया। एवं उसने शत्रु सेना का सामना करने के लिए सैफुद्दीन अली खां, नज्मुद्दीन अली खां और सिराजुद्दीन अली खां के साथ अपने अन्य

सहयोगियों जैसे रतनचंद, मीर मुहसन खां, अनवर खां, समुंदर खां, इदगार बेग, बहराम बंग आदि लोगों को भेजा। अगले दिन सुबह दोनों सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ जिसमें सिराजुद्दीन अली खां मारा गया एवं अब्दुल गफ्फार घायल हुआ। थोड़ी ही देर में वह भाग खड़ा हुआ एवं फर्रुखसियर के पक्ष के लोगों की जीत हुयी। जंग में जीत की खबर मियां मंजूर ने अब्दुल्ला खां को खुद जाकर दिया। **सिराजुद्दीन अली खां की मृत्यु** का समाचार सुनकर अब्दुल्ला खां बहुत कुपित हुआ किन्तु उसने विजयी सेना का स्वयं सम्मान किया।

इस युद्ध का वर्णन श्रीधर ने किया है और ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि कवि स्वयं वहां मौजूद हो और एक–एक योद्धा को लड़ते हुए देख रहा हो, उदाहरण के लिए सिराजुद्दीन अली खां का लड़ते हुए वीरगति प्राप्त करने का दृश्य द्रष्टव्य है –

*''तेहि बीच झुकि पर ओर तें तरवारि झम–झम–झम परी।*
*झर लगी तीरन की महा मनु लगी सावन की झरी।*
*तब सिराजुद्दीन अली खां की देह घन घायन भरी।*
*भुव गिरत–गिरत मचाई राख्यो लोह वार करा करी ।।''*[6]

***जहांदारनामा*** लिखने वाले इतिहासकार इर्विन ने इस घटना को असत्य मानकर कोई युद्ध नहीं होना लिखा है। जबकि संपादकीय विवेचन में 'झड़ि रह्यो' शब्द का आशय 'मिला हुआ' बताकर ओमप्रकाश चारण ने युद्ध को ऐतिहासिक बतलाया है। श्रीधर जिस तरह से एक–एक व्यक्ति और सभी घटनाओं को जिस एकसूत्रता में कह रहे हैं उससे भी यही साबित होता है कि इर्विन ने एक शब्द का गलत अर्थ लगाने की वजह से इसे अनैतिहासिक मान लिया है जो उचित नहीं है।

सिराजुद्दीन अली खां की मृत्यु से अब्दुल्ला खां बहुत कुपित हो गया और उसने उसकी मृत्यु का बदला लेने की ठान ली। अब वह पूरे मन से फर्रुखसियर के प्रति स्वामिभक्ति दिखलाने लिए कटिबद्ध हो गया। तब *शाहि फर्रुखसियर को बंदा बनैत कहाइ हौ*का प्रण लेकर सेना को प्रसन्न करने के लिए उसने सेना को उपहारों से लाद दिया। अगले ही दिन साहिबराय माथुर से पत्र लिखवाकर फर्रुखसियर और अपने भाई हुसैन अली खां को सेना सहित इलाहाबाद पहुंचने का संदेश भिजवाया क्योंकि हारने के बावजूद ऐजुद्दीन

सेना के साथ इलाहाबाद के निकट ही कोरड़ा फतेहपुर में स्थित में रूका हुआ था जो कभी भी इलाहाबाद में आ सकता था। साहिबराय ने तुरंत संदेश लिखा और मौके की नजाकत को समझा कर सारी स्थिति बयां कर दी। चिट्ठी के अनुसार सारे लोग बैरी लोगों से मिल गये थे और समस्या बढ़ गयी थी। अतः उनका आना अति आवश्यक था। जब हुसैन अली खां तक यह संदेश पहुंचा तो वह तुरंत फर्रुखसियर से मिला और स्थिति के बारे में बताया। उसने कहा किवह छोटे भाई सिराजुद्दीन अली खां की मृत्यु को बर्दाश्त नहीं कर पा रहा था। अतः ऐजुद्दीन खां को रोकने के लिए वह युद्ध करने जायेगा तब फर्रुखसियर ने उसे शांत करते हुए दो दिन तक उसे रूकने के लिये कहा। दूसरे दिन सुबह ही मुर्तजा खां को इलाहाबाद की ओर चलने के लिये कहा गया और उसके पीछे फर्रुखसियर की सेना चली। मुर्तजा खां पटना से बनारस के बहादुरपुर में आकर रूका। उसके बाद फर्रुखसियर की सेना में जहांदार शाह के लोग भी आकर मिल गये। इनकी एक लम्बी सूची श्रीधर ने गिनायी है। **इन सभी को फर्रुखसियर ने मनसब और उपहार बांटे और इस तरह से वह जहांदार शाह के खिलाफ एक बड़ी सेना इकट्ठा करने में सफल रहा।** अशरफ खां और जैनुद्दीन खां जैसे लोगों को जो जहांदार शाह की तरफ से आकर फर्रुखसियर से मिले थे उन्हें कृपा प्रदान करते हुए 'खानदौरा' और 'बहादुर खां' की उपाधियां दी गयीं जो फर्रुखसियर की दूरदृष्टि का परिचायक थीं क्योंकि उस समय ऐसे लोगों की बहुत जरूरत थी जो लड़ाई के मैदान में काम आ सकें क्योंकि इन लोगों के साथ इनकी सेनाएं भी रहती थीं। इब्राहिम हुसैन को भागलपुर की तरफ भेज दिया गया एवं अन्य अमीरों के साथ सेना ने आगे कूच किया। अब तक फर्रुखसियर की सेना में मुगल दरबार के सभी अमीर उसकी तरफ आकर मिल गये थे जिनके साथ उनकी सेनाएं भी थीं। युद्ध की स्थिति और मुगल सेना की युद्धपंक्ति पर इस छोटे से जंगनामें में अच्छा प्रकाश डाला गया है। सभी अमीरों ने अपनी–अपनी सेनाओं का स्वयं नेतृत्व किया एवं हरावल दस्ता (युद्ध में सबसे आगे चलने वाला दस्ता) उसके पश्चात धनुष–बाण का दस्ता, गोला–बारूद का दस्ता, तलवार वाला दस्ता आदि क्रमबद्ध होकर आगे बढ़े। इसके बाद मुगलों का सबसे महत्वपूर्ण तोपखाना भी चला जिसका नेतृत्व फतह अली खां कर रहा था।

इस तरह से अनेक अमीरों के सुसज्जित होकर इसके अग्रिम दस्ते ने[1] पांच कोस दूर अपना पड़ाव डाला। अगले दिन फर्रुखसियर भी वहां पहुंच गया। यहा पर कवि ने फर्रुखसियर की सफलता के लिये सगुन के तौर पर अनेक शुभचिन्ह होते देखे और युद्ध में उसके सफलता के लिये कामना की। यह सारा दल **खजूरा नामक स्थान** पर पहुंचा, यहा पर उससे आजम खां मिला और सहायता देने के लिये प्रस्तुत हुआ। फर्रुखसियर ने उसे 'कुतुबुलमुल्क' की उपाधि दी और उसके मनसब में भी वृद्धि की। पुल से गंगा को पार कर प्रयाग के पश्चिम में कड़ा में फर्रुखसियर की सेना ने प्रवेश किया जहां पर उसके अन्य अमीर भी आकर मिल गये। फर्रुखसियर अब बहुत मजबूत स्थिति में आ गया था और उधर ऐजुद्दीन की सेना भी तैयारियां कर रहीं थीं दोनों सेनाएं खजुआं में आकर मिली। युद्ध से पहले खाइयां खोदी गयीं और उनकी ओट में तोपें तैनात कर दी गयीं। कवि के अनुसार दोनों सेनाओं के बीच तीस कोस की दूरी विद्यमान थी।

फर्रुखसियर ने शहजादे को सेनापति घोषित कर युद्ध का सम्पूर्ण भार सैयद बंधुओं के हाथ सौंप दिया –

*''अब्दुल्लहखां बंक रन, हुसैनअलीखां माल।*
*रनथंभन आगे भये, कुतुबकुंडरीवाल।।''*[6]

इसके बाद श्रीधर ने युद्ध होने का विवरण दिया है और विभिन्न अमीरों के द्वारा युद्ध में वीरता प्रदर्शित करने का उल्लेख किया है। छंद 119वें से लेकर छंद संख्या 172वें छंद तक भयंकर युद्ध होने का वर्णन मिलता है। तत्पश्चात कवि ने ऐजुद्दीन के युद्ध क्षेत्र छोड़कर भाग जाने का वर्णन किया है –

''एहि विधि दल सब भागियो, ऐजुद्दीन को जान।''[7]

किन्तु इतिहासकार इर्विन इस युद्ध का होना नहीं मानते। उनके अनुसार –

''वस्तुतः युद्ध हुआ ही नहीं था। 28–29 नवंबर के मध्यरात्रि को ही ऐजुद्दीन को उसके सरदार लेकर भाग गये तदनंतर सैयद मुजफर खां अब्दुल्ला खां का मामा, सैयद हसन खां

[1]अरसल खां के नेतृत्व में अग्रिम पंक्ति चल रही थी। श्रीधर ने इसका उल्लेख इस प्रकार किया है – अरसल खां को हुकुम किय, पेशखानौं ले पयानहुं।

सैयद हुसैन खां का पुत्र मुस्तफा हुसैन, लुत्फुल्ला खां आदि अमीर फर्रुखसियर से जा मिले थे।''[8]

ऐजुद्दीन के भाग जाने उसके अमीरों को फर्रुखसियर से मिलने का जिक्र इतिहासकार सतीश चंद्र ने भी ***उत्तर मुगलकालीन भारत*** नामक अपनी पुस्तक में किया है लेकिन वह युद्ध का न होना इंगित नहीं करते। इस सन्दर्भ में उनका कथन है –

''फर्रुखसियर को अज्जुद्दीन के विरूद्ध जिसे जहांदार शाह ने भेजा था, पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। अज्जुद्दीन युद्ध से भाग निकला और शाही सेना का पूरा सामान फर्रुखसियर के हाथ आ गया। अनेक अमीर भी उससे आ मिले (28 नवंबर 1712)।''[9]

श्रीधर के अनुसार फर्रुखसियर को बधाईयां मिलीं और शत्रु सेना में खूब लूटपाट की गयी। श्रीधर ने यह सारा विवरण बिल्कुल सही–सही दिया है और उनके दिये हुए नाम फर्रुखसियर से मिलने अमीरों के भी बिल्कुल सही–सही मिलते हैं जो इतिहासानुमोदित भी हैं। अतः उनके द्वारा हुआ युद्ध का विवरण सत्य के करीब हैं।

अभी तक फर्रुखसियर को लेकर जहांदारशाह निश्चिंत था और दिल्ली से शासन सम्भाल रहा था किन्तु इस युद्ध के पश्चात् फर्रुखसियर को दबाना आवश्यक हो गया था। अतः श्रीधर ने दिल्ली की कार्रवाईयों का जिक्र मीर जुमला के पत्र द्वारा किया है जो अभी तक दिल्ली दरबार में ही बना हुआ था। उसका पत्र जल्दी ही फर्रुखसियर तक पहुंचाया गया। पत्र के द्वारा उसे पता चला कि जहांदारशाह सुरा और सुन्दरी में मस्त है। दरबार की विलासप्रियता पर कवि ने अच्छा प्रकाश डाला है और बादशाह द्वारा सारा शासन कार्य अमीरों पर छोड़ देने का भी जिक्र किया है–

*''दारू सुदारू भरत गोली अमल गोली रंग की,*
*मिरदंग ढोलक तोप और सुरनाइ रीत तुफंग की।*
*प्याला पलीता सु भरि के तंह जीति मौजे भंग की,*
*दिन रात यह चरचा रहै ततबीर और न जंग की।*
*कहुं सभा मस्त कलाबती कहुं पातुरन की गांह की।।''*[10]

उस समय कोकिलताश खां और जुल्फिकार खां शासन को सम्भाल रहे थे जो एक–दूसरे से बैर भी रखते थे (199 छंद)। अतः अन्य अमीर जहांदार शाह से परेशान थे और दरबार में अशांति छायी हुई थी। अमीरों की इस प्रवृत्ति को भांपकर मीर जुमला ने सभी अमीरों को अगले होने वाले युद्ध में तटस्थ होने का वचन ले लिया। इस तरह वे अमीर भी जहांदार शाह के विरूद्ध हो गये और उसे सहायता देने से मना कर दिया। नवरोज के त्यौहार के बीच ही जहांदार शाह को ऐजुद्दीन के भागने की खबर मिली और वह स्वयं युद्ध के लिये तत्पर हुआ। उसने तुरंत ऐजुद्दीन को वहीं रूककर रहने और स्वयं के पहुंचने का आदेश देकर वह आगरा की तरफ चला। कवि ने उसके चलते समय अशगुन होने का उल्लेख किया है जो कवि के अनुसार उसकी हार का सूचक था। हिन्दी कवियों ने सगुन–असगुन का प्रयोग कविता में परम्परानुसार रूढ़ मिथकों द्वारा किया है जिसका पालन श्रीधर ने भी किया है।

**जहांदारशाह के आगरा पहुंचने पर ऐजुद्दीन जाकर उससे मिला।** जहांदारशाह ने उन अमीरों की भर्त्सना की जो जाकर फर्रुखसियर से मिल गये थे। सैनिकों की गिनती में 5 लाख सवार, दो लाख तोपें और कई हजार हाथी थे। पत्र के द्वारा ही फर्रुखसियर तक यह सूचनाएं पहुंची और वह भी युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गया। सतीश चन्द्र के अनुसार भी जहांदार शाह 10 लाख सेना लेकर फर्रुखसियर को रोकने के लिए आगरा आया था।

फर्रुखसियर भी इलाहाबाद से सेना लेकर आगरा की तरफ बढ़ा। मुहम्मद खां अपने 20000 सवारों के साथ आकर उससे मिल गया। आगरा पहुंचकर पड़ाव डाल दिया गया और युद्ध की तैयारियां शुरू हो गयी। दोनों तरफ से गोलों की बरसात होने लगी और भयंकर युद्ध हुआ।

इसी बीच फर्रुखसियर को एक विश्वस्त सैनिक से पता चला कि एक जगह पर यमुना में पानी कम है अतः उसे पार पूरी शक्ति से शत्रु पर आक्रमण करना चाहिए। यह सुनकर फर्रुखसियर बहुत खुश हुआ और अपने शत्रु को धोखे में रखकर आक्रमण की तैयारी की। अफवाह फैल गयी कि सेना यमुना के तट पर ही है जबकि सेना का बड़ा हिस्सा तब यमुना पार कर चुकी थी और छोटा हिस्सा ही वहां रूका हुआ था। यह सारा कार्य रातोंरात कर लिया गया ताकि शत्रु सेना को पता नहीं लग सके। फर्रुखसियर की यह योजना सफल रही और वह तेजी से शत्रुओं की तरफ बढ़ने लगे। जहांदार शाह की सेना

को जैसे ही पता चला उनमें खलबली मच गयी। फर्रुखसियर की सेना और जहांदार शाह की सेना में केवल 4 मील की दूरी बची थी और वह आगरा के पास सिकंदरा तक पहुंच चुका था। जहांदार शाहवैसे ही बेमन से लड़ने आयी थी शत्रुओं के अचानक पास आ जाने से उन्हें और दहशत हो गयी। जहांदार शाह ने उत्साह में कुछ बातें कहीं और उन्हें ढांढस बंधाने की कोशिशें की –

*''यह खबर सुनते मौजदी मन में महारिस सौं भरौं,*
*बकि उठ्यो यारहु देखना अब दौर जीवत ही धरौ।*
*बाचे न कोउ भागेहू गहि एक–एकहि संथरो*
*इन्ह कियो ढांढस के ढिठाई सों सजाए इन्हें करौं।''*[11]

किन्तु अब जल्द ही युद्ध का निर्णय हो जाने वाला था और जहांदार शाह के लिए उसकी सेना भी पूरी तरह से वफादार नहीं थी। मीर जुमला के नेतृत्व में बहुत से अमीर युद्ध में तटस्थ रहने वाले थे जिसका निर्णय पहले ही हो चुका था।

### 4.1.3 आगरा का युद्ध और उसके परिणाम –

उत्तराधिकार की लड़ाई में आगरा का युद्ध निर्णायक साबित हुआ और अन्ततः युद्ध की शुरूआत हो गयी। दोनों तरफ की सेनाएं साजो–सामान के साथ तैयार थी। युद्ध संवत् 1769 1712 में पूष माह के पूर्णिया को और मुहर्रम 14, 1133 हिजरी इलाही के आजर माह की 2 तारीख को लड़ा गया। हिजरी और इलाही की तारीखें जो श्रीधर ने दी है वह एक दूसरे से मेल नहीं खाती। सम्भवतः दोनों के बारे में वह निश्चित नहीं ये अतः इस तरह की गलती मिलती है।[2]इस युद्ध के दौरान ही खूब पानी बरस रहा था जिससे सेना को युद्ध बंद करना पड़ा। वर्षा समाप्त होने पर युद्ध पुनः शुरू हो गया। सैयद बंधुओं ने युद्ध का सारा दारोमदार स्वयं पर ले लिया था और फर्रुखसियर से आज्ञा मिलते ही इनके सैनिक जहांदारशाह की सेना पर टूट पड़ते थे। सेना में विभिन्न मुसलमान जातियों के लोग अपनी

[2]इलाही सन् का आरंभ अकबर ने कराया था।

वीरता और युद्ध कौशल को प्रदर्शित कर रहे थे। इसके पश्चात् श्रीधर ने दोनों तरफ से लड़े योद्धाओं की सूची दी है। दूसरी सूची उन अमीरों की है जो जहांदार शाह की ओर से लड़े थे।

फर्रुखसियर की तरफ से लड़ने वाले अमीरों में सैयद बंधुओं के अलावा मुहम्मद खां बंगश, रतनचंद, असद अली खां, मीर अशरफ, छबीलाराम, मुहसन खां, शाइस्ता खां आदि अनेक अमीर थे जो उससे पहले ही आकर मिल गये थे और युद्ध में उसकी तरफ से भाग ले रहे थे। सभी अमीरों और राजाओं की प्रशंसा में श्रीधर ने छंद रचना की है एवं उन्हें वीररस की मूर्ति की तरह स्थापित किया है। इन छंदों में ऐतिहासिकता के साथ–साथ कवि ने अपनी काव्यकला का भी अच्छा प्रदर्शन किया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

*"जब अरि पर चढ़त सज्जि सब दल बल भट ठट्टनि ठटिं खग्ग गहै,*
*को भूप वीर दूजो ऐसो काहें को तुम सो रन मंडि रहै।*
*सुनि बज्जत हवनि दुवन भज्जत पुर पुर को प्रबल प्रतान वहै।*
*मुमताज खां बलवान वीर ऐसी विधि श्रीधर सुकवि कहै।।'*[12]

जहांदार शाह की तरफ से लड़ने वाले अमीरों में कोकलताश खां आया था। इसका जिक्र लालकवि भी अपने ***'छत्रप्रकाश'*** में कर चुके हैं। यह बहादुर शाह के समय में ही मुगल दरबार मे प्रमुख अमीर बन गया था। गाजीउद्दीन खां चिन कुलीच खां, जकरिया खां, अब्दुसमद खां, रहमरहमा खां आदि थे। दिखाने के लिये मीर जुमला भी इनके साथ ही था किन्तु उसने तटस्थता की नीति अपनाये रखी। इस युद्ध का लम्बा विवरण श्रीधर ने दिया तथा अमीरों की वीरता का बखान किया है। घोड़ों, हाथियों एवं तलवारबाजों की विभिन्न कलाओं का भी वर्णन मिलता है जो युद्ध में बड़े उत्साह के साथ शत्रु सेना पर आक्रमण कर रहे थे। फर्रुखसियर की सेना जहांदार शाह की सेना से यद्यपि कम थी लेकिन वह युद्ध में बहुत वीरता से लड़ रही थी। जुल्फिकार खां आक्रमण के दौरान मीर अशरफ मारा गया हालांकि उसकी मदद के लिए हुसैन अली, अली असगर खां जैसे अमीर तुरंत पहुचे थे लेकिन वह उसे नहीं बचा सके। सैयद बंधु में से एक सैयद हुसैन अली खां और जुल्फिकार खां भी एक–दूसरे से जूझ रहे थे। दोनों के बीच भयानक युद्ध हुआ और दोनों तरफ के अमीर अपने–अपने सेनानायक की तरफ से विरोधियों से लड़ रहे थे। अन्ततः लम्बी मार–काट के पश्चात् युद्ध का अंतिम निर्णय फर्रुखसियर के पक्ष में रहा।

फर्रुखसियर जहांदारशाह को युद्ध में पराजित कर दिल्ली के तख्त का नया मुगल बादशाह बना। तत्पश्चात् ***जंगनामा*** समाप्त हो जाता है। सम्भवतः कवि का उददेश्य भी यहीं तक था और फर्रुखसियर के बादशाह बन जाने पर ***जंगनामा*** खत्म हो जाता है। इस छोटे से युद्ध काव्य में कवि ने मुगल दरबार के अमीरों की करतूतों पर भी अच्छा प्रकाश डाला है जो इस बात का संकेत करती हैं कि कवि दरबार की गुटबाजियों पर भी नजर रखे हुए था और उन सब परिस्थितियों का तर्कपूर्ण वर्णन करता है जो जहांदार शाह को पराजित करने और फर्रुखसियर की जीत में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही थीं।

### 4.1.4 *जंगनामा* में वर्णित अमीर वर्ग का उभार और दरबार में गुटबाजी का नया दौर–

श्रीधर कवि ने युद्ध के समय होने वाले छल–प्रपंचों को भी अपने युद्धकाव्य जगह दिया है। जैसे मीर जुमला का प्रसंग उदाहरणस्वरूप है। बहादुरशाह की मृत्यु के पश्चात् जहांदारशाह ने स्वयं को सम्राट घोषित कर अपने विश्वस्त दो अमीरों को शासन का भार सौंपकर स्वयं सुरा और सुन्दरी में डूब गया। सम्भवतः दरबार के अन्य अमीर इस निर्णय से असंतुष्ट थे जिसमें से मीर जुमला नामक अमीर भी था। अमीर जुमला ने षड्यंत्र के तहत फर्रुखसियर से नजदीकियां बढ़ानी शुरू कर दी। हालांकि वह दिल्ली दरबार में ही रहा लेकिन वहां की खबरें फर्रुखसियरतक पहुंचवाता रहा। इसका बिल्कुल सटीक वर्णन श्रीधर ने किया है। इस विषय में श्रीधर उसके द्वारा युद्ध में तटस्थ रहने औरबाकी कुछ अमीरों को भी अपने पक्ष में करने में वह सफल रहा। और भी, दरबार में ही जिन दो विश्वस्त अमीरों को जहांदारशाह ने शासन सम्भालने के लिए नियुक्त किया हुआ था वे भी एक–दूसरे के विरोधी थे। श्रीधर की इन घटनाओं की पुष्टि सतीशचन्द्र के इस कथन से भी हो जाती है जब वह जहांदार शाह के हार का मूल्यांकन करते हैं –

''यद्यपि जहांदारशाह की सेना में 70, 80 हजार तथा असीमित पैदल थे और फर्रुखसियर के पास इससे एक तिहाई फौज भी नहीं थी, फिर भी जहांदारशाह परास्त हो गया (जनवरी 10, 1713)। इसके मुख्य कारण हैं जुल्फिकार खां एवं कोकलताश खां का एक–दूसरे के साथ असहयोग तथा चीनकुलीच खां व अमीन खां का युद्ध में तटस्थ रहना। जहांदारशाह

भी लड़ाई का निर्णय होने से पूर्व मैदान छोड़कर भाग गया। उधर सैयद बंधुओं ने भी बड़ी बहादुरी तथा रण–कौशल दिखलाया।''[13]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि श्रीधर द्वारा दी गयी सूचनाएं बिल्कुल सच हैं। कवि सम्पूर्ण घटनाओं को एक–दूसरे से सम्बद्ध कर ही उसे प्रस्तुत किया है। श्रीधर को उस समय घट रही सारी घटनाओं की जानकारी थी और दरबार के षड्यंत्रों के प्रति वह जागरूक थे। दरबारी षड्यंत्रों के कारण ही जहांदारशाह वास्तविक उत्तराधिकारी होते हुए भी फर्रुखसियर से हार गया। उसके अमीरों की गुटबंदियों ने ही उसे कमजोर बनाया और नेतृत्व के अभाव में यह युद्ध फर्रुखसियर के पक्ष में रहा। फर्रुखसियर जब पटना से चला था तब उसके पास कोई बहुत बड़ी सेना नहीं थी लेकिन सैयद बंधुओं के प्रभाव से अन्य अमीर उनसे आकर मिलते गये जिससे वह एक बड़ी सेना बना सके। दूसरे इनके अमीर फर्रुखसियर के प्रति वफादार थे और अंत तक उसके साथ बने रहे। जहांदारशाह की इस परिणति से यह बात सामने आ गयी थी कि अमीर वर्ग अब मुगल दरबार में बादशाह से भी ज्यादा प्रभावशाली होने लगे थे और गद्दी की लड़ाई में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने लगे थे।

**अमीर वर्ग का इतना प्रभावशाली होना मुगल सम्राट के लिये खतरे की घंटी** था। औरंगजेब तक अमीर वर्ग द्वारा सम्राट के आदेशों को हर हालत में मानना होता था और वह बादशाह की कृपा पर ही अपना वजूद रख सकते थे किन्तु औरंगजेब के पश्चात होने वाले उत्तराधिकार युद्धों ने सम्राट की स्थिति पर प्रभाव डाला क्योंकि युद्ध में उन्हें अमीरों का सहयोग चाहिए था। यहा तक तो ठीक था। अमीर लोग अपने पसंद के बादशाह को तख्त पर बैठने में उसकी मदद कर सकते थे किन्तु औरंगजेब के बाद की स्थितियां बदल गयीं। अयोग्य उत्तराधिकारियों की मदद के पश्चात अमीर वर्ग अपने लिए महत्तवपूर्ण पद भी चाहने लगे। इसमें से सबसे प्रभावशाली पद माना जाता था। अकबर ने इस पद के महत्व को समझ कर ही **वजीर की शक्ति को नियंत्रित करने** का प्रयास किया। किन्तु बहादुर शाह के समय में यह पद पुनः प्रतिष्ठित हो गया और बादशाह कुछ कर भी नहीं पाया। जहांदार शाह तो केवल 10 महीने तक ही शासन कर पाया था अतः वह भी पूरी तरह से अपने अमीरों के ही हाथ की कठपुतली बना रहा।

अमीर वर्ग की बढ़ती हुयी शक्ति और बादशाहों की अयोग्यता ने उत्तराधिकार युद्धों को अमीरों के वर्चस्व का युद्ध बना दिया जिससे अमीरों के खिलाफ नहीं जा सकता था।

जहांदारशाह और फर्रुखसियर को बादशाह अमीरों ने अपना गुट बनाकर फर्रुखसियर को बादशाह बनने में उसका साथ दिया। पूरे जंगनामें में सैयद बंधुओं का श्रीधर ने खूब उल्लेख किया है। दरअसल सैयद बंधु जहांदारशाह से नाराज चल रहे थे इसी कारण उन्होंने फर्रुखसियर का साथ देना उचित समझा। वैसे तो **श्रीधर ने सैयद बंधुओं की स्वामिभक्ति पर ही विशेष जोर दिया है** जो सम्भवतः उत्तराधिकार युद्ध तक सच–मुच में स्वामिभक्त ही बने रहे थे। हालांकि इसके बाद उनकी और फर्रुखसियर अपने शासनकाल में नाममात्र का ही शासक रहा। उसका अंत भी सैयद बंधुओं के कारण ही हुआ और उन्होंने ही उसे मौत के घाट उतार दिया। अब यहा तक की परिस्थितियां अमीर वर्ग में नए वर्चस्व के उदय का द्योतक बनती दिखायी देती हैं। श्रीधर के जंगनामें में इसे हम भली–भांति लक्षित कर सकते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उत्तराधिकार युद्धों ने मुगल साम्राज्य को कमजोर करने में प्रमुख घटक साबित हो रहा था जिससे उमरा वर्ग का दरबार में वर्चस्व बढ़ता जा रहा था और अमीर अब आपस में ही सत्ता पाने के खेल में शामिल हो गये थे। मुगल सम्राट की स्थिति उत्तरोत्तर कमजोर होती जा रही थी और वह अमीर वर्ग पर निर्भर होता चला गया। सहयोग पाने के लिए शहजादे पहले से ही अमीरों को अपने पक्ष में करने की हरसंभव कोशिश करते थे। इसके लिए वे अमीरों को मनमाना मनसब एवं अन्य महत्वपूर्ण पद बतौर लालच उन्हें दिया करते थे जैसाकि श्रीधर ने भी उल्लेख किया है। जहांदारशाह के पक्ष के अमीर अशरफ खां और जैनुद्दीन खां के फर्रुखसियर से मिलने पर फर्रुखसियर ने उन्हें मनसब एवं उपाधियों से नवाजा –

*''अलीअसगर खानजु, मिल्यौ आनि हथ ग्राम।*
*चौ हजारि मनसब लह्यौ, खानजमां खां नाम।।''*[14]

**मनमाने ढंग से मनसबों के वितरण** ने अमीर वर्ग की इच्छाओं की तुष्टि की और उन्हें जहां अधिक फायदा मिला उसकी तरफ दल–बदल कर लिया। ऐसे में विश्वसनीयता पर भी प्रभाव पड़ा। अमीर वर्ग अपना हित देखते ही अपनी स्वामिभक्ति और वफादारी बदल लेता था। सतीशचन्द्र ने तो मुगलों के पतन में अमीर वर्ग और जागीरदारी संकट का ही अधिक हाथ होना स्वीकार किया है।

श्रीधर में हम उभरते शक्तिशाली अमीर वर्ग एवं उनकी बदलती निष्ठाको आसानी से देख सकते हैं। फर्रुखसियर के उत्तराधिकारी मुहम्मदशाह रंगीला के शासन काल के उर्दू कवियों ने भी अमीरों की इन स्थितियों पर अच्छा प्रकाश डाला है। **मीर (1722–1810 ई0) उस समय के उर्दू साहित्य के महत्वपूर्ण कवि हैं।** उन्होंने अमीरों द्वारा मुगल साम्राज्य को नुकसान पहुंचाने वाले उनके कृत्यों पर दुख प्रकट करते हुए एक शेर में कहा है –

*''हैं, जिन्हें कुछ खय्यते दरबार*
*से फरीबंदा ओ मकरी ओ गद्दार।*
*या*
*न मिल मीर अबके अमीरों से तू,*
*हुए हैं फकीर उनकी दौलत से हम।''*[15]

इस शेर में अमीर वर्ग का चरित्र उस समय कैसा था, यह साफ जाहिर हो जाता है। मीर के अलावा सौदा ने भी तत्कालीन राजनीतिक परिदृश्य पर महत्वपूर्ण शेर कहे हैं जो पतनशील मुगल साम्राज्य का चित्र हमारे सामने रखते हैं।

इसके अलावा श्रीधर ने अमीरों की लम्बी–लम्बी सूचियां दिखलायी हैं। इन सूचियों में अधिकांश अमीरों के तत्कालीन इतिहास में सन्दर्भ मिलते हैं परन्तु कुछ ऐसे भी नाम हैं जो तत्कालीन इतिहास में उल्लिखित नहीं है अतः उनकी प्रामाणिकता पर संदेह है। ऐसे कुछ नामों में अकबर अली खां, अब्दुल रसूल, अहमद खां सरबानी, इख्त्यार खां, इदगार बेग, इब्राहिम हुसैन, इलायची बेग, कीक खां, ख्वाजा अब्दुल्लाह खां जैसे अनेक नाम हैं जो अनिश्चित हैं। जंगनामा के संपादक ने ग्रंथ के अंत में इनकी एक सूची दे दी है जिनका उल्लेख किसी अन्य ग्रंथों में उल्लेख नहीं मिलता है लेकिन श्रीधर ने इनका नाम लिया है। सम्भवतः ये लोग स्थानीय या फिर अमीरों से जुड़े हुए लोग हो सकते हैं जिन्होंने उस युद्ध में भाग लिया था। कुछ खबरनवीसों या दूतों का ऐसे ही उल्लेख हुआ है।

श्रीधर ने युद्धों के स्थान या घटनाओं का विवरण शुद्ध रूप से दिया है। हालांकि ऐजुद्दीन वाले युद्ध के सन्दर्भ में इर्विन का कथन है कि वास्तव में युद्ध हुआ ही नहीं था। इनके अलावा युद्ध की तारीख जो हिजरी सम्वत् और इलाही सन् में श्रीधर ने दिया है वह भी अशुद्ध है। तिथि सम्बंधी अशुद्धियों के अलावा श्रीधर ने घटनाओं का शुद्ध वर्णन किया है।

अमीरों के नाम एवं उनके क्रिया–कलापों में भी कवि ने ऐतिहासिकता का पालन किया है। ***जंगनामा*** के अनुसार फर्रुखसियर का चरित्र हालांकि वैसा उभर कर नहीं आ पाया है जैसा कि वह वास्तव में था लेकिन कवि ने बादशाह की गरिमा का पूर्ण ख्याल रखते हुए ही उसे चित्रित किया है। वस्तुतः वह युद्ध फर्रुखसियर के प्रयत्नों से कम सैयद बंधुओं की वजह से जीता गया था जिसका आभास श्रीधर हमें दे देते हैं क्योंकि उन्होंने भी इस बात का उल्लेख किया है कि युद्ध से पहले शहजादे को सेनापति घोषित किया गया था। किन्तु इर्विन ने बात का जिक्र किया है कि उस समय तक फर्रुखसियर का जयेष्ठ पुत्र महज एक साल का था अतः यह महज नाम–मात्र की घोषणा थी। शहजादे के पश्चात् हुसैन अली खां और अब्दुल्ला खां ही सेना का नेतृत्व कर रहे थे।

जहांदारशाह के पतन के साथ ही मुगल साम्राज्य में एक नए दौर का उदय हुआ। **फर्रुखसियर बादशाह तो बना किन्तु वास्तविक शासन सूत्र सैयद बंधुओं के हाथ में था।** सैयद बंधुओं के विरोधी अमीर और सैयद बंधुओं के बीच गुटबंदी और तेज हो गयी। ऐसे में मुगल साम्राज्य राजपूतों, मराठों, जाटों, सिक्खों एवं बुन्देलों का तो सामना कर ही रहा था साथ ही दरबार की गुटबाजी का भी शिकार हो गया। अमीरों ने दरबार में अपनी–अपनी स्थिति मजबूत करने के लिये इन विद्रोही शक्तियों का भी इस्तेमाल करना शुरू कर दिया जैसाकि स्वयं सैयद बंधुओं ने मराठों की मदद अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए लिया। अतः क्षेत्रीय शक्तियां भी मुगल दरबार को प्रभावित करने लगीं जिससे दरबार में छल–फरेब एवं षड्यंत्रों का बोलबाला हो गया। श्रीधर का ***जंगनामा*** मुगल कालीन पतनोन्मुख प्रवृत्तियों की जांच–पड़ताल के लिए एक महत्वपूर्ण तत्कालीन ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध करवाता है जिसमें कवि श्रीधर ने परिस्थितियों एवं घटनाओं का सजगता से वर्णन किया है। एक कवि होने के नाते वीर रस का ओजपूर्ण वर्णन तो किया ही है लेकिन एक उत्तरकालीन मुगल युद्ध शैली पर भी अच्छा प्रकाश डाला है। हालांकि उत्तराधिकार की समस्या पर कवि का अपना कोई मत नहीं है लेकिन फर्रुखसियर के प्रति कवि ने अपना स्पष्ट झुकाव प्रदर्शित किया है। इस जंगनामें का काव्यनायक फर्रुखसियर ही है। एक विरोधी खलनायक के रूप में जहांदार शाह का वर्णन हुआ है। श्रीधर ने ***जहांगीर–जस–चन्द्रिका*** के कवि केशवदास की तरह ही एक मुगल सम्राट को अपना काव्यनायक बनाया है जो अन्य रीतिकालीन हिन्दी कवियों की परिपाटी से अलग

हटकर है। यह तथ्य उस युग का एक अन्य विचित्र पहलु है कि उस युग के कवि मुगलकालीन सम्राटों पर कोई महत्वपूर्ण काव्यग्रंथ नहीं रच रहे थे। ***जहांगीर–जस–चन्द्रिका*** और ***जंगनामा*** दोनों ही छोटे काव्यग्रंथ हैं और इसमें कवियों ने ग्रंथ विस्तार की कोई उपयोगिता नहीं समझी और छोटे कलेवर में ही प्रस्तुत किया है।

## 4.2 *सुजानचरित* : सूदन

### **4.2.1** सूदन –कवि एवं ग्रंथ परिचय

रीतिकालीन चरितकाव्यों में महत्वपूर्ण ***सुजानचरित*** के रचयिता सूदन भरतपुर राजवंश के जाट राजा सूरजमल के आश्रित कवि थे। ***जंगनामा*** के कवि श्रीधर की भांति ही इनके विषय में भी बहुत कम जानकारियां हमें प्राप्त होती हैं। इनके स्वयं के विषय में दिये हुए विवरण के आधार पर जो जानकारियां हमें मिलती हैं वह निम्नवत हैं –

*''मथुरापुर सुभधाम माथुर कुल उत्तपत्ति बर।*
*पिता बसंत सुनाम सूदन जानहुं सकल कवि।।''*[16]

इस दोहे के आधार पर इनके विषय में यही जानकारी मिलती है कि यह मथुरा के निवासी माथुर ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम बसंत था और सभी लोग इन्हें सूदन कवि के नाम से जानते थे। सूदन की जन्मतिथि और मृत्यु का पता नहीं चल पाया है। हालांकि सूदन ने जिस कालखंड में अपने ग्रंथ की रचना की है उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि 1745 ई. से लेकर 1753 ई. तक की घटनाओं का विवरण जो हमें ***सुजानचरित*** से मिलता है वह स्वयं इन सब घटनाओं के साक्षी रहे होंगे। इसके वर्ण्य विषय के आधार पर ही मिश्रबंधुओं एवं आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कवि रचना कर्म को इन घटनाओं से 10 साल पश्चात् लिखा होना मानते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपने इतिहास में लिखते हैं –

''सुजानचरित बहुत बड़ा ग्रंथ है। इसमें संवत् 1802 से लेकर 1810 तक की घटनाओं के वर्णन हैं। अतः इसकी समाप्ति 1810 के दस पन्द्रह वर्ष पीछे मानी जा सकती है। इस हिसाब से इनका कविताकाल संवत् 1820 के आस–पास माना जा सकता है।''[17]

इसका प्रकाशन सर्वप्रथम राधाकृष्ण दास ने करवाया था। यह 7 जंग यानी 7 अध्याय के रूप में यह विभाजित है जो ऐतिहासिक जंगों पर आधारित हैं। ग्रंथ की ऐतिहासिकता पर भी आचार्य शुक्ल ने महत्वपूर्ण टिप्पणियां की हैं एवं ऐतिहासिक दृष्टि से इसे महत्वपूर्ण माना है –

''सूरजमल की वीरता की जो घटनाएं कवि ने वर्णित की हैं वे कपोल–कल्पित नहीं, ऐतिहासिक हैं। जैसे अहमदशाह बादशाह के सेनापति असद खां के फतहअली पर चढ़ाई करने पर सूरजमल का फतहअली के पक्ष में होकर असद खां का ससैन्य नाश करना, मेवाड़, मांडोगढ़ जीतना, संवत् 1804 में जयपुर की ओर होकर मरहठों को हटाना, 1806 में शाही वजीर सफदर जंग मंसूर की सेना से मिलकर बंगश पठानों पर चढ़ाई करना, बादशाह से लड़कर दिल्ली लूटना इत्यादि। इन सब बातों के विचार से सुजानचरित का ऐतिहासिक महत्व भी बहुत कुछ है।''[18]

आचार्य शुक्ल ने सूरजमल के जिन ऐतिहासिक पक्षों का जिक्र किया है ***सुजानचरित*** में वही विषय–वस्तु है। तत्कालीन इतिहास के सन्दर्भ में भारतीय राजनीति को प्रभावित करने वाली घटनाओं का चित्रण सुजानचरित के ऐतिहासिक पक्ष की महत्वपूर्ण विशेषता है। अतः सूदन परवर्ती मुगल साम्राज्य के समय की स्थितियों की विवेचना करने वाले अगले हिन्दी कवि हैं।

**फर्रुखसियर के पश्चात् मुगल दरबार में पूरी तरह से अमीरों का बोलबाला हो गया** जैसा कि जंगनामें के अध्ययन से जाहिर हो जाता है। सैयद बंधुओं ने मुगल सत्ता को अपने अधीन कर लिया था और बतौर सम्राट फर्रुखसियर की शक्तियां बहुत सीमित कर दी गयी थीं। जल्दी ही सैयद बंधुओं ने फर्रुखसियर को गद्दी से हटा दिया और उसके पश्चात दो और शहजादों को मुगल सम्राट बनाया गया। यह सब 1719 ई. के दौरान घटित हुआ। इसके पश्चात् **मुहम्मदशाह को अगला मुगल सम्राट बनाया गया।** यह भी अमीर वर्ग के हाथ की कठपुतली ही था। मुहम्मदशाह बहादुरशाह के बेटे जहांदारशाह का बेटा था और यह भी सैयदों की कृपा से ही गद्दी पर आसीन हुआ था। जल्दी ही सैयदों का पतन हो गया क्योंकि दरबार के अन्य अमीर अब उनके खिलाफ हो गये थे। अतः उनके पतन से मुगल दरबार में अब और प्रतिद्वन्द्विता बढ़ गयी थी। मुहम्मदशाह अपने अमीरों को नियंत्रित

करने में समर्थ नहीं था। सम्राट सूरजमल के समय तक उत्तर भारत में एक केन्द्रीय शासन अब छिन्न–भिन्न हो चुका था और तेजी से पतन की ओर अग्रसर था।

उत्तर भारत की अव्यवस्थित शासन शैली और क्षेत्रीय शक्तियों के बीच संघर्ष बढ़ते जाने में केन्द्रीय सत्ता का कमजोर होना मुख्य कारण था। मुगल दरबार अब स्वयं की सत्ता बचाने के लिए इन क्षेत्रीय शक्तियों की सहायता ले रहा था। इस समय तक भारतीय परिदृश्य पर मराठा, राजपूत, सिक्ख, जाट, बुन्देला जैसी क्षेत्रीय शक्तियां अपना–अपना वर्चस्व बढ़ाने में एक–दूसरे से प्रतिद्वन्द्विता कर रही थीं। वहीं दक्षिण में भी अलग–अलग राज्य जन्म ले रहे थे जिसमें हैदराबाद के निजाम एवं मैसुरू राज्य अभी शैशवावस्था में ही थे। उत्तर की स्थितियां विभिन्न विदेशी ताकतों को भी अपनी तरफ आकर्षित कर रही थीं जिससे विदेशी खतरा भी बढ़ता जा रहा था।

सूदन ने लगभग इन्हीं परिस्थितियों में अपना काव्य लेखन शुरू किया था। जाट विद्रोह बढ़ते–बढ़ते अब एक राज्य का शक्ल ले चुका था और उसका सुनहरा दौर जाट राजा सूरजमल से शुरू हुआ। निश्चित ही सूरजमल उस समय के एक उत्कृष्ट काव्यनायक बनने की सम्पूर्ण क्षमता से युक्त थे। सम्भवतः इसी वजह से सूरजमल को सूदन ने अपना काव्यनायक बनाया और ***सुजानचरित*** जैसे ऐतिहासिक काव्यग्रंथ की रचना की।

### 4.2.2 सुजानचरित का वर्ण्य विषय : जाट शक्ति का विस्तार

लालकवि के ***छत्रप्रकास*** की ही भांति ***सुजानचरित*** एक प्रबंधकाव्य है। सूदन ने परंपरानुसार अपने चरितनायक के वंश का इतिहास पौराणिक चरित्रों के माध्यम से ही किया है जो उस समय के कवियों की वंश परंपरा देने की प्रचलित रीति के अनुसार ही था। महाराजा सूरजमल जाट राजा बदनसिंह के पुत्र थे। बदनसिंह के समय में ही जाटों की स्थिति में काफी सुधार हो गया था जिससे वह अब एक राज्य की शक्ल में आकार ले रहा था। हालांकि जाटों के राजनीतिक उत्थान पर कवि ने कुछ स्पष्ट रूप से नहीं लिखा है। जाटों की उत्पत्ति के विषय में कुछ किंवदन्तियां मशहूर हैं जैसे –जाट शिवजी की जटा से उत्पन्न होने के कारण जाट कहलाये अथवा यदुवंशी होने के यदु का विकृत रूप में जदु या जाटव या जाट कहलाने लगे। कालिका रंजन कानूनगो ने अपनी पुस्तक में में जाट

शब्द की उत्पत्ति पर लिखा है कि कुछ विद्वान जाट शब्द की उत्पत्ति 'जाथर' शब्द से मानते हैं जो पहली बार **पद्म पुराण** में आया है। एथनोलाजी आफ दी जाट्स के लेखक चौधरी लहरी सिंह इसकी उत्पत्ति जाथर से मानते हैं किन्तु इस शब्द को वह विदेशी मानते हैं। कानूनगो इन मतों को सही नहीं ठहराते क्योंकि यह शब्द मराठा ब्राह्मणों की एक उपजाति का नाम है। यह उपजाति अभी भी उस क्षेत्र में पायी जाती है।[19] जाटों का ऐतिहासिक विवरण अलबरूनी के यहां मिलता है। मुगलकाल में इनकी गतिविधियों का जिक्र ***मआसिरूल उमरा*** के अनुसार सर्वप्रथम इनका जिक्र शाहजहां के शासनकाल में मिलता है।[20] औरंगजेब के समय ही इनका प्रभाव अपने क्षेत्रों में बढ़ने लगा और ये अपने आस–पास के इलाकों में लूट–पाट करने लगे। बाद में **चूड़ामणि जाट या चूरामन के नेतृत्व में जाट विद्रोह और तेजी से फैला।** चूड़ामणि बाद में मुगलों से मिलकर काम करने लगा। सैयद बंधुओं के काल में वह उनका सहयोगी रहा। उसी के समय में भरतपुर राज्य की नींव पड़ी जिसके शासक बाद में बदनसिंह हुए। यही बदनसिंह सूरजमल के पिता थे। इनकी मृत्यु 1756 ई0 में हुई थी।

सुजानसिंह या सूरजमल (जन्म 1707, मृत्यु 1763 ई.) भरतपुर का राजा बनने से पहले ही अपने पिता के शासनकाल में अनेक युद्धों में भाग ले चुके थे। वह भी मराठा पेशवा और निजामुल्मुल्क की भांति भारतीय परिदृश्य पर धीरे–धीरे उभर रहे थे। सूदन ने उनके कई भाइयों के नाम गिनाये हैं। महाराजा सूरजमल के 26 भाई थे। अपने पिता की आज्ञा से सूरजमल ने मेवात, मांडोगढ़ एवं मालवा को जीता था–

*''हुकुम मानि बदनेस को सूरजमल कुवांर।*
*प्रथम मारि मेवात कौं कियौ आप अधिकार।।''*[21]

इस युद्ध के पश्चात ही सूदन ने **प्रथम जंग** का आरंभ किया है। प्रथम जंग में सूरजमल को शिकार खेलने के दौरान फतेह अली खां ने असद अली खां के विरूद्ध उनसे सहायता की याचना की। पहले तो वह स्वयं न आकर अपने एक आदमी एलची को उसने भेजा परन्तु सूरजमल ने उससे कहला भेजा कि वह स्वयं आकर उनसे मिले। फतेह अली खां उनसे मिलने के लिए उनके पास आया और सहायता मांगी। तब सूरजमल ने उसे सहायता देने का वचन दिया और सेना लेकर उसकी मदद करने के लिए चंडौत पहुंचे।

दोनों पक्षों में घनघोर युद्ध हुआ और असद अली खां एक गोली लगने के कारण मारा गया। उसकी सारी सेना उसके मरते ही तितर–बितर हो गयी और वह वहां से भाग निकली। इस तरह सुजानसिंह ने अपना दिया हुआ वचन निभाया –

*''असदखान कौं खाई रन, फतेहअलीहिं बचाइ।*
*हरनाकुस प्रह्लाद की लीला करी बनाइ।।*
*फतेहअली कौ कोल में तबहीं दियो पठाइ।*
*आप आई निज गढ़न में देखे पितु के पाय।।''*[22]

प्रथम जंग का विवरण यहीं तक देकर सूदन ने महाराज सूरजमल की वंदना कर इस ऐतिहासिक वृत्तांत को समाप्त किया है। युद्ध के वर्णनों में नादात्मकता का प्रयोग चमत्कारपूर्ण है जो बहुत लम्बा हो गया है जिसकी वजह से घटनाओं की तारतम्यता में एक लम्बा अंतराल आ गया है।

**दूसरे जंग** में संवत् 1804 के सावन महीने में सूरजमल ने जयपुर राजघराने के राजा ईश्वरीसिंह की मदद करके उन्हें मराठों से बचाया–

*''ठारै से अरू चार मैं पावन सावन मास।*

*मद्दति करिय सुरेस की किय दखिनी दल नास।।*

*सुरपुर को जैसिंह गये बीते बहुत दिनान।*

*हुतौ भूप आमेर कौ ईसुरसिंह अजान।।''*[23]

यहा पर जयसिंह जयपुर नरेश एवं ईसुरसिंह अर्थात ईश्वरीसिंह का जिक्र है। जयसिंह की मृत्यु के पश्चात ही ईश्वरीसिंह जयपुर के नरेश बने थे। लेकिन माधोसिंह ने जयपुर की गद्दी को प्राप्त करने के लिए मराठों से मदद लेकर जयपुर राज्य पर हमला करवा दिया। ईश्वरीसिंह ने हमले की स्थिति में पत्र लिखकर सूरजमल को सहायता के लिए बुलाया तब उनकों मुसीबत से बचाने के लिये सूरजमल ने सेना लेकर कुंभेर से जयपुर के लिए प्रस्थान किया। ईश्वरसिंह ने सूरजमल का बड़ा आदर सत्कार किया। ईश्वरीसिंह सूरजमल की सेना लेकर माधोसिंह की तरफ कूच किया। सेना का नेतृत्व सूरजमल कर रहे थे। मोती डूंगरी नामक स्थान पर सेनाओं में युद्ध शुरू हो गया। थोड़ी ही देर में मराठों की सेना में

मार–काट मच गयी और वे पीछे हटने लगे। पीछे हटते हुए मराठे बगरू महाल नामक स्थान पर अपना डेरा डाल दिये। तब सूरजमल और उनकी सेना भी पीछा करती हुयी वहां जा पहुंची और उसने भी वहां पर अपना पड़ाव डाल दिया। तब मराठों के सेनानायक मल्हारराव ने हार मानकर संधि करने की इच्छा जतायी। ईश्वरीसिंह भी माधोसिंह को दो परगना देने पर राजी हो गये –

*''दोइ परगनै लै दिये इसुर सों मल्हार।*
*माधव को समझाइ कैं पठैं दियौ ननसार।।''*[24]

माधोसिंह को विदा कर मल्हारराव दक्षिण को लौट गया। इस तरह से यह युद्ध भी सूरजमल के पक्ष में रहा।

**तृतीय जंग** में सम्वत् 1805 में लड़े गये युद्ध का विवरण है। उस समय सूरजमल अपने राज्य में ही थे कि एक दूत ने आकर संदेश दिया कि दिल्ली से एक बड़ी सेना लेकर सलाबत खां बख्शी भरतपुर राज्य पर आक्रमण करने आ रहा है। अतः सूरजमल को सावधान रहने को कहा। सूरजमल ने तुरंत ही समाचार पर कार्रवाई शुरू कर दी और सेना लेकर आगे बढ़े। सूरजमल की सेना ने मेवात के नौगांव में अपना पड़ाव डाल दिया और आगे की रणनीति पर विचार–विमर्श किया। दरअसल यहा पर एक **ऐतिहासिक तथ्य की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है कि वस्तुतः सलाबत खां जाटों पर आक्रमण करने नहीं आया था** बल्कि वह जोधपुर में उत्तराधिकार के एक युद्ध में शामिल होने जा रहा था और उसने मेवात का रास्ता अजमेर जाने के लिये चुना था। इसके पीछे उसका उद्देश्य यह था कि जाटों के अधीन आ चुके कुछ मुगल क्षेत्रों को वह वापस भी ले लेगा। अपने इसी उद्देश्य के साथ वह मेवात में आकर रूका था। इसके तुरंत बाद ही उसे जोधपुर राज्य में उसे पहुंचना था। इधर उसके मेवात आते ही सूरजमल ने उसे वहीं रोकने की रणनीति बना ली। रणनीति के तहत सेना को कई हिस्सों में बांटकर मुगल सेना को चारों तरफ से घेर लिया गया। इसके बाद दूत भेजकर सलाबत खां से बात करने की चेष्टा की गयी ताकि वह उनके क्षेत्र से चुपचाप निकल जाये लेकिन सलाबत खां ने दूत को बिना सुने ही लौटा दिया।सूरजमल ने उसे सबक सिखाने के लिए सेना को सचेत रहने और सही समय

पर सलाबत खां पर हमला करने का आदेश दिया। सेना ने चारों तरफ से सलाबत खां पर हमला किया। अचानक हमले से मुगल सेना में भगदड़ मच गयी और सलाबत खां बुरी तरह से जाटों के बीच में फंस गया था। इस हमले में दो मुगल सेनानायक रूस्तम खां और हकीम खां को अपनी जान गंवानी पड़ी और सलाबत खां के पास सूरजमल से संधि करने के अलावा अब कोई रास्ता नहीं बचा था। यह घटना सन् 1750 ई. की है। अली कुली खां और फतेह अली खां युद्धभूमि से पहले ही भाग गये थे। इस युद्ध में जाटों की तरफ से गोकुलराम, सुरतिराम, शिवसिंह जैसे कई लोगों के नाम का जिक्र मिलता है। अब सलाबत खां दूत बुलाकर संधि की बातचीत करने लगा –

*''तबहीं सलाबत खां। मन भयौ कलिकान।।*
*हत जानि दोउ बीर। अब को धरै रनधीर।।*
*जबहीं सु साम उपाइ। अपने हियै ठहराइ।।*
*तबहीं वकील बुलाइ। कहियौ बहुत समझाई।।*
*तू जा सुजानहिं पास। हमसौं करैं इखलास।।'*[25]

सलाबत खां ने सूरजमल को संधि के तहत उसके इलाके को छोड़ देने और अपने साथ उसे रखने की बात कह उसके यहाँ दूत को रवाना किया। सुजानसिंह ने संधि की बात स्वीकार कर लिया और सलाबत खां को कोई बात दिल में न रखने की बात कहकर उसके प्रति सम्मान प्रकट किया। दरअसल सूरजमल उस समय दिल्ली दरबार की नजरों में नहीं आना चाहता था अतः उसने चालाकी से सलाबत खां का रास्ता छोड़ दिया और सलाबत खां वहां से चला गया। सलाबत खां को मार देने से दिल्ली के मुगल दरबार की नजरें उस पर टेढ़ी हो जाती और उन्हें जाटों पर कार्रवाई करने का बहाना मिल जाता सो सुजानसिंह ने बुद्धि से काम लेते हुए इस संकट से अपने–आप को बचा लिया। सलाबत खां की पराजय के साथ ही सुजानचरित का तृतीय जंग भी समाप्त हो जाता है।

मुगल साम्राज्य के बड़े सेनापति के साथ युद्ध का असर जाट शक्ति के विकास में सहायक सिद्ध हुआ। इससे उनके आत्मविश्वास में काफी बढ़ोत्तरी हुई। इस युद्ध की परिणति पर कानूनगो ने लिखा है –

''साम्राज्य के अमीर–उल–उमरा पर विजय ने राजा सूरजमल को महान प्रतिष्ठा प्रदान की तथा उससे आत्मविश्वास में भी वृद्धि हुई। इसके तुरंत बाद उसने हिन्दुस्तान के राजनीतिक अखाड़े में प्रवेश लिया, जहां उसने अधिक पराक्रमी एवं अधिक सम्मानपूर्ण भूमिका अदा की।''[26]

**चतुर्थ जंग** में सम्वत् 1806 में सूरजमल ने सफदर जंग के साथ मिलकर पठानों पर आक्रमण कर उन्हें परास्त किया। पठानों से युद्ध करते समय नवलराय की मृत्यु के विषय में सुनकर वजीर सफदर जंग बहुत कुपित हुआ। सफदर जंग के लिए सूदन ने **मंसूर** नाम का इस्तेमाल किया है। उस समय दिल्ली के तख्त पर मुहम्मदशाह के पश्चात् अहमदशाह मुगल सम्राट बना था। उसी का वजीर सफदर जंग था। दिल्ली दरबार में वजीर की स्थिति पर पहले ही प्रकाश डाला जा चुका है। सफदर जंग एक वजीर के रूप में योग्य व्यक्ति था। नवलराय की मृत्यु पर अहमदशाह से आदेश लेकर उसने पठानों पर आक्रमण कर दिया और उन्हें दबाने के लिए सूरजमल के पास दयानाथ नामक एक दूत को वहां से रवाना किया गया। सूरजमल वजीर की सहायता के लिए तुरंत सेना लेकर कोल पहुंचा जहां पर वजीर की सेना रूकी हुई थी। वजीर ने तुरंत उसे दरबार में बुलाया और उसके प्रति आभार प्रकट किया। पठानों रूहेलखंड में रहने वाले रूहेलों के लिए पठान शब्द का इस्तेमाल किया गया है उस समय रूहेलों का नेतृत्व अहमद खां बंगश कर रहा था, वजीर उसी को रोकने के लिए रूहेलखंड की तरफ आया था। को रोकने के लिए भरतपुर से और सेना मंगवायी गयी। शुरूआत में सफदर जंग को उनके विरूद्ध सफलता नहीं मिल पा रही थी क्योंकि रूहेला पठान अपनी पूरी शक्ति से लड़ रहे थे। इसके अलावा क्षेत्रीय परिस्थितियों में युद्ध का लाभ भी उन्हें मिल रहा था। अतिरिक्त सेना आ जाने पर कासगंज में पड़ाव डाला गया। तत्पश्चात् कुछ घेरा डालने के पश्चात् सेना नौलखा में आकर ठहर गयी। सफदर जंग द्वारा जाटों के बुलाये जाने की खबर सुनकर अहमद खां बंगश भी अपनी सेना तैयार करने में लग गया ताकि वजीर की सम्मिलित सेना का मुकाबला कर सके –

*'यह सुनि अहमद खां पठान ने सब पठान सौं भाखी।*
*अब वजीर आयौ समुहायौ तुम क्या मसलति राखी।।*
*आवन कहत रूहेले ते भी आये कहु न आये।*

*जिसे तेग बांधे को हिम्मति ते क्या रहैं दुराये।।'*[27]

इस युद्ध में रूहेले काफी तैयारियों के साथ प्रवृत्त हुए थे और सफदर जंग को कड़ा मुकाबला दे रहे थे। तत्कालीन इतिहास के अनुसार यह जंग करीब साल भर चली थी और युद्ध का कोई निर्णायक हल नहीं निकल रहा था। इस बीच अपनी स्थिति कमजोर देख मराठों को भी सफदर जंग ने बुलवाया था। सूदन ने नौलखा में रूहेलों और वजीर के बीच हुए युद्ध का विस्तार से वर्णन किया है। उनके बीच यह युद्ध गंगा के खादर इलाके में हुआ था। अहमद खां बंगश की मदद के लिए रूस्तम खां और हबस खां उसकी तरफ से डेरा डाले हुए थे। सफदर जंग ने सुजानसिंह को बुलाकर युद्ध की रणनीति पर चर्चा कर आक्रमण करने का आदेश दिया। सभी सवारों ने इकट्ठा होकर पठानों पर हमला कर दिया। तभी बंगश खां ने एक चाल चली और अपने दूत को बुलाकर सुजानसिंह के पास भेजा। दरअसल बंगश ने सुजानसिंह को फोड़कर अपने पक्ष में मिल जाने के लिए अपना दूत भेजा था। अपनी इस चाल में उसने जाटों के साथ मुगल दरबार की ज्यादतियों को याद दिलाकर उन्हें अपने पक्ष में करने के लिए हर–सम्भव प्रयत्न किया। किन्तु सुजानसिंह ने प्रस्ताव को यह कहकर ठुकरा दिया कि वह सफदर जंग को वचन देकर पीछे नहीं हटेंगे।

कवि ने सुजानसिंह में सत्य निष्ठा और स्वामिभक्ति जैसे काव्यनायकोचित गुण पर अच्छा प्रकाश डाला है। सुजानसिंह की मनःस्थिति इस प्रस्ताव से खराब हो चुकी थी और वह बंगश को सबक सिखाने के लिए और भी उत्सुक हो गये। उन्होंने तुरंत सारी बातें सफदर जंग से कहकर पठानों पर हमला और तेज करने के लिए वजीर से आग्रह किया। वजीर उन्हें युद्ध के लिए प्रस्तुत देखकर स्वयं भी हमला करने के लिए तैयार हो गया। भयानक युद्ध शुरू हुआ और बंगश की सेना में हाहाकार मच गया। तब बंगश ने एक अच्छे युद्धनेता का परिचय देते हुए अपने सैनिकों के गिरे हुए मनोबल को उठाने के लिए उन्हें प्रेरित करते हुए कहा –

*''तब यौं पठाननु भाषियौं। मरना हमें दिल राखियौ।।*
*सुनिके सुवंग सपूत नै। तबहीं कह्यौ मजबूत नै।।*
*मरना हमैं क्यौं मारना। किस रीति जंग विचारना।*
*तबहिं मंत्र यह कियौ, सबै सरदार हित।*

*अली मुहम्मद पूत मीर , बक्का लरनाजित।।'*[28]

दोनों तरफ से युद्ध पुनः शुरू हो गया। युद्ध में सुजान सिंह ने अप्रतिम साहस का परिचय दिया और जंग में पठानों की मजबूत होती जा रही स्थिति को नियंत्रित किया। युद्ध में एक बार यह अफवाह उठी कि बंगश सेनापति रूस्तम खां ने अपनी फौजें युद्ध से हटा ली हैं। तभी इस पर ध्यान न देते हुए बंगश ने चतुराई से अपनी पूरी शक्ति के साथ वजीर की सेना पर हमला कर दिया। रूहेलों के भयंकर युद्ध के कारण वजीर को युद्ध में उस दिन पीछे हटना पड़ा। जबकि सुजानसिंह दूसरे मोर्चे पर अपने वीर योद्धाओं गोकुलराम, प्रतापसिंह, सूरतराम, हरनारायन, ब्रजसिंह, सुखराम जैसे लोगों के साथ युद्ध में पठानों को हराने में सन्नद्ध थे। इनके हमले में रूस्तम खां घायल होकर मर गया तब उसके सैनिक वहां से भागने लगे। इस युद्ध में दोनों तरफ के लोग विजयी हुए।

युद्ध को अनिर्णीत ही छोड़कर वजीर सफदर जंग दिल्ली लौट गया और सुजानसिंह वापस अपने राज्य में लौट आये। लेकिन यह युद्ध यहीं तक नहीं रूका। वजीर रूहेलों से बदला लेने की फिराक में था। अतः उसने मराठों को भी रूहेलों के साथ युद्ध करने के लिए बुलाया। मल्हारराव (मराठा सेनापति) सेना के साथ वजीर की मदद करने के लिए पहुंचे –

*''एक ओर मल्हार दलु, दूजैं सिंह सुजान।*
*उतहि रूहेले अग्ग धरि, सनमुख भए पठान।*
*चहूं ओर घवसान के छाये सइ अहइ।*
*मनहुं गंग के मिलन को आयौ सिंधु बिहइ।।'*[29]

*पुनः* युद्ध शुरू हुआ और बहुत से पठान इस युद्ध में मारे गये। यह युद्ध वजीर के पक्ष में रहा। वजीर ने सुजानसिंह एवं मल्हारराव का शुक्रिया अदा किया। तत्पश्चात् युद्ध में जीत हासिल कर सुजानसिंह घर लौट आये। सूदन ने इस जंग को जीतने में सुजानसिंह की मदद का फल माना है। सम्भवतः वजीर भी इस सचाई को जानता था कि बिना जाटों के मदद से पठानों से जीतना नामुमकिन है।

रूहेल अपने इलाके में काफी मजबूत स्थिति में थे। अतः वजीर ने भरतपुर राज्य के साथ समझौता करने में ही अपनी भलाई समझी और रूहेलों के खिलाफ उनकी मदद ली। इस युद्ध में मराठों ने भी अपनी मदद दी थी और स्वयं मल्हारराव मराठों का नेतृत्व कर रहे

थे। हालांकि यह युद्ध जीता तो गया लेकिन वजीर को काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ा। दूसरी बार की घेराबंदी में भी वह रूहेलों से घिर गया तब सुजानसिंह ने तत्काल मदद कर उसे हारने से बचाया। इस युद्ध के बाद ही सुजानसिंह और वजीर की गाढ़ी मित्रता हो गयी और उन्होंने वजीर का सदैव साथ दिया। जब वह मुश्किलों से घिर गया और वजीर न रहा तब भी सुजानसिंह उसकी मदद करता रहा।

मुगलों और जाटों के संबंध सफदर जंग के वजीर बने रहने तक सुजानसिंह और भरतपुर राज्य के मुगलों के काम आते रहे और उनमें मित्रता बनी रही। वजीर की कृपा से सुजानसिंह को भी मुगल दरबार और मुगल सम्राट से राज्य के लिए मान्यता मिल गयी जो केवल सुजानसिंह के प्रयत्नों का फल था।

**पांचवे जंग** में संवत् 1809 में **धासहरा के दुर्ग पतन** का उल्लेख है जो मुगलों और जाटों में संबंध सुधर जाने के पश्चात शाही आज्ञा से किया गया युद्ध है। सूदन ने इस बात का उल्लेख किया है कि नवाब सफदर जंग ने मुगल बादशाह को इस बात के लिए राजी कर लिया कि जाटों के साथ संबंध सुधारने में कोई परेशानी नहीं है। धासहरा का दुर्ग उस समय राव बहादुरसिंह के कब्जे में था जो बड़गूजरों का नेता था। बड़गूजरों से वजीर की नाराजगी की वजह पठानों के विरूद्ध युद्ध में वजीर की सहायता न कर राव द्वारा गुपचुप तरीके से पठानों की मदद करना था। अतः वजीर रूष्ट था और उसने बादशाह से इस बाबत आज्ञा मांगी। सूदन ने भी बड़गूजरों से वजीर की रूष्टता की यही वजह बताई है –

*''अवल मुझे बड़गूजरै ताखत करना जानि।*
*रफते रफते और भी रहै मुखालिफ भानि।।''*[30]

हालांकि सूदन ने इस बात का जिक्र नहीं किया है कि इस जंग से पहले पठानों के युद्ध के पश्चात् सुजानसिंह और उनके पुत्र जवाहरसिंह को मनसब प्रदान किये गये थे।

महाराजा सूरजमल के जीवन और उनकी उपलब्धियों पर एक महत्वपूर्ण पुस्तक लिखने वाले कुंवर नटवर सिंह ने ***'महाराजा सूरजमल'*** पुस्तक में इस बात का उल्लेख करते हुए लिखा है कि–

''उसने सफदर जंग सम्राट से सिफारिश की कि जाट राजा को 3000 जात और 2000 घुड़सवार का मनसब उसके पुत्र रतनसिंह को 'राव' की उपाधि और जवाहरसिंह को उसके

पहले विद्यमान पद के अलावा 1000 जात और 1000 घुड़सवार का मनसब प्रदान किया जाये; इस प्रकार जवाहरसिंह कुल मिलाकर 4000 जात और 3500 घुड़सवार का मनसबदार बन गया।''[31]

जवाहरसिंह के मनसब में वृद्धि की वजह उसे पहले से ही मनसब का मिला होना था। सलाबत खां से युद्ध के दौरान ही उसे मनसब प्रदान किया गया था जिसका उल्लेख सूदन ने भी किया है।

अब सूरजमल मुगल सम्राट के अधीन कार्य कर रहे थे। अतः धासहरा दुर्ग को विजित करने निकल पड़े। इनके साथ इनके पुत्र जवाहरसिंह भी अपनी सेना के साथ वहां पहुंचे और दुर्ग का घेरा डाल दिया गया। जैसे ही बड़गूजरों तक यह खबर पहुंची उन्होंने भी युद्ध के लिए कमर कस ली। पहले ही दिन युद्ध में जाट वीरों ने उसे धूल चटा दी और वह पीछे हटकर पुनः किले में चला गये। सुजानसिंह ने युद्ध बंद कर दिया और उसे संधि कर लेने की सलाह दी किन्तु वह आना–कानी करता रहा। संधि करने का एक कारण यह भी था कि यह दुर्ग अजेय नही ंतो बहुत आसानी से जीत लिये जाने योग्य भी नहीं था। बहादुर राव की तरफ से जालिमसिंह किले की रक्षा कर रहा था। सूदन के अनुसार उसकी सेना में 5000 बंदूकची, 700 घुड़सवार थे। अतः इतनी सेना के बल पर वह युद्ध के लिए अड़ा हुआ था। अतः संधि प्रस्ताव न स्वीकार करने पर अगले दिन चारों तरफ से किले पर आक्रमण की योजना बनायी गयी। हर तरफ के लिए जाटों में से एक नेता चुनकर उसे भेज दिया गया। उत्तर में बलराम, रामचन्द्र तोमर, पूरब में स्वयं रतनसिंह, पुहुपसिंह, मस्तराम पश्चिम में कृपाराम गूजर, बलिराम, जयंतसिंह, फोदासिंह एवं दक्षिण में श्यामसिंह, हठीसिंह, भरतसिंह आदि ने एक साथ धावा बोला। किन्तु तब भी युद्ध अनिर्णीत रहा। ऐसे ही कई दिन बीत गये और युद्ध होता रहा। किन्तु राव के अड़ियलपन से कोई हल नहीं निकल रहा था। किले के अन्दर प्रजा को परेशानियां होने लगी तब वह राव से संधि की याचना करने लगे –

*''दुहुं ओर युद्ध किय घोर जुद्ध, गढ़ देखि रूद्धपुर लोग कुद्ध।*
*सब ह्वै उदास गये राउ के पास, अति त्रास धार कहियौ पुकार।*
*सुनिराउ बीर तुमकौं न पीर, तुम तौं अभीत हम तौं सभीत।।''*[32]

प्रजा की परेशानी सुनकर राव ने अन्य लोगों से सोच विचार कर संधि का प्रस्ताव जाटों के पास भेजा। तब संधि प्रस्ताव लेकर जालिमसिंह जाटों के पास पहुंचा, सूरजमल ने उसका बहुत सम्मान किया और आने का कारण पूछा। राव से 10 लाख रूपये और उसकी **रहकला तोपें** संधिस्वरूप मांगी गयीं, नही ंतो घेरा न उठाने की बात जालिमसिंह से कहकर उसे राव के पास भेज दिया गया। संधि की शर्तें सुनकर राव पैसा देने के लिए तो तुरंत राजी हो गया लेकिन तोपें देने से साफ इन्कार कर दिया। उसकी बात सुनते ही जालिमसिंह को धक्का पहुंचा और उसने आत्महत्या कर ली –

*''जालिमसिंह मर्‌यौ जबै, खबरि पाइ के सूर।*
*जान्यौ अबहिं राउ को, घट्‌यौ न नेक गरूर।।'*[33]

वस्तुतः हुआ यह था कि जालिमसिंह सूरजमल के यहा संधि की बात स्वीकार करके आ गया था। अतः जब राव ने संधि को ठुकरा दिया तो अपनी बात न रख पाने के क्षोभ से उसने आत्महत्या कर लिया। अतः लड़ाई फिर से शुरू हो गयी। लड़ाई का अंत बहुत दिलचस्प और दुखद रहा। जब युद्ध में जाट भारी पड़ने लगे तब अपने आप को घिरा देख बहादुरराव ने दुर्धर्ष वीरता का परिचय दिया। अपनी मृत्यु सामने देख उसने अपने परिवार की सारी औरतों को जौहर का आदेश दे दिया। बच्चे भी मार डाले गये और स्वयं 25 वीरों को साथ लेकर किले के बाहर युद्ध करने आया। थोड़ी ही देर में युद्ध करते हुए सब–के–सब मारे गये। **सूदन ने अपने काव्यनायक के विरोधी का भी बड़ी सहृदयता से वर्णन किया है और उसकी वीरता की प्रशंसा की है।** जब वह युद्ध के लिए 25 बड़गूजर वीरों के साथ निकल *रहा था तब उसका वर्णन कवि ने यों किया है–*

*''चढ़यौ जंग को राउ रंग, मनु उदित दिवाकर।*
*करिय दुग्ग परनाम फेरि कीरति तनया घर।*
*कटि कृपान कम्मान बान आयुध कर लिन्निय।*
*धरि मुच्छन पर हत्थ तथ्थ डंका करि दिन्निय।'*[34]

कवि द्वारा उसके काव्यनायक के विरोधी की प्रशंसा में उसकी वीरता का वर्णन सराहनीय है। राव के आत्मघाती निर्णय ने वहां के लोगों पर काफी प्रभाव डाला होगा। जाटों के

इतिहासकार गंगासिंह ने धासहरा में प्रचलित एक कहावत का उल्लेख किया है जो इस प्रकार है –

''डोकरी भिडकोलाय निकल जाय तब जानो''[35]

इस युद्ध में दोनों पक्ष के काफी लोग मारे गये। अन्ततः दुर्ग जीतकर अमरसिंह को किले का भार सौंप सूरजमल अपने राज्य में लौट आये।

**षष्ठम जंग** में दिल्ली का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत करते हुए सूदन ने 1754 ई. में दिल्ली दरबार का हाल कहा है। प्राचीन काल के राजा शांतनु से लेकर प्राचीन समय के दिल्ली के राजाओं का वर्णन करते हुए पृथ्वीराज एवं मुहम्मद गोरी के युद्ध के पश्चात दिल्ली में सल्तनत के मुहम्मद गोरी के युद्ध पश्चात दिल्ली में सल्तनत के बादशाहों का विवरण सूदन ने दिया है। सल्तनत का विवरण क्रमबद्ध नहीं है लेकिन मुगलों का क्रमबद्ध वर्णन है जैसे बाबर, हुमायूं, शेरशाह, अकबर, जहांगीर, फर्रूखसियर, रफीउदरजात, मुहम्मदशाह तत्पश्चात् सूदन के समकालीन अहमदशाह। सूदन ने विजारत के उपर पर भी संक्षिप्त प्रकाश डाला गया है –

*''पातसाहि अहमद कें भौ वजीर मनसूर।*
*पोता मलिक निजाम को बकसी भौ मगरूर।*
*तूरानी बकसी भयौ ईरानी सुवजीर।*
*नाचाखी दोउन मै दिल्लीपति के तीर।''*[36]

सूदन के इस दोहे से दिल्ली दरबार में अमीरों के झगड़े का आभास मिलता है। उस समय **दरबार में ईरानी और तूरानी गुट का पता चलता है** जो उस समय काफी शक्तिशाली हो गये थे। एक दिन बख्शी गाजीउद्दीन खां ने बादशाह की तरफ से वजीर को खबर भिजवाया कि वह अब अपने देश वापस लौट जाये। वजीर सफदर जंग जो अभी तक अपना काम निष्ठापूर्वक करता आ रहा था बादशाह का आदेश पाकर बहुत क्षुब्ध हुआ। दरबार में उसके खिलाफ काफी दिनों से षड्यंत्र चल रहे थे जिसकी वजह से वह स्वयं बहुत परेशान था। विजारत से हटाने के लिए उसके विरोधियों ने बादशाह उससे सूरजमल के पास फरमान भेजा कि वह इस कठिन समय में उसे मदद दे और मुगलों से इनका बदला ले।

सूरजमल सफदर जंग की मदद के लिए तुरंत ही सेना की तैयारी कर 15000 सवारों के साथ यमुना तट पर आ गया। सफदर जंग ने दरबार का हाल सुनाया। दिल्ली हरम में उस समय सम्राट की माता ने अहमदशाह के कान भर दिये थे। उसके साथ उसका एक नौकर जाविद खान भी था जो शह पाकर वजीर को परेशान करता रहता था। हालांकि सूदन ने इस घटना का उल्लेख नहीं किया है। उस नौकर की चालबाजियों से परेशान होकर सफदरजंग ने उसे मरवा दिया था और इसी वजह से सम्राट उससे रूष्ट हो गया था।

सूरजमल से जब वजीर की बात हुई तब सूरजमल ने उसे समझाया किन्तु निराश सफदर जंग कुछ भी मानने को तैयार नहीं हुआ और उसने साफ–साफ कह दिया कि अगर सूरजमल ने उसकी मदद नहीं कि तब वह अपनी जान दे देगा –

*''जंग कैहों दिलीसैं करौ। नेस नाबूद बैरी करौं।*
*नहिं तौ सीस टोपी धरौं। हाल ही जाई के मक्कैं मरौं।'*[37]

अब सूरजमल ने कोई चारा न देखकर दिल्ली पर हमले की बात मान ली। मित्रतावश उसने मुगलों पर हमला करना स्वीकार कर लिया और सफदर जंग को उसका बदला लेने में मदद करने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

इस समय दिल्ली का वजीर गाजीउद्दीन खां था और सादुल्ला खां को मीर बख्शी बनाया गया था। इधर सफदर जंग और सूरजमल भी दिल्ली पर चढ़ाई के लिये आगे बढ़े। अहमदशाह इस बात को सुनकर घबरा गया और उसने तुरंत दरबार बुलाकर अमीरों से बातचीत की। मुगलों की सेना को भी तैयार किया गया और तोपखाने, हाथी सवार, घुड़सवार आदि युद्ध के लिए रवाना हो गये। इस युद्ध को भी उत्तराधिकार युद्ध का रंग देने का प्रयत्न किया गया क्योंकि ऐसा न होने पर दिल्ली की जनता में विद्रोह फैल जाता। लाल दरवाजे को तोड़कर जाट सेना आगे बढ़ी और बाजारों को लूट लिया गया। बाजार लूटने का प्रसंग कवि ने बहुत विस्तार से दिया है जो उबाउ और अनावश्यक है। इसके साथ ही स्त्रियों की कई जातियों, पशु–पक्षियों, बर्तनों, मिठाईयों, कपड़े के थानों का कवि ने बहुत बड़ा एवं विस्तृत वर्णन किया है। यह प्रवृत्ति सूदन में बहुत पायी जाती है। उनकी इसी प्रवृत्ति पर खीझ कर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में लिखा है –

''इस काव्य की रचना के सम्बंध में सबसे पहली बात जिसपर ध्यान जाता है वह वर्णनों का अत्यधिक विस्तार और प्रचुरता है। वस्तुओं की गिनती गिनाने की प्रणाली का इस कवि ने बहुत अवलंबन लिया है; जिससे पाठकों को बहुत से स्थलों पर अरूचि हो जाती है। कहीं घोड़ों की जातियों के नाम ही गिनाते चले गये हैं, कहीं अस्त्रों व वस्त्रों की सूची की भरमार है। कहीं भिन्न–भिन्न देशवासियों और जातियों की फेहरिस्त चल रही है। इस कवि को साहित्यिक मर्यादा का ज्ञान बहुत ही कम था।''[38]

यहाँ तक कि सूदन ने जातियों के नाम गिनाने में भाषा की मर्यादा का भी ख्याल नहीं रखते। नाम गिनाने के क्रम में भाषा भी बदल जाती है और कहीं पंजाबी तो कहीं अन्य सम्बंधित शब्दों का प्रयोग कवि ने मनमाने ढंग से किया है।

बाजार लूटने के लम्बे वर्णन के पश्चात् सूदन मुख्य विषय पर लौटे हैं एवं लूटमार से मची भगदड़ का मुआयना करते हैं। काफी जान–माल के नुकसान के बाद सूरजमल ने देखा कि दुर्ग की रक्षा में लगे तोपखाने से वहां के निवासियों का ही नुकसान हो रहा है तब सेना वहां से हटाकर दूसरी तरफ ले जायी गयी। सफदर जंग और सूरजमल के सेनापतियों ने मिलकर निर्जन स्थान से दिल्ली पर आक्रमण किया। **इस युद्ध में पूर्व वजीर का एक सेनापति राजेन्द्र गिरि मारा गया। उसकी जगह पर उमराव गिरि और अनूप गिरि को युद्धस्थल पर भेजा गया।** काफी दिनों तक युद्ध चला लेकिन दुर्ग फतह नहीं हो पा रहा था। अतः एक बार फिर से दिल्ली द्वार से दिल्ली पर आक्रमण किया गया। गाजीउद्दीन और रूहेले मिलकर भी जाटों की सेना को रोक नहीं पाये और **गढ़ी के मैदान** में उन्होंने अपनी हार स्वीकार कर ली।

इस दिल्ली लूट के बाद सफदर जंग और सूरजमल ने अपने–अपने डेरों में आराम किया और एक दिन विचार–विमर्श कर पुनः दिल्ली पर आक्रमण किया। इधर बादशाह ने भी गाजीउद्दीन को पुनः युद्ध के लिए भेजा। इस बार मराठों की भी मदद बादशाह ने ली किन्तु वे संख्याबल में कम थे। इस बार भी वही हश्र हुआ। दिल्ली की सेना एक बार फिर परास्त हो गयी और जाट जीत गये। दिल्ली के बादशाह ने आमेर नरेश माधोसिंह और मराठों से सहायता की गुहार लगायी और अगले युद्ध की तैयारियां करने लगा। जाट भी अब पीछे हटने को तैयार नहीं थे। अब मराठों और आमेर के राजपूतों के बादशाह की तरफ आने से युद्ध की स्थिति में बदलाव आ रहा था। दिल्ली का पक्ष अब मजबूत था और

उधर जाट अकेले थे। किन्तु सूदन के अनुसार आमेर नरेश ने बीच–बचाव कर युद्ध को स्थगित करवा दिया और उनके बीच संधि हो गयी।

**सप्तम जंग *सुजानचरित*** का अंतिम जंग है। दिल्ली की लूट के पश्चात् जाटों की स्थिति में अब बदलाव आ गया था। एक ओर जहां वे अपने सर्वोच्च होने का जश्न मना रहे थे वहीं दूसरी ओर अब–तक जो उन्होंने अपने–आप को बचाकर अपना राज्य विस्तार करने की रणनीति पर काम किया था, वह अब सबके सामने आ गया था। मुगलों को चुनौती देने से अन्य शक्तियों का उनसे सशंकित होना स्वाभाविक था। अतः मराठे, रूहेल, एवं अन्य राजपूत मुगलों का समर्थन करने के लिए तैयार हो गये। इन्हीं के गठजोड़ और भरतपुर राज्य पर मंडरा रहे युद्ध के साये का वर्णन इस जंग में कवि ने विस्तार से दिया है –

*''ठारह सौ सुद सोतरा हिम रितु महिना गोप।*
*दक्षिन–दल दिल्ली दलनु कीनौ ब्रज पै कोप।*
*करि मिलाप बदनेस सौं कूरमसिंह सुजान।*
*देखि भर्थपुर देव का बहुर्‌यौं कियौ पयान।'*[39]

माधोसिंह ने दिल्ली लूट के पश्चात् जो संधि करायी थी वह स्थायी नहीं रह सकी। केवल तात्कालिक रूप से उसपर रोक लग पाया। कुछ इतिहासकार इस संधि की बात को स्वीकार नहीं करते। प्रमाणों के अभाव में ऐसा निष्कर्ष सम्भव है। किन्तु ***सुजानचरित*** के अलावा ***तारीखे मुजफरी*** नामक तत्कालीन ग्रंथ में भी इस बात संधि का उल्लेख है यह जानकारी ***सुजानचरित*** के संपादक राधाकृष्ण दास ने टिप्पणी में दी है।

**सप्तम जंग में** माधोसिंह ने सुजानसिंह को चेताया कि यह संधि तो हो गयी लेकिन मराठे चुप नहीं बैठेंगे। इसलिए उसने सुजानसिंह को सावधान रहने को कहा। सारी बातें समझकर सुजानसिंह ने इसके समाधान के लिए साम, दाम, दंड, भेद सबका आश्रय लेने का विचार कर अपने एक विश्वस्त रूपराम को बुलाकर मराठों के शिविर में यह जानने के लिए भेजा कि वहां पर वह देखकर आये कि भरतपुर को लेकर वहां क्या रणनीति बनायी जा रही है। रूपराम तुरंत दक्षिण में मराठों के शिविर के लिए निकल पड़ा। वह तुरंत ही सारी खबर लेकर वापस सुजानसिंह के पास पहुंचा। उसने बतलाया कि बल्लभगढ़ के किलेदार बल्लू चौधरी को महमूद आकबत ने दगा करके मार डाला है। उसने आगे बताया

कि जब से आप इधर आये हैं गाजीउद्दीन खां दिल्ली जाकर मराठों को आपके खिलाफ तैयार कर रहा है। मल्हारराव से मदद के लिए ही चौधरी को मार डाला गया। यह सब सुनकर सुजानसिंह चौकन्ना हो गये और उन्होंने तुरंत बलिराम को बुलाकर जवाहरसिंह को खबर करने के लिए कहा।

जवाहरसिंह पिता की आज्ञा पाकर बरसाने की तरफ निकला। उसके आने की खबर पाकर बल्लू के परिवार वाले उससे मिलने आये और आकबत खां की दगाबाजी का सारा हाल कह सुनाया। इधर मराठों ने आपस में मिलकर 60000 की सेना लेकर जयपुर में पड़ाव डाल दिया। उनके आने पर बूंदी, रूपनगर, कोटा, मेवाड़ का दीवान आदि राजपूत भी आकर उनसे मिल गये। माधोसिंह ने एक बार फिर संधि की बात चलायी और दो करोड़ रूपये लेकर उन्हें लौट जाने के लिये कहा। यह सब बातें रूपराम सुन रहा था उसने तुरंत इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। कवि ने यहा पर रूपराम द्वारा ब्रज की शोभा और कृष्ण की लीलाओं का वर्णन उसके मुंह से करवाया है तथा ऐतिहासिक वृत्तों से थोड़ी देर के लिये कवि कट गया है। एक लम्बे वर्णन के पश्चात कवि ने मल्हारराव और रूपराम की बातचीत को आगे बढ़ाया है। मल्हारराव ने रूपराम को धमकी दी कि वह मराठों की सेना को देख ले और अपने राजा को रूपये देने के लिये कहे। अगर उसने रूपये नहीं दिये तो मराठों की सेना बुलाकर भरतपुर राज्य आक्रमण किया जायेगा।

जाटों को यह संधि न तो माननी थी और न हीवे माने। अतः युद्ध का निश्चय हो गया। दिल्ली का वजीर गाजीउद्दीन भी यही चाहता था कि जाटों को सबक सिखाना जरूरी है। अतः संधि की बातचीत के दौरान भी वह युद्ध के ही पक्ष में रहा।

मल्हारराव ने युद्ध का निश्चय कर अपने बेटे खांडेराव को आगे बढ़ने का आदेश दिया। खांडेराव मेवात को लुटते हुए महमूद आकबत के साथ आगे बढ़ा। रूपराम ने मेवात के लूटे जाने की खबर सूनकर सुजानसिंह को मल्हारराव के आने की सूचना दी और राज्य में युद्ध की तैयारियों को तेज कर दिया गया। **मेवात के लूटने** का कवि ने इस प्रकार वर्णन किया है –

*''खंडू धायौ भूमि मेवात आयौ। आयौ आयौ चारिहूं ओर छायौ।।*
*मानो दावाग्नि डोले रिसायौ। मार्‌यौ वार्‌यौ सामुहे जहिं पायौ।।*

*काहू गब्बे जाइ पब्बे बसायौ। देके दामै धाम काहूं बचायौ।।*
*लूट्यौ कूट्यौ मेव देसे भगायौ। ताके आगे दुग्गउ दार खायौ।।'*[40]

मल्हारराव और सुजानसिंह इस युद्ध में फूँक–फूँक कर कदम रख रहे थे क्योंकि इससे बड़े पैमाने पर दोनों को नुकसान उठाना पड़ सकता था। दोनों ने ही अपने–अपने बेटों को युद्धभूमि से दूर रहने का आदेश दिया था। दोनों ही चतुर कूटनीतिज्ञ थे और अपने बेटों के अति उत्साह से कोई बड़ा नुकसान नहीं चाहते थे। दोनों ने ही पुत्रों को संयमित व्यवहार करने का आदेश दिया था। कवि ने अपने पुत्र को एक चतुर पिता की तरह राजनीति का पाठ पढ़ाते हुए एक राजनीतिज्ञ का सुन्दर चित्रण किया है।

जवाहर के लौट जाने के पश्चात् सुजानसिंह ने डीघ में सभा बुलाकर युद्ध की रणनीति पर विचार किया। सभी सरदार ने संकट के समय में उनका साथ देने का निर्णय लिया और दुर्गों को युद्ध से पहले ही मजबूत बना लिया गया। मोर्चे के लिए ऊँचे बुर्जों का निर्माण किया गया। आस–पास खाइयां खोदी गयी, तोपों को बुर्जों पर तैनात कर दिया गया तथा खाने–पीने की चीजों का भी पर्याप्त भंडारण कर लिया गया।

मल्हारराव जयपुर से अपना पड़ाव उठाकर भरतपुर की तरफ चल पड़ा। एक बार फिर उसने रूपराम उसकी धौंस से डरा नहीं और सुजानसिंह की वीरता का वर्णन करते हुए कहा कि उसके स्वामी किसी की सेना से नहीं डरते। अतः युद्ध निश्चित है। यह सारी घटनाएं अक्टूबर 1753 की हैं। इसके पश्चात् की घटनाएं सूदन में नहीं मिलती हैं और ग्रंथ कृष्ण की संक्षिप्त कहानी के पश्चात् समाप्त हो जाता है।इसका तात्पर्य यह था कि सूरजमल किसी से डरते नहीं अतः युद्ध अवश्यंभावी था।

### 4.2.3 *सुजानचरित* में वर्णित जाट एवं मराठा संघर्ष की परिणति

सूदन कृत ***सुजानचरित*** का सप्तम जंग यहीं समाप्त हो जाता है। आगे युद्ध का विवरण नहीं है क्योंकि सप्तम जंग के साथ ही यह कृति भी समाप्त हो जाती है। इस युद्ध ने एक अन्य मोड़ ले लिया अन्यथा जाटों को बहुत नुकसान हो सकता था। दरअसल अपने पुत्रों को समझाने के बावजूद इस युद्ध में खंडेराव मारा गया था जिससे मल्हारराव जाटों पर

अत्यंत क्रुद्ध था। खांडेराव कैसे मरा इस बात को लेकर सभी इतिहासकार एकमत नहीं है क्योंकि वह एक दुर्घटना में मारा गया था। उस दुर्घटना में जाटों का हाथ था या नहीं इसके प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिलते। जदुनाथ सरकार ने इस बात का उल्लेख किया है कि खंडेराव के मारे जाने पर सूरजमल ने शोक संदेश मल्हारराव के पास भिजवाया था। कानूनगो इस घटना का उल्लेख करते हुए लिखते हैं –

''एक दिन मल्हारराव का एकमात्र पुत्र खांडेराव होल्कर भोजन के उपरांत दुर्भाग्य से आगे की पंक्ति में खड़े तोपखाने के निकट पहुंच गया तथा जाट जजैल से निकली एक गोली के लगने से वह गिर गया। बदले की भावना ने मराठा बाजुओं में हरकत पैदा कर दी और जाटों को उसका अनुभव होने लगा।''[41]

खांडेराव की मृत्यु का कारण चाहे जो भी रहा हो, इससे जाटों पर मराठों की ओर से हमला और तेज करने का एक व्यक्तिगत कारण मिल गया एवं **कुम्हेर के किले का घेरा बढ़ाकर और आक्रमण होने लगा।** ये परिस्थितियां सूरजमल को परेशान करने के लिए काफी थी। भरतपुर राज्य अकेला पड़ गया था। राज्य में मराठों ने भारी तबाही मचायी थी और गांव के गांव सुनसान हो गये थे। सूरजमल की मनःस्थिति पर लिखते नटवरसिंह कहते हैं –

''जीवन में पहली बार और अंतिम बार सूरजमल को निराशा और उदासी ने आ घेरा। यहाँ तक कि प्रत्युत्पन्नमति रूपराम कटारिया भी कोई उपाय न सुझा सका। पराजय और विनाश को अब देर तक टाला नहीं जा सकता था।''[42]

तब–तक इस विनाशलीला से उसकी एक रानी ने मराठाओं की फूट का लाभ उठाकर इस विपत्ति से बाहर निकलने के लिए सूरजमल को प्रोत्साहित किया। रानी की युक्ति काम कर गयी और मल्हारराव का उत्साह थमने लगा। मराठों से संधि की बातचीत हुई और मराठे इस बार सहमत हो गये।

इसी बीच मुगल साम्राज्य में तख्तापलट भी हो गया। अहमदशाह का पतन हो गया और उसकी जगह पर **शाहआलम द्वितीय 1754 में मुगल साम्राज्य के तख्त पर आसीन हुआ।**

इस समय तक भारत में राजनीतिक व्यवस्था अव्यवस्था के अपने चरम दौर में पहुंच चुकी थी। सैनिक शक्ति के रूप में केवल मराठा ही सुदृढ़ थे जो पूरे भारत में किसी को भी

चुनौती दे सकते थे। अव्यवस्था के इसी दौर में अफगान शक्ति भारत के पश्चिमी द्वार पर दस्तक दे रही थी। अहमदशाह अब्दाली के नेतृत्व में सन् 1761 ई. में भारत पर भयानक आक्रमण हुआ जिसके आगे भारत की बड़ी से बड़ी ताकत भी नहीं टिक पायी। यहा तक कि मराठे भी अब्दाली के साथ युद्ध में बुरी तरह से पराजित हुए और उनकी कमजोरियां भी जगजाहिर हो गयी। मुगल साम्राज्य अब नाम–मात्र का रह गया था। अब्दाली के आक्रमण को वह झेल नहीं पाया और भरभराकर ढह गया। आलमगीर द्वितीय ने कायरतापूर्वक बिना लड़े ही हार स्वीकार कर लिया। दिल्ली में कत्लेआम हुआ और उसे लूटा गया। बादशाह मूक बनकर सब–कुछ देखता रहा। उसके आक्रमण की जद में भरतपुर राज्य भी आया किंतु जाटों ने आत्मसमर्पण नहीं किया। **चौमुहा की लड़ाई में जाटों ने अब्दाली को वीरतापूर्वक रोका** और यदुनाथ सरकार के शब्दों में कहें तो 'परंतु जाट किसानों ने दृढ़ निश्चय किया था कि विनाशकारी लूटेरा उनकी लाशों के उपर से गुजर कर ही ब्रज की पवित्र राजधानी तक पहुंच सकेगा।'

जाटों के इस प्रतिरोध से नाराज अब्दाली ने मथुरा से आगरा तक एक भी इमारत खड़ी न रहने देने का आदेश दिया। लूटेरों ने पूरा इलाका तलवार के बल पर रौंद दिया। हालांकि अब्दाली के जाते–जाते जाट उन्हें बराबर तंग करते रहे। अब्दाली जाटों से उलझना नहीं चाहता था क्योंकि वह पर्याप्त लूट–पाट कर चुका था। अतः उसने इन घटनाओं पर उतना ध्यान नहीं दिया।

सूरजमल की मृत्यु 1764 ई. में रूहेलों साथ युद्ध करने के दौरान हुई थी। सूरजमल के पश्चात् भरतपुर राज्य के नये शासक जवाहरसिंह हुए। इन्होंने अपने पिता का बदला लेने की कोशिश में एक बार फिर दिल्ली पर आक्रमण किया था किन्तु मराठों की मध्यस्थता से यह अभियान छोड़ दिया गया।

### 4.2.4 मुगल साम्राज्य और जाट तथा मराठा शक्ति

सूदन के ***सुजानचरित*** के आरंभ से ही मुगल साम्राज्य की स्थितियों पर प्रकाश पड़ने लगता हैं। औरंगजेब के बाद से ही क्षेत्रीय शक्तियां मुगलों को टक्कर देने लगी थीं। औरंगजेब ने अपने समय में इन्हें नियंत्रित करने का पूरा प्रयास किया था किन्तु उसके मरते ही उसके

उत्तराधिकारी इन शक्तियों को रोक पाने में असमर्थ रहे। श्रीधर के जंगनामें के आधार पर मुगल दरबार में बढ़ती गुटबाजी का जिक्र पीछे हो चुका है। सूदन के समय में यह सब घटा नहीं बल्कि और बढ़ गया जिसने अन्ततः मुगल साम्राज्य को खोखला कर दिया। सूदन के ***सुजानचरित*** में आये **सफदर जंग की विजारत और दरबारी क्रियाकलापों** पर एक नजर डाल लेना आवश्यक होगा क्योंकि सूदन के ग्रंथ से केवल इतना पता चलता है कि दरबार में ईरानी और तूरानी गुट उस समय काफी शक्तिशाली थे और उन्होंने सफदर जंग को परेशान करने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी।

इस स्थिति पर नजर डालने से यह भी स्पष्ट हो जायेगा कि महाराजा सूरजमल ने सफदर जंग की मदद करना स्वीकार करके गलत या सही किया था। सन् 1748 ई. में मुहम्मदशाह की मृत्यु होने पर उसका पुत्र अहमदशाह उसका उत्तराधिकारी बना। संयोग से जब बादशाह मरा तब अहमदशाह और सफदर जंग एक साथ ही पानीपत में थे। सफदर जंग की मदद से अहमदशाह ने गद्दी प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की एवं सफदर जंग को अपना वजीर घोषित किया। जैसाकि पीछे कहा गया है कि **अयोग्य बादशाह होने की स्थिति में वजीर का पद काफी महत्वपूर्ण और शक्तिशाली होता** था। अहमदशाह भी एक अयोग्य बादशाह था और उसने अपनी सारी शक्ति वजीर को सौंप दी। किन्तु सफदर जंग का दरबार में पहले से कोई प्रत्यक्ष सम्बंध नहीं रहा था। उसका दरबार से केवल इतना संबंध था कि वह मुगल दरबार के महत्वपूर्ण अमीर सआदत खां का दामाद था। दिल्ली जाने से पूर्व सफदर जंग अवध का सूबेदार रह चुका था। उसके वजीर घोषित होने पर दरबार में कोई अमीर खुश नहीं था क्योंकि दरबार में ज्यादातर अमीर सुन्नी थे और एक शिया के वजीर बनाये जाने से प्रसन्न नहीं थे। **सफदर जंग एक शिया मुसलमान था और भारत के सभी शिया उसे अपना धर्मगुरू समझते थे।**

ईरानी और तूरानी गुटों के बीच की प्रतिद्वन्द्विता वजीर के लिए उस समय सबसे बड़ी समस्या थी जो मुगल साम्राज्य को नित नए झमेलों में फँसाती रहती थी। हालांकि ये दोनों गुट नये वजीर को पसंद नहीं करते थे इसलिए इस मुद्दे पर ये एक थे। नया बादशाह भी अमीरों को एक–दूसरे के खिलाफ भड़काकर रखता था ताकि वे एक होकर बादशाह को नुकसान न पहुंचा सकें। इस तरह पूरा दरबार षड्यंत्रों को रचने और उसे कामयाब बनाने में लगा रहता था। इन बादशाह, वजीर और अमीरों को आम जनता से कोई लगाव

नहीं रहता था। **मुहम्मदशाह जो इतिहास में रंगीला बादशाह** के नाम से प्रसिद्ध है उसके और उसके वजीर के विषय में एक तत्कालीन इतिहासकार का कथन द्रष्टव्य है –

''पिछले कुछ वर्षों से शाही दरबार का यह चलन रहा है कि जब भी दक्षिण या गुजरात या मालवा के पदाधिकारी मराठों के किसी धावे की सूचना सम्राट को देते तो, तब महामहिम सम्राट ऐसी बुरी खबर से दुखी अपने दिल को बहलाने के लिए या तो नये लगाये गये और बिना पत्तों वाले पेड़ों को देखने के लिए बगीचों में चले जाते या घोड़े पर सवार होकर मैदानों में शिकार खेलने निकल जाते और वजीरे आजम प्रधानमंत्री कमरूद्दीन खां इमामुद्दौला अपने मानसिक क्षोभ को शांत करने के लिए दिल्ली से कुछ कोस दूर तालाबों में खिले कमलों को निहारने के लिए चले जाते। वहां वे महीना भर या इससे अधिक भी समय तक तंबुओं में रहते, मजे लूटते या नदियों में मछलियां पकड़ते और मैदानों में हिरनों का शिकार करते, ऐसे समय सम्राट और वजीर दोनों ही शासन–प्रबंध, राजस्व की वसूली और सेना की आवश्यकताओं को बिल्कुल भूले रहते। कोई भी सरदार, कोई भी आदमी राज्य को बचाने या लोगों की रक्षा करने की बात नहीं सोचता और उधर ये उपद्रवी दिनोंदिन बढ़ते जाते।''[43]

इस उद्धरण से साफ–साफ पता चलता है कि उस समय दरबार की स्थिति क्या थी। शासक वर्ग पूरी तरह से अकर्मण्यता वाली स्थिति में आ चुका था और उसे कोई फर्क नहीं पड़ता था कि उसके राज्य में संकटों का अंबार लगता जा रहा है जो एक–न–एक दिन उसे ही नष्ट कर देगा।

मुहम्मदशाह से कुछ अलग स्थिति अहमदशाह की नहीं थी। वह युवा होने के बावजूद शासन प्रबंध में कोई रूचि नहीं लेता था जिसकी वजह से हरम की एक स्त्री उससे बिना इजाजत के ही दरबार लगाकर शासन से सम्बंधित कार्यों को स्वयं ही सम्पादित करने लगी। इसमें उसका एक सेवक जावेद खां भी था जिसके विषय में शहर में चर्चा थी कि उसके अवैध संबंध उस राजमाता के साथ थे। अहमदशाह राजमाता के इन क्रियाकलापों से आँखें मूँद चुका था। वजीर को ही इन समस्याओं से निपटना था कि उधर वह रूहेलों के साथ युद्ध में फंस गया जिसका उल्लेख सूदन ने द्वितीय जंग में किया है। उसकी नियुक्ति से राजमाता और जावेद खां भी प्रसन्न नहीं थे तिस पर तूरानी गुट का गाजीउद्दीन भी

उसके वजीर बनने से क्रुद्ध था क्योंकि वह स्वयं इस पर नजरें गड़ाये हुए था। बाद में सफदर जंग को हटाकर वह स्वयं वजीर बन बैठा जिसका उल्लेख हो चुका है।

वजीर बनने के पश्चात् सफदर जंग पर जानलेवा हमले भी करवाये गये जिसमें वह बच निकला था। उधर सम्राट भी दरबारी गुटों के प्रभाव में आकर वजीर को परेशान करने लगा। रूहेलों को रोकने से पहले बल्लभगढ़ में विद्रोहियों को दबाने के लिए वजीर और सूरजमल आमने–सामने थे। लेकिन रूहेलों के विद्रोह ने स्थिति बदल दी और दोनों एक साथ आ गये। यही से सफदर जंग और सूरजमल की मित्रता आरंभ हुई जो सूदन ने ***सुजानचरित*** में बखूबी पेश किया है। रूहेलों को दबाने के पश्चात जब वजीर दिल्ली पहुंचा तो विरूद्ध तेज हो गये। षड्यंत्रों से तुरंत ही उसे निपटना पड़ा। दरबार में रूहेलों के प्रति उसकी शुरूआती असफलता के बाद से बादशाह के कान भरे जाने लगे। उसकी अनुपस्थिति में उसके विरोधी बादशाह के करीब आ गये थे। वजीर ने पहले अपने विरोधियों को निपटाया। इसी बीच बल्लूराम को लेकर उसका मन–मुटाव बढ़ गया क्योंकि वह दिल्ली से थोड़ी दूर पर ही बसे सिकंदराबाद को बलराम के हाथों लूटवा दिया। पहले तो वह इसका आरोप वजीर पर ही लगाता रहा किंतु बाद में सचाई सामने आने पर वजीर उससे बहुत रूष्ट हुआ। उसके कुचक्रों से परेशान होकर वजीर ने उसे अपने रास्ते से हटाने का निर्णय कर लिया। जावेद खां को मारने के लिए षड्यंत्र के तहत उसे घर बुलाकर अपने लोगों से उसे मरवा डाला। इस मृत्यु के निष्कर्ष पर नटवर सिंह टिप्पणी करते हुए लिखते हैं –

''यह काम जितना बड़ा था उतना ही मूर्खतापूर्ण भी। मृत जावेद खां जीवित जावेद खां से अधिक बुरा सिद्ध हुआ। सम्राट, राजमाता और समूचा शाही घराना वजीर का विरोधी बन गया। उस खोजे का स्थान वजीर के पक्के दुश्मनों इमाद और इंतिजाम ने ले लिया। वे जाविद खां से कहीं अधिक निपुण थे।''[44]

जाविद की हत्या सन् 1752 को हुयी थी। इस हत्या में सूरजमल एवं रूपराम कटारिया भी शामिल थे किन्तु इस घटना का कोई भी जिक्र सूदन के यहाँ नहीं मिलता।

दरबार और शाही घराना दोनों ही एक होकर वजीर सफदर जंग का विरोध करने लगे। इस बीच सूरजमल पर सफदर जंग का विश्वास बढता ही जा रहा था और सूरजमल भी

वजीर का समर्थक बना रहा। दरअसल सूरजमल ने भी राजा की उपाधि वजीर की सहायता से ही प्राप्त की थी। हम पीछे देख चुके हैं कि उसके और उसके बेटे जवाहरसिंह को भी मुगल मनसबदार बनाया गया था और शाही आदेश के कारण ही वह धासहरा के किले को फतह करने गया था। मुगलों के साथ जब–तक उसके सम्बंध अच्छे बने रहे तब–तक उसने अपनी शक्ति में बहुत श्रीवृद्धि की थी और अपने राज्य को काफी शक्तिशाली बना लिया था। यहाँ तक कि जब मुगलों से उसके सम्बंध बिगड़े तब वह उन्हें कड़ी टक्कर देने की स्थिति में आ गया था जिसका वर्णन सप्तम जंग में सूदन ने किया है।

वजीर सफदर जंग और सूरजमल की बढ़ती शक्ति से मुगल सम्राट भी आशंकित होने लगा था। अतः उसने भी वजीर को हटाने के षड्यंत्र में अन्य दरबारियों के साथ अपना हाथ मिला लिया। हालांकि बादशाह उपरी तौर पर यह दिखावा करता रहा कि वह वजीर के साथ ही मिला हुआ है। किन्तु सचाई कुछ और थी। वजीर को हटाने का तात्कालिक कारण उसका पुत्र बना। बादशाह की आज्ञा से शाही तोपखाने के मंत्री उसके पुत्र शुजाउद्दौला और अन्य उसके करीबियों को किले से निकाल दिया गया। इससे वजीर बहुत कुपित हुआ। तब उसे उसके पद से बादशाह ने हटाकर गाजीउद्दीन को नया वजीर घोषित कर दिया गया।

इसके पश्चात् वजीर की क्षुब्धता और तदुपरांत दिल्ली का सूदन ने बड़े विस्तार के साथ षष्ठम जंग में दिया है। दिल्ली को लूटने और उसे कब्जा करने की इच्छा सूरजमल से वजीर ने बड़ी कातरतापूर्वक की थी जिसे सूरजमल टाल नहीं पाया और दिल्ली को जाटों ने बुरी तरह से लूटा।

**जाटों की दिल्ली लूट से मुगल साम्राज्य की स्थिति साफ हो गयी।** छोटी सी संख्या में आये जाटों ने केन्द्रीय राजधानी को लूटा और उसे तहस–नहस कर दिया। मुगल सम्राट अपनी राजधानी को भी बचा पाने में समर्थ नहीं था और उसकी शाही सेना अब बस नाम–मात्र की थी। किले को बचाने के लिए उसके तोपची अपने नागरिकों के उपर गोले बरसा रहे थे जिसकी वजह से सूरजमल ने किला लूटने का रास्ता बदल दिया था। दिल्ली की लूट इतनी भयानक थी कि वहां के निवासी आज तक इसे जाटगर्दी के नाम से याद करते हैं। लूट के पश्चात भी जाटों की तरफ से दिल्ली को हमेशा भय बना रहा अतः

गाजीउद्दीन ने मराठों से मदद मांगी। शाही कोप के फलस्वरूप सफदर जंग की अवध और इलाहाबाद की सूबेदारी छीन ली गयी एवं भरतपुर राज्य के सीमावर्ती इलाकों में मुगलों ने लूटपाट की। परंतु कुछ ही दिन में सूरजमल ने दिल्ली दरबार में अपने प्रभाव का इस्तेमाल कर सफदरजंग इसके पश्चात अपने इलाके में लौट गया। इधर गाजीउद्दीन सूरजमल को सजा देने पर तुला हुआ था अतः उसने **मराठों को बुलवाया मल्हारराव से मिलकर हमले की योजना बनाने लगा।** इसका वर्णन विस्तार से सूदन के काव्यग्रंथ के सप्तम जंग में विस्तार से वर्णित हुआ है।

हालांकि सूरजमल मराठों के साथ अपने टकराव को टालना चाहता था लेकिन हरजाने में 2 करोड़ की रकम देने की बात उसने अस्वीकार कर दिया जिसके फलस्वरूप जंग होना निश्चित था।

### 4.2.5 सूदन की इतिहासदृष्टि–

सूदन ने अपने काव्यग्रंथ ***सुजानचरित*** में किसी भी घटना के तह में जाने की जरूरत पर बल नहीं दिया है अतः उनका पूरा ध्यान केवल तात्कालिक घटना और उससे जुड़े जंग का वर्णन करने पर ही रहता है। परन्तु ***सुजानचरित*** में वर्णित घटनायें एवं जंग की तिथियां बिल्कुल सटीक एवं सत्य हैं। इसीलिए साहित्यिक इतिहासकारों का मानना है कि सम्भवतः कवि सारी घटनाओं का प्रत्यक्षदर्शी था और उसने इन लड़ाईयों के 10 वर्ष पश्चात ही इस कृति को रचा होगा। इस सम्बंध में सम्पादककार का कहना है कि –

''दिल्ली और दक्षिणी दलों की दुर्गति का जो चित्र सूदनजी ने खींचा है वह बिल्कुल ठीक फोटोग्राफिक कैमरा की कुति सा है। इससे यह ग्रंथ सं0 1810 के बाद लिखा गया हो, सो नहीं कहा जा सकता।''[45]

ये सभी इतिहासकार वर्णन की सटीकता पर ही अपना मत स्थिर करते हैं। पहला वर्ग जो इसे 1810 के बाद की कृति मानता है उसका मत यही है कि कवि युद्धों के दौरान स्वयं रहे होंगे और बाद में उन्होंने इसे लिखा होगा लेकिन इसके साथ ही यह भी सवाल उठता है कि यदि यह बाद में ही लिखा गया तो सप्तम जंग अधूरा क्यों है। इसी सन्दर्भ में राधाकृष्ण दास ने लिखा है –

''सुजानचरित में सप्तम जंग की घटना अधूरी दी गयी है और संवत् 1811 के आरंभ ही में उस युद्ध से सूरजमल एक प्रकार विजयी होकर निकले थ, जैसा उनके चरित्र में दिखलाया गया है। यदि सूदनजी ने यह ग्रंथ 1810 के अनंतर लिखा होता तो वे इस घटना को बीच में ही न छोड़ देते। इस प्रकार यह जान पड़ता है कि मराठों तथा बादशाही सेना के चढ़ाई करने के अनन्तर इनकी युद्ध में या अन्य प्रकार मृत्यु हो गयी हो और ये ग्रंथ अपूर्ण छोड़ गये हों, या इस ग्रंथ की पूर्ण प्रति कहीं छिपी पड़ी हो।''[46]

राधाकृष्णदास का मत सत्य हो सकता है क्योंकि रीतिकालीन कवियों में से कई कवि अपने शासक के साथ युद्ध क्षेत्र में जाते थे और युद्धों में भाग भी लेते थे। जैसाकि हम लालकवि के सन्दर्भ में इस तथ्य को देख सकते हैं। अतः सूदन ने घटनाओं के ब्यौरों का जो आँखो–देखा हाल कहा है वह उन्हें उसका प्रत्यक्षदर्शी होना साबित करता है। इसके अलावा जाटों की सेना में जिन विभिन्न लोगों के नाम सूदन ने गिनाये हैं वह 10 साल बाद सम्भवतः याद नहीं रह जाते या त्रुटिपूर्ण होते। इतना अवश्य है कि सूदन ने व्यक्तियों के नाम गिनाने में बहुत लोगों का नाम बदलकर लिखा है जो उनके ऐतिहासिक दृष्टिकोण पर प्रश्नचिन्ह् लगाता है। उनकी यह असावधानियां भाषा के साथ खिलवाड़ करने के कारण भी हो सकती हैं। उदाहरण के तौर पर नामों के आगे या बीच में जु या सु जोड़कर लिखना जैसे – फर्रूखजुसेर (फर्रूखसियर), किलेजुदार (किलेदार), सुदसोतरा, मीराजुसाहि या जुहिमाउं जैसे शब्द। इन शब्दों की वजह से इन्हें समझने में कठिनाई तो होती ही है साथ ही कवि का तथ्यों के साथ तोड़–मरोड़ की प्रवृत्ति का भी पता चलता है।[47]

इसके अलावा सूदन ने वस्तु परिगणन शैली का प्रयोग यत्र–तत्र करके न केवल ऐतिहासिक निरंतरता बल्कि साहित्यिक मर्यादा का भी ख्याल नहीं रखा है। उपदेशात्मकता की प्रवृत्ति ने भी ऐतिहासिक निरंतरता को प्रभावित किया है। दो व्यक्ति राजा और राजदूत आपस में बातचीत कर रहें हैं उसी बीच किसी के मुँह से कवि पौराणिक गाथाओं का लम्बा वर्णन करने लगता है जो उस समय की गम्भीरता के लिहाज से बिल्कुल उचित नहीं है। उदाहरण के लिए मल्हारराव होल्कर एवं रूपराम कटारिया द्वारा ब्रजभूमि का लम्बा–चौड़ा वर्णन या फिर दिल्ली लूट के समय स्त्रियों, वस्तुओं, अस्त्र–शस्त्रों, मिठाईयों, कपड़ों आदि के नामों की लम्बी–लम्बी सूचियों को गिनवाना। यह सभी वर्णन केवल चमत्कार प्रदर्शन के लिए प्रयुक्त हुए हैं जिनका ऐतिहासिक विवरणों से कोई लेना–देना नहीं है। इसका महत्व

केवल तब है जब इन वस्तुओं या जातियों के नाम पर कोई शोध कर रहा हो तो शायद यह उसके लिए उपयोगी हो सकता है। इन सब कमियों के अलावा कवि सूदन ने अपने वर्ण्य विषय महाराजा सूरजमल के द्वारा लड़े गये 7 जंगों का जो विवरण दिया है उसमें वह अपना निर्वाह करने में नहीं चूके हैं। जैसाकि पहले कहा जा चुका है कि कवि का उद्देश्य सूरजमल के चरित्र का गान करना था अतः वह घटनाओं की तह में नहीं गये हैं। तत्कालिक कारणों के अलावा युद्ध के दौरान होने वाली गतिविधियों का वर्णन वह पूरे विस्तार से करते हैं। शत्रु के शिविर, दूतों की आवाजाही, युद्धकालीन रणनीतियां, संधि वार्ताएं, दुर्गों की घेराबंदी और सुरक्षा इन सभी का वर्णन ***सुजानचरित*** के हर जंग में देखने को मिल जाता है। इसके अलावा सूदन की कविता का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि वह केवल अपने आश्रयदाता की वीरता की ही प्रशंसा नहीं करते अपितु विरोधी सेना में मौजूद वीर व्यक्ति की भी प्रशंसा करने में कोई कोताही नहीं बरतते। **धासहरा दुर्ग की घेराबंदी के दौरान राव बहादुर सिंह की दूर्धर्ष वीरता का वर्णन वह बड़े ही ओजपूर्ण ढंग से करते हैं।** किले में जौहर के पश्चात 25 साथियों के साथ लड़ने आये बहादुरराव की वीरता के आगे सूरजमल की वीरता का वर्णन फीका पड़ जाता है और कवि की लेखनी उसकी तरफ मुड़ जाती है। सम्भवतः यह अंश पूरे ***सुजानचरित*** का सबसे मार्मिक और प्रेरणादायी अंश है। बहादुराव की मृत्यु पर विपक्षी सूरजमल की करूणा भी उसकी सहृदयता का परिचय देती है। दिल्ली लूट का वर्णन भी करूणोत्पादक है लेकिन कवि अपने आश्रयदाता को इसका जिम्मेदार नहीं ठहराता। कवि के अनुसार सूरजमल ने सेना को लूटमार की छूट सफदर जंग की मित्रता को प्रामाणित करने के लिए दी थी। किन्तु सूरजमल द्वारा लूटपाट की छूट देना किसी भी तरह से जायज नहीं ठहाराया जा सकता। इससे आम जनता बहुत परेशान हुई और उसे जान–माल का भारी नुकसान उठाना पड़ा।

***सुजानचरित*** के माध्यम से **दिल्ली साम्राज्य का पतनशील स्वरूप** भी उभर कर आता है। बादशाह की अकर्मण्यता ने उसे विलासी और चरित्रहीन बना दिया था। अहमदशाह स्वयं कोई शासनकार्य सम्पादित करते नहीं दिखता। सम्पूर्ण शासन सुत्र वजीर और अमीरों के हाथों में केन्द्रित हो गया था और कम–से–कम सम्पूर्ण भारत तो नहीं लेकिन मुगलों के कब्जे वाले इलाकों की जनता के पालनहार वही थे। क्षेत्रीय शक्तियों की गुटबाजी भी सुजानचरित में देखने को मिलती है। अपने स्वार्थ के लिए वे किसी भी पक्ष में जाकर मिल

सकते थे और मित्र को भी धोखा दे सकते थे। जाट, मराठा सम्बंधों को इस परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है जिसमें मराठे कभी सूरजमल के साथ तो कभी मुगलों के साथ मिलकर उत्तर में हमेशा दखल देते रहते थे। इस लिहाज से उस दौर में सूरजमल और सफदर जंग की मित्रता ही एक मिसाल है जो हर अच्छे–बूरे समय में उनके बीच बनी रही। इस मित्रता का पूरा श्रेय सूरजमल को जाता है क्योंकि उन्होंने सफदर जंग की मदद करने का निर्णय तब भी नहीं बदला जब मराठे भरतपुर राज्य तक चढ़ आये।

18वीं सदी के राजनीतिक अस्थिरता वाले युग में निश्चय ही **सूरजमल एक योग्य नेता** के रूप में उभर कर आये थे। सूदन ने उनका चरित्र चित्रण एक चतुर राजनीतिज्ञ के रूप में किया है जो कवि की झूठी प्रशंसा नहीं है। सूरजमल ने पूरी रणनीति के साथ अपनी शक्ति का विस्तार किया और मौका पड़ते पर उसका प्रदर्शन भी किया। उनकी शक्ति के विषय में तभी अंदाजा हो जाता है जब प्रथम जंग में जयपुर के उत्तराधिकार युद्ध में ईश्वरीसिंह मराठों के विरूद्ध सूरजमल से सहायता मांगते हैं। अगले ही जंग में शाही सेना को बख्शी उनसे हार जाता है और पुनः वे मुगल वजीर द्वारा रूहेलों के विरूद्ध मराठों के साथ शाही सेना की मदद करने के लिए आमंत्रित किये जाते हैं। कानूनगो ने अपनी पुस्तक में तत्कालीन इतिहास ग्रंथ ***इमाद उत् सादात*** के लेखक का सूरजमल के सन्दर्भ में उसका दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है जिससे यह साबित होता है कि सूरजमल का महत्व उस समय में कितना बढ़ गया था। उसने लिखा है –

''यद्यपि वह एक किसान की पोशाक पहनता था और केवल बृजभाषा ही बोल सकता था, तथापि वह जाट जाति का प्लेटो था। बुद्धि और चतुराई में, राजस्व एवं नागरिक मामलों के प्रबंध में हिन्दुस्तान के प्रतिष्ठित लोगों में उसकी तुलना केवल आसफ जाह बहादुर (निजाम) से हो सकती है।''[48]

***सुजानचरित*** से राजपूतों के सन्दर्भ में बहुत कम जानकारी मिलती है इससे यह पता चलता है कि भारतीय परिदृश्य पर राजपुत अब काफी कमजोर हो चले थे और छोटे राज्यों में अभी भी बंटे हुए थे। इस काव्यग्रंथ में केवल ईश्वरीसिंह का वर्णन ही आया है जिसके उत्तराधिकार युद्ध में सूरजमल गये थे। उस समय की मुख्य शक्ति मराठा थे जो मुगलों तक को प्रभावित करने की क्षमता रखते थे या ये कहें कि मुगलों की बादशाहत ही क्षेत्रीय शक्तियों की मदद पर बची हुयी थी तो अतिशयोक्ति न होगी। क्षेत्रीय शक्तियों के स्वरूप

पर बात करें तो मराठों के अलावा अन्य सभी क्षेत्रीय शक्तियां किसी बड़े राज्य निर्माण की ओर प्रवृत्त नहीं दिखती। इन सबका उद्देश्य केवल जनता से कर वसूलना और धन प्राप्ति था। हालांकि मराठे भी इससे अलग नहीं थे किन्तु सुसंगठित सैन्य शक्ति की दृष्टि से वह काफी बड़े क्षेत्र को प्रभावित करते थे।

सूदन के ***सुजानचरित*** से हमें भारत की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का पूरा आभास मिल जाता है। उनके आश्रयदाता सूरजमल का उन राजनीतिक गतिविधियों से सीधा सम्बंध था अतः कवि भी उनसे प्रत्यक्षतः जुड़ा हुआ था। सूदन ने निश्चय ही अपने समय के सबसे बुद्धिमान और चतुर राजनीतिज्ञों में से एक का सानिध्य प्राप्त किया था और उसके गुणों से प्रभावित होकर उन्होंने सूरजमल को अपना काव्यनायक बनाया जो झूठी प्रशंसा या चाटुकारिता पर आधारित नहीं था अपितु उसमें सचाई का भी अंश विद्यमान था।

# सन्दर्भ सूची

[1]सम्पा. डॉ रघुवीर सिंह, जंगनामा, प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. सं. 1
[2]भगवानदास तिवारी, रीतिकालीन हिन्दी वीरकाव्य, साहित्य सम्मेलन प्रयाग, इलाहाबाद, पृ. सं. 18
[3]सम्पा. डॉ रघुवीर सिंह, जंगनामा, प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. सं. 1
[4]सम्पा. डॉ रघुवीर सिंह, जंगनामा, प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. सं. 4
[5]वही, पृ. सं. 6
[6]सम्पा. डॉ रघुवीर सिंह, जंगनामा, प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. सं. 23
[7]सम्पा. डॉ रघुवीर सिंह, जंगनामा, प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. सं. 33
[8]इर्विन, जहांदारनामा, पृ. सं, 219
[9]सतीश चन्द्र, उत्तर मुगलकालीन भारत, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ. सं. 68
[10]सम्पा. डॉ रघुवीर सिंह, जंगनामा, प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. सं. 47
[11]सम्पा. डॉ रघुवीर सिंह, जंगनामा, प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. सं. 47
[12]सम्पा. डॉ रघुवीर सिंह, जंगनामा, प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. सं. 58
[13]सतीशचन्द्र, उत्तरमुगलकालीन भारत, पृ, सं, 68
[14]सम्पा. डॉ रघुवीर सिंह, जंगनामा, प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. सं. 22
[15]सम्पा. हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत, पृ. सं. 827
[16]सम्पा. राधाकृष्ण दास, सुजानचरित, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. सं. 3
[17],आाचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. सं. 217
[18]आाचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. सं. 217
[19]कालिका रंजन कानूनगो, जाटों का इतिहास, पृ. सं. 8
[20]स्मसामुद्दीन शाहनवाज खां, मआसिरूल उमरा, भाग–1, पृ. सं. 63
[21]सम्पा. राधाकृष्ण दास, सुजानचरित, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. सं. 7
[22]वही, पृ. सं. 26
[23]सम्पा. राधाकृष्ण दास, सुजानचरित, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. सं. 28
[24]वही, पृ. सं. 39
[25]सम्पा. राधाकृष्ण दास, सुजानचरित, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. सं. 57
[26]कालिका रंजन कानूनगो, जाटों का इतिहास, पृ. सं. 46
[27]सम्पा. राधाकृष्ण दास, सुजानचरित, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. सं. 72
[28]सम्पा. राधाकृष्ण दास, सुजानचरित, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. सं. 80
[29]सम्पा. राधाकृष्ण दास, सुजानचरित, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. सं. 100
[30]सम्पा. राधाकृष्ण दास, सुजानचरित, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. सं. 105
[31]गंगासिंह, भरतपुर राजवंश का इतिहास, पृ. सं. 139
[32]सम्पा. राधाकृष्ण दास, सुजानचरित, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. सं. 125
[33]वही, पृ. सं. 127
[34]सम्पा. राधाकृष्ण दास, सुजानचरित, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. सं. 148ि
[35]गंगासिंह, भरतपुर राजवंश का इतिहास, पृ. सं. 141
[36]सम्पा. राधाकृष्ण दास, सुजानचरित, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. सं. 157
[37]वही,, पृ. सं. 161
[38]आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रयाग पुस्तक सदन, इलाहाबाद, पृ. सं. 217
[39]सम्पा. राधाकृष्ण दास, सुजानचरित, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. सं. 224
[40]सम्पा. राधाकृष्ण दास, सुजानचरित, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. सं. 238
[41]कालिका रंजन कानूनगो, जाटों का इतिहास, पृ. सं. 53
[42]नटवर सिंह, महराजा सूरजमल, पृ. सं. 75
[43]जदुनाथ सरकार, फाल ऑफ द मुगल एम्पायर से मुहम्मद शफी तेहरानी के इतिहास ***मीरात ए वरीदात*** से उद्धृत, पृ. सं. 8
[44]कुंवर नटवर सिंह, महाराजा सूरजमल, पृ, सं. 67
[45]सम्पा. राधाकृष्ण दास, सुजानचरित, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. सं. 2
[46]सम्पा. राधाकृष्ण दास, सुजानचरित, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. सं. 3
[47]वही, पृ, सं 6
[48]कालिका रंजन कानूनगो, जाटों का इतिहास, पृ. सं. 39

# पंचम अध्याय

## पद्माकर की रचनाओं में इतिहास : मुगल साम्राज्य का पतन और अंग्रेजों के आने की आहट

5.1 पद्माकर का जीवन परिचय एवं रचनाकर्म

5.2 पद्माकर के समय की राजनीतिक उथल–पुथल

5.2.1 भारत में गोसाईं समुदाय

5.2.2 तत्कालीन बुंदेलखंड का राजनीति परिदृश्य

5.3 *हिम्मतबहादुर विरूदावली* का वर्ण्य विषय

5.3.1 अजयगढ़ पर युद्ध का कारण

5.3.2 युद्ध की समाप्ति एवं उसके परिणाम

5.4 पद्माकर की अन्य रचनाओं में ऐतिहासिक साक्ष्य

5.5 भारत में अंग्रेज आगमन

# पद्माकर की रचनाओं में इतिहास : मुगल साम्राज्य का पतन और अंग्रेजों के आने की आहट

रीतिकाल के अंतिम दौर के महत्वपूर्ण कवि पद्माकर का नाम हिन्दी साहित्य के इतिहास में बड़े आदर के साथ लिया जाता है। उनकी कविताओं में रसानुभूति और भावात्मक संवेदना पाठकों के हृदय पर विशिष्ट प्रभाव उत्पन्न करती है जो उनकी लोकप्रियता का प्रमुख एक बड़ा कारण है। रीतिकाल के आलोचक इतिहासकार भी उनकी कविताओं की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हैं। यहां तक कि वीरकाव्यों के मर्मज्ञ विद्वान भी उनकी वीरचरितात्मक कृति ***हिम्मतबहादुर विरूदावली*** को वीर रस की सर्वश्रेष्ठ रचना मानते हैं। पद्माकर की यह कृति विरूदावली काव्य की श्रेणी में आती है जिसका ऐतिहासिक विवेचन इस अध्याय में अपेक्षित है। इस कृति में 18 वीं सदी के उत्तरार्द्ध का राजनीतिक परिदृश्य संक्षेप में रूपायित हुआ है।इस कृति के माध्यम से तत्कालीन उत्तर भारत में विभिन्न क्षत्रीय राजाओं के बीच की आपसी कलह को देखा जा सकता है जिसने अन्ततः भारत को एक विदेशी सत्ता के हाथों में जाने का रास्ता तैयार कर दिया था। पद्माकर उस समय के उन गिने–चुने कवियों में से एक हैं जिन्होंने एक छंद के जरिये अपने आश्रयदाता मराठा महादजी सिंधिया को अंग्रेजों के खिलाफ खड़े होने के लिए प्रेरित किया था।

## 5.1पद्माकर का जीवन परिचय एवं रचनाकर्म

रीतिकाल के उत्तरार्द्ध के महत्वपूर्ण कवियों में पद्माकर का स्थान अन्यतम है। काव्यप्रतिभा के धनी पद्माकर को हिन्दी साहित्येतिहास में काफी अधिक मान–सम्मान मिला है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनके सम्बंध में अपने इतिहास में जो लिखा है उससे इनके महत्व पर प्रकाश पड़ता है,वह लिखते हैं–

''रीतिकाल के कवियों में सहृदय समाज इन्हें श्रेष्ठ स्थान देता आया है। ऐसा सर्वप्रिय कवि इस काल के भीतर बिहारी को छोड़ दूसरा नहीं हुआ। इनकी रचना की रमणीयता की इस सर्वप्रियता का एकमात्र कारण है। रीतिकाल की कविता इनकी और प्रतापसाहि की वाणी द्वारा अपने पूर्ण उत्कर्ष को पहुंचकर फिर ह्रासोन्मुख हुई। अतः जिस प्रकार ये अपनी परंपरा के परमोत्कृष्ट कवि हैं उसी प्रकार प्रसिद्धि में अंतिम भी। देश में जैसा नाम इनका गूँजा वैसा फिर आगे चलकर किसी और कवि का नहीं।''[1]

आचार्य शुक्ल की इस विवेचना से यहपता चलता है कि पद्माकर अपने समय के लोकप्रिय कवि थे। काव्य की रमणीयता की तुलना बिहारी से करना निश्चय ही उनकी लोकप्रियता की तरफ संकेत करता है। पद्माकर के काव्य में कल्पना और भाव एकरस होकर अपनी अनुभूति में पाठक पर जो प्रभाव छोड़ते हैं; वह चमत्कृत कर देने वाला होता है। रीतिबद्ध शैली पर ऐसी कविताओं की रचना बहुत ही कम कवि कर पाये हैं। इसी लिए पद्माकर की काव्य प्रतिभा को उत्कृष्ट माना गया है। इनके समकालीन कवियों में ठाकुर बुंदेलखंडी, द्विजदेव, चाचा हित वृन्दावन दास, बोधा जैसे कवि भी थे। इनमें से ठाकुर तो इनके आश्रयदाता हिम्मतबहादुर के भी पास गये थे और उनके दरबार में दोनों का मिलन हुआ था।उस समय रीति कविता के समानान्तर ही उर्दू में भी कविताएं रची जा रहीं थीं। 18वीं सदी में उर्दू कविता के महान शायर रचनाशील थे और ब्रज कविता की अपेक्षा उनका स्वर अधिक युगीन चेतना से सम्पृक्त था। मीर, गालिब, सौदा, नजीर अकबराबादी जैसे शायर कवि समाज के प्रति अधिक संवेदनशीलता अपनी रचनाओं में दिखा रहे थे। उनकी रचनाओं में अपने समय की परिस्थितियों पर दुख और हताशा दोनों देखने को मिलते हैं। तत्कालीन दिल्ली के हश्र पर मीर का एक शेर है –

*''दिलो, दिल्ली दोनों हैं गर्चे खराब,*
*पर कुछ लुत्फ उस उजड़े नगर में है।''*[2]

यहां दिल्ली के उजड़ने का जिक्र अपने दिल के साथमीर कर रहे हैं जो यह बतलाता है कि दिल्ली का वैभव अब समाप्तप्राय था।मीर के बाद के शायरों में भी इस तरह के उद्धरण काफी मिल जाते हैं किन्तु उसके बरक्स ब्रजकविता अभी–भी पुराने काव्य संस्कार से

चिपकी हुई थी। पद्माकर इस तथ्य के अच्छे उदाहरण हैं। उर्दू कवियों के बरक्स पद्माकर अभी भी दरबारों के पुराने वैभव की कविताएं लिख रहे थे –

*''गुलगुली गिल मैं गलीचा हैं गुनीजन हैं,*
*चांदनी है चिक है चिरागन की माला है,*
*कहै पद्माकर त्यौं गजक गिजा है सजी;*
*सेज है, सुराही है सुरा है और प्याला है।''*[3]

कविवर केशव की ही भांति पद्माकर के पूर्वज भी राजाओं के दरबार में रहकर यज्ञ अनुष्ठान एवं राजपुरोहिती का कार्य करते थे। बुंदेलखंड के विभिन्न राजदरबारों में इनका काफी मान–सम्मान हुआ करता था। वस्तुतः पद्माकर के पूर्वज दक्षिण भारतीय तैलंग ब्राह्मण थे जिनका सम्बंध तैत्तिरीय शाखा के यजुर्वेदी ब्राह्मणों से जोड़ा जाता है। 16वीं सदी के आस–पास इनके पूर्वज तीर्थाटन करने के लिए उत्तर में आये और यहीं बस गये। इनका निवास स्थान मथुरा रहा और ये विठ्ठलनाथ के अनुयायी बन गये। इन ब्राह्मणों के दो समुदायों मथुरास्थ और गोकुलास्थ में से पद्माकर का सम्बंध मथुरा वाली शाखा से था।[1] पद्माकर का जन्म सागर में 1753 ई0 या सम्वत् 1810 में हुआ था।[2] इनके पिता और दादा दोनों ही काव्य रचना में प्रवीण थे अतः पद्माकर को यह प्रतिभा विरासत में मिली थी। इनके दादा जनार्दन भट्ट और पिता मोहन लाल का सभी बुंदेलखंडी राजदरबारों में अच्छा सम्मान था और वे उन राजाओं के लिए मंत्रसिद्धियां और यज्ञ अनुष्ठान भी किया करते थे।

पद्माकर अपने पूर्वजों के बनाये हुए रास्ते पर चले और ब्रजभाषा में काव्य रचना की। वह कविता में अपनी काव्य प्रतिभा के कारण काफी प्रतिष्ठित हुए हैं। उस समय उत्तर भारत के के लगभग सभी महत्वपूर्ण राजदरबारों में पद्माकर गये और राजकवि के रूप में सम्मानित हुए। पद्माकर में कवित्व प्रतिभा उत्कृष्ट कोटि की थी जिसके कारण रीतिकाल के आखिरी दौर के वह सबसे प्रतिभाशाली कवि के रूप में समादृत हैं। कवि को राजदरबारों से अच्छी आय प्राप्त होती थी जिसकी वजह से वह बड़े ठाट–बाट से जीवन

[1]इस सन्दर्भ में मिश्रबन्धुओं ने *मिश्रबन्धु विनोद* में लिखा है –''पद्माकर भट्ट तैलंग ब्राह्मण थे। उनका जन्म संवत् 1810 में बांदा में हुआ और संवत् 1890 में वे कानपुर में गंगातट पर स्वर्गवासी हुए।...जगद्विनोद के अन्त में लिखा है 'मथुरास्थाने मोहनलालभट्टात्मज कविपद्माकरविरचित' जिससे जान पड़ता है कि महाशय माथुर शाखा के थे।

[2]कुछ इतिहासकार इनका जन्म बांदा में भी मानते हैं।

व्यतीत करते थे। उनका लाव–लश्कर लेकर चलने का एक बड़ा ही मनोरंजक किस्सा मशहूर है। राजा प्रतापसिंह के आश्रय में रहने के दौरान एक बार वह बूंदी के रास्ते से गुजर रहे थे तब उनके सेवकों की संख्या को देखकर वहां के निवासियों को भ्रम हो गया कि कोई राजा उन पर चढ़ाई करने आ रहा है। तब उन्होंने एक छंद रचकर उनका भ्रम दूर किया।[3]

अपने आरंभिक दिनों में सर्वप्रथम पद्माकर तत्कालीन सागर नरेश रघुनाथराव अप्पा साहब के यहां रहे। इसके पश्चात् ये कुछ समय जैतपुर के राजदरबार में रहे जहां इनकी मुलाकात नोने अर्जुनसिंह से हुई। नोने अर्जुनसिंह ही इनके ऐतिहासिक काव्य ग्रंथ ***हिम्मतबहादुर विरूदावली*** के प्रतिपक्ष नायक हैं। नोने अर्जुनसिंह की भी प्रशंसा में कुछ पद कवि ने लिखे हैं जिससे उन दोनों के सम्बंधों के विषय में हमें जानकारी प्राप्त होती है। पद्माकर ने उन्हें अपना शिष्य भी बनाया था और लक्षचंडी अनुष्ठान द्वारा उनकी तलवार सिद्ध करायी थी।

जैतपुर दरबार में रहने के पश्चात् कवि पद्माकर हिम्मतबहादुर उर्फ अनूपगिरि के दरबार में रहने लगे। अनूपगिरि अवध के नवाब शुजाउद्दौला के अधीन रजधान के जागीरदार थे जो उन्हें नवाब ने फौज की देखभाल के लिए देरखा था। बनगांव के युद्ध के समय वह अलीबहादुर के यहां रहने लगे थे। जब अनूपगिरि और अर्जुनसिंह के मध्य युद्ध हुआ तब पद्माकर उन्हीं के दरबार में थे। यह युद्ध सन् 1792 ई0 में हुआ था। इसी युद्ध का वर्णन कवि ने ***हिम्मतबहादुर विरूदावली*** में किया है।

हिम्मतबहादुर के बाद पद्माकर सितारा के महाराज रघुनाथराव के दरबार में गये। यहां इनका बहुत सम्मान हुआ और इन्हें 1 लाख रूपये और दस गांव उपहार में मिले। सितारा राजदरबार के बाद पद्माकर जयपुर राजदरबार में राजा प्रतापसिंह के आश्रय में पहुंचे। राजा प्रतापसिंह रसिक जीव थे और स्वयं भी कविता करते थे। इन्हीं के राजदरबार में ***जगद्विनोद*** और ***प्रतापसाहि*** की रचना की। ***पद्माभरण*** भी सम्भवतः उन्हीं के राजदरबार में लिखा गया। जयपुर में पद्माकर बहुत विलासी जीवन बिताते थे। ***प्रतापसाहि*** नामक रचना के विषय में विद्वानों में बहुत मतभेद है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, मिश्रबन्धु जैसे

[3]उस छंद की पंक्तियां हैं –
नाम पद्माकर डराउ मति कोउ भैया, हम कविराज हैं प्रताप महाराज के।

साहित्येतिहासकारों ने इस पुस्तक का उल्लेख नहीं किया है। कुछ विद्वान इसे पद्माकर की ही रचना मानते हैं। युद्ध की ऐतिहासिकता पर भी सवाल उठाये गये हैं क्योंकि इसमें केवल प्रशस्ति रचना के लिए ही युद्ध का सहारा लिया गया है।

जयपुर के बाद पद्माकर कई अन्य राजघरानों में गये लेकिन कहीं भी टिक कर नहीं रहे। ये जहां भी गये सबकी प्रशंसा में दो–चार पद ये जरूर लिखते थे। कहीं–कहीं जाने पर इन्हें उपेक्षा भी मिली लेकिन कवित्व प्रतिभा के बल पर पद्माकर ने उन्हें चमत्कृत कर दिया और उन राजाओं ने बाद में उन्हें काफी मान–सम्मान दिया। राजदरबारी परिवेश में रहने के कारण पद्माकर ने अपने यौवनकाल में बहुत विलासी जीवन जिया था। बाद में वह विरक्त हो गये थे। उन्हें कुष्ठ रोग हो गया था और वह इलाज के बाद भी ठीक नहीं हो रहा था। अतः वह गंगा स्नान के लिए कानपुर के लिए रवाना हो गये। रास्ते में ही उन्होंने ***गंगा लहरी*** की रचना की जो उनकी आखिरी रचनाओं में से एक है। ऐसा प्रतीत होता है कवि श्रृंगार की भावना के बाद अब भक्ति में आकर विश्राम कर रहा था। कहा जाता है कि गंगा सेवन के पश्चात् कवि का कुष्ठ रोग बिल्कुल ठीक हो गया था। किन्तु उसके बाद भी वह अधिक दिन तक जीवित नहीं रहे और सन् 1833 ई0 में उनकी मृत्यु हो गयी। कुछ विद्वान उनकी मृत्यु 1827 ई. भी स्वीकार करते हैं।

## 5.2 पद्माकर के समय की राजनीतिक उथल–पुथल

पद्माकर के समय में भारत में राजनीतिक अस्थिरता का दौर चल रहा था और जैसाकि हम देखते हैं कि पद्माकर स्वयं कई राजदरबारों में रहे और सभी राजाओं की प्रशंसा वह राज्य के स्वंतत्र शासक की ही भांति करते हैं। ऐसे पदों से यह आभास होता है कि वे राजा की अतिशयोक्तिपूर्ण वीरता का बखान कर रहे हैं साथ ही यह भी व्यंजित होता है कि वे राजा भी स्वयं को स्वतंत्र शासक समझने लगे थे और केन्द्रीय सत्ता का कोई भी प्रभाव अब उन पर नहीं रह गया था। मुगल सत्ता के चिन्ह् पद्माकर के पदों में नहीं मिलते और स्वयं पद्माकर जैसे कवि धन और मान पाने के लिए मुगल शासक के पास नहीं जाते जबकि वह अपने समय के लगभग सभी महत्वपूर्ण राजाओं के राजदरबार में

सम्मान प्राप्त करने के लिए अवश्य जाते थे। सूदन के काव्य तक अभी मुगल सत्ता उत्तर भारत की राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान रखती आयी थी परंतु पद्माकर का समय आते–आते वह केवल नाम–मात्र के लिए राजनीतिक महत्व रखने लगी थी। बुंदेलखंड का पूरा क्षेत्र जहां पद्माकर का अपना क्षेत्र भी था। वहां भी अब विभिन्न राजदरबार अस्तित्व में आ गये थे जिसमें ओरछा, जैतपुर, चरखारी, पन्ना, दतिया, बांदा, अजयगढ़ जैसे राजघराने थे जिनमें आपस में भी राज्य विस्तार के लिए संघर्ष होते रहते थे। पद्माकर ने जिस युद्ध का वर्णन अपने इतिहास ग्रंथ ***हिम्मतबहादुर विरूदावली*** में किया है वह बुंदेलखंड में ही लड़ा गया था।

पद्माकर के समय में मराठे, राजपूत, बुंदेल और अवध ये ही उत्तर की प्रमुख राजनीतिक शक्तियां थे और छोटे–छोटे राजनीतिक ईकाईयों में बंटे हुए थे। इस बीच भारत में अंग्रेज भी आ चुके थे और उत्तर भारत के महत्वपूर्ण हिस्सों में अपनी धाक जमा चुके थे। पद्माकर के जन्म के कुछ समय बाद ही 1757 ई. में वह बंगाल के नवाब को हराकर न सिर्फ आर्थिक बल्कि राजनीतिक रूप से भी वह भारत की आंतरिक घटनाओं में प्रमुख भागीदारी निभाने लगे थे। मराठे भी आपसी फूट के कारण संगठित होकर उन्हें टक्कर देने में समर्थ नहीं रह गये थे। अंग्रेज मराठा युद्धों से यह साबित हो गया था कि अंग्रेज ही अब भारत की प्रमुख राजनीतिक शक्ति थे।

### 5.2.1 भारत में गोसाईं समुदाय

सूदन के काव्य में कुछ ऐसी घटनाओं का जिक्र हुआ है जिसका सम्बंध पद्माकर के समय से भी जुड़ा हुआ है और उनकी कविता से भी। यह पद्माकर के आश्रयदाता से सम्बन्धित है।राजेन्द्रगिरि का जिक्र सूदन ने अपने ***सुजानचरित*** में किया है जिसके शिष्य और उत्तराधिकारी के दरबार में पद्माकर रह रहे थे। ***हिम्मतबहादुर विरूदावली*** में सूदन की कई काव्य विशेषताएं भी देखी जा सकती हैं उदाहरणस्वरूप युद्ध वर्णन के समय तलवारों एवं अन्य अस्त्र–शस्त्रों का वर्णन भी पद्माकर ने सूदन की शैली पर किया है। ऐसी प्रवृत्तियां रीतिकाल के शुरूआती चरितकाव्य रचयिताओं केशव, भूषण या लालकवि में नहीं पायी जाती लेकिन सूदन और पद्माकर में यह खासतौर से मिलती है। सूदन के छठवें

जंग में दिल्ली लूट का वर्णन है जिसे सफदरजंग के अनुरोध पर जाट राजा सूरजमल ने अंजाम दिया था। इस लूट के पश्चात् सफदरजंग वापस अवध अपने सूबे में लौट गया था। वहां उसने एक स्वतंत्र रियासत की नींव डाली। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र शुजाउद्दौला अवध का नवाब बना जो इतिहास में बक्सर के युद्ध और अपनी कलाप्रियता के लिए काफी मशहूर है। उसके समय में अवध न सिर्फ महत्वपूर्ण राजनीतिक केन्द्र था अपितु सांस्कृतिक उन्नयन की दृष्टि से भी वह समकालीन राजदरबारों से कहीं अधिक समृद्ध था। उसी का सेनापति हिम्मत बहादुर या अनूपगिरि था जो बुन्देलों के क्षेत्र रजधान में बतौर जागीरदार रह रहा था।

***हिम्मतबहादुर विरूदावली*** में हिम्मत बहादुर के पूर्व जीवन चरित या उसके बाद के चरित के विषय में पद्माकर ने कोई महत्वपूर्ण सूचना नहीं दी है। अतः युद्ध की परिस्थितियों को समझने के लिए अनूपगिरि के सम्बन्ध में उसकी राजनीतिक स्थिति की जांच करना जरूरी है। अनूपगिरि का सम्बंध गोसाईयों से था जो 17 वीं सदी के उत्तरार्द्ध में काफी शक्तिशाली हो गये थे। इनके पास इनकी अपनी नागा सेना होती थी जो युद्धकला में प्रवीण थी। इनका अस्तित्व भारत में लम्बे समय से था और आज भी इनके सम्प्रदाय के लोग साधु–संतों के रूप में मिलते हैं। इनका उल्लेख ऐतिहासिक उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा ने अपने ***कचनार*** नामक उपन्यास में भी किया है। गोसाईंयों का गोसाईं नाम **'गोस्वामी'** शब्द का तद्भव रूप है। यह सम्प्रदाय प्राचीन काल में यज्ञों को सम्पादित करने वाला माना गया है। इतिहासकार टाड ने इनके सम्बंध में लिखा है कि गोसाई लोगों का दूसरा नाम धूनीर्धर है क्योंकि यह लोग अपने शरीर में घी और भभूत लगाकर रखते हैं। गोसाईं लोगों की एक और विशेषता इनका राजनीति के साथ सम्बंध है। आमतौर पर साधू–संतों का राजनीति से कोई प्रत्यक्ष सम्बंध नहीं देखा जाता लेकिन गोसाई सम्प्रदाय इसका अपवाद है। रीतिकाल में राजनीति और संत समाज का सम्बंध उस युग की एक प्रमुख विशेषता थी। गोसाईं सम्प्रदाय के लोग अपना सम्बंध क्षत्रियों से जोड़ते हैं अतः युद्धों में भाग लेने से वह गुरेज नहीं करते थे। चूंकि इस सम्प्रदाय के सदस्य युद्ध कला में प्रवीण होते थे तथा इनके पास इनकी अपनी संगठित सेना होती थी। अतः तत्कालीन क्षेत्रीय राजा इनका इस्तेमाल अपने विरोधियों से युद्ध के दौरान किया करते थे। इन गोसाईयों का प्रमुख स्थान मध्य प्रदेश और राजस्थान था जहां के राजाओं के साथ इनके घनिष्ठ सम्बंध होते

थे। दिल्ली के बादशाह भी युद्धों में इनका सहयोग प्राप्त करने की कोशिश करते थे। अनूपगिरि के गुरू राजेन्द्रगिरि का वर्णन सूदन के ***सुजानचरित*** में मुगल वजीर के समर्थक के रूप में आया है। अनूपगिरि उन्हीं राजेन्द्रगिरि के शिष्य थे और अपने समय के बेहतरीन योद्धा और चतुर राजनीतिज्ञ थे। हालांकि पद्माकर ने अनूपगिरि को राजेन्द्रगिरि का पुत्र माना है जो ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य नहीं है। अनूपगिरि की गुरूवंशावली निम्न प्रकार है–

संदानंदगिरि

↓

अंकारगिरि

↓

ब्रह्मगिरि

↓

अंनंतपुरूषोत्तम

↓

महंत त्रयंम्बकगिरि

↓

संतोषगिरि

↓

नरहरिनाथ

↓

मनोहरनाथ

↓

चन्दननाथ

↓

नारायणनाथ

↓

ध्याननाथ

↓

राजेन्द्रनाथ

↓

अनूपगिरि एवं उमरावगिरि

(ये दोनों ही भाई थे और साथ में ही गुरू के संरक्षण में रहते थे।)

यह वंश परम्परा मान कवि ने अपने काव्य ग्रंथ ***अनूप प्रकाश*** में दिया है। मानकवि ने निम्न कवित्त में इस गुरूपंरपरा का उल्लेख किया है –

*''सदानंदजी प्रकटे वो उंकारगिरि तिन तै,*

*ब्रह्मदेवगिरि गनियतु है।*
*तिनके अनन्त पुरूषोत्तम महंत त्रिमंगिरि,*
*सन्तोषगिरि सोभा सुनियतु है।।*
*नरहरिनाथ मनोहर जी चन्दन जी,*
*नारायणनाथ तै सनाथ बनियतु है।*
*ध्याननाथ राजा राजेन्द्रगिरि नामा बड़ी,*
*गिरिनामवंश की बड़ाई भनियतु है।।''*[4] *( **अनूपप्रकाश** )*

***अनूपप्रकाश*** ग्रंथ को डॉ. राजमल बोरा ने संपादित कर प्रकाशित करवाया है। एक लम्बे समय तक यह ग्रंथ अप्राप्त था। इसकी एक हस्तलिखित प्रति लंदन की इंडिया म्यूजियम लाइब्रेरी में भी रखी है। यह ग्रंथ अनूपगिरि के काल का अच्छा ऐतिहासिक परिदृश्य प्रस्तुत करता है अतः बड़े महत्व का ग्रंथ है। ***पद्माकर की रचनाओं का मूल्यांकन*** नामक शोध प्रबंध की लेखिका सुषमा शर्मा ने अपने ग्रंथ में सूचना दी है कि इस ग्रंथ का एक अपूर्ण हस्तलेख उनके पिता के पास था जिसका अध्ययन उन्होंने किया है और वहीं से यह कवित्त लिया है। ***अनूपप्रकाश*** अनूपगिरि के जीवन पर लिखा गया महत्वपूर्ण काव्य ग्रंथ है जिसमें उनके समय की राजनीतिक घटनाओं पर हमें महत्वपूर्ण जानकारियां मिलती हैं। पद्माकर के ***हिम्मतबहादुर विरूदावली*** की घटनाओं की ऐतिहासिकता उक्त ग्रंथ से भी साबित हो जाती है।

गोसाईयों का उपनाम **'गिरि'** इनके मूल स्थान गिरनार पर्वत पर रहने के कारण पड़ा और उनसे सम्बंधित समस्त वंशावलियों में भी यही उपनाम मिलता है। अनूपगिरि के गुरू राजेन्द्रगिरि थे और उनकी गुरूभक्ति से प्रसन्न होकर नारायण नाथ जो उनके गुरू के गुरू थे उन्होंने उनके राजा होने का आशीर्वाद दिया था।

राजेन्द्रगिरि के समय में बुन्देलखंड के कुलपहाड़ में छत्रसाल के पुत्र जगतराज राज्य करते थे। यहीं उनकी राजेन्द्रगिरि से मुलाकात हुयी और जगतराज ने उनका काफी सम्मान किया। इसी स्थल पर अनूपगिरि और उमरावगिरि उनकी सेवा में आये और उनके शिष्य बन गये। यहां राजेन्द्रगिरि को कुलपहाड़ की गद्दी मिली।

### 5.2.2 तत्कालीन बुंदेलखंड का राजनीतिक परिदृश्य

बुन्देलखंड में छत्रसाल के आखिरी दिनों में हुए मुहम्मद खां बंगश से एक युद्ध में महाराज छत्रसाल ने अपने राज्य की रक्षा के लिए तत्कालीन मराठा पेशवा बाजीराव से मदद मांगी थी। पेशवा ने त्वरित अभियान करके महाराजा छत्रसाल के राज्य की रक्षा की जिसके एवज में महाराज ने उन्हें अपना दत्तक पुत्र स्वीकार किया और अपने राज्य का तृतीयांश उन्हें दे दिया। पेशवा बाजीराव ने अपने राज्य में गोविन्द बल्लाल को नियुक्त किया जो सागर में रहकर राज्य संभालते थे। राजेन्द्रगिरि की कुछ झड़पें मराठों के साथ हुयी और राजेन्द्रगिरि को कालपी की ओर प्रस्थान करना पड़ा। लगभग इसी समय राजेन्द्रगिरि मुगल वजीर सफदर जंग के करीब आये और उन्होंने अहमद खां बंगश के साथ हुए युद्ध में वजीर की मदद की जिसका उल्लेख सूदन के ***सुजानचरित*** में मिलता है। इस युद्ध में नागा योद्धाओं ने अपने शौर्य का अभूतपूर्व प्रर्दशन किया। इस युद्ध के बाद राजेन्द्रगिरि भी मुगल मनसबदार बनाये गये। यह सब घटनाएं 1752 ई. की हैं क्योंकि इसी वर्ष राजेन्द्रगिरि को मुगल बादशाह द्वारा सहारनपुर की मनसबदारी प्रदान की गयी थी। यह सब घटनाएं विस्तारपूर्वक मान कवि के ***अनूपप्रकाश*** में वर्णित हैं।

***सुजानचरित*** के अनुसार वजीर सफदर जंग को उसके पुत्र शुजाउद्दौला सहित मुगल दरबार से बड़े ही छल–कपट से निकाला गया था जिसके प्श्चात् वजीर ने जाट राजा सूरजमल से कहकर दिल्ली पर आक्रमण करवा कर के उसे बुरी तरह से लूटा। यह घटना सन् 1752 ई. की है। वजीर की ही वजह से राजेन्द्रगिरि को मनसबदारी मिली थी। अतः राजेन्द्रगिरि ने भी वजीर का ही साथ दिया। इस युद्ध में मुगल वजीर इमादुलमुल्क

गाजीउद्दीन था जिसने काली पहाड़ी पर युद्ध करते हुए राजेन्द्रगिरि को गोली मार दी जिससे उनकी मृत्यु हो गयी। उनकी मृत्यु का वर्णन सूदन कवि ने इस प्रकार किया है –

*''तिहि फरमंडल बीच परिय गोलिय झर–झर झर।*
*तह फुट्टिय कर गौर श्रौन छुटिटय छर छर छर।*
*तउ न चल्लिय धीर वीर अग्गहि हय हंकिय।*
*तथ्थहिं हर सुख विप्र छिप्र घाइय अनससंकिय।*
*तब ही अचान राजेन्द्रगिरि लगी गोली तन ते छुट्यौ।*
*वह सूर समर मघि स्वामि हित परमहंस गति को बुट्यो।।*
*मर्‌यो सुन्यो राजेन्द्रगिरि, मन वजीर दुख पाई।*
*जुद्धभूमि तैं सुभट सब, डेरनु लिये बुलाई।।''*[6] ***(सुजानचरित)***

इस युद्ध में राजेन्द्रगिरि की मृत्यु होना मान कवि ने भी अपने काव्यग्रंथ में लिखा है जिसकी पुष्टि एक तत्कालीन इतिहास ग्रंथ से भी हो जाती है। इमाद नामक तत्कालीन इतिहासकार अपने इतिहास ग्रंथ ***इमाद सआदते*** में यह उल्लेख करता है कि इस्माइल खां ने ईर्ष्यावश राजेन्द्रगिरि की गोली मारकर हत्या करवा दिया था।[4] इस हत्याकांड के पश्चात् सफदरजंग ने उमरावगिरि को नया सेनानायक बनाया और राजेन्द्रगिरि की गद्दी पर उसे बैठाया। सफदर जंग और अनूपगिरि दिल्ली लूट की घटना के पश्चात् अवध लौटकर आये और अनूपगिरि को महत्वपूर्ण मनसब प्रदान कर सफदरजंग ने उसे सम्मानित किया। यह सभी घटनायें पद्माकर के जन्म के पूर्व की हैं। सन् 1757 तक भारत में अवध एक महत्वपूर्ण राजनीतिक केन्द्र बन गया था। इसीलिए भारत में अंग्रेजों की महत्वपूर्ण विजय अवध के खिलाफ ही थी।

सफदर जंग के पश्चात् उसका पुत्र शुजाउद्दौला अवध का अगला नवाब बना। उसने अपना प्रमुख सेनानायक अनूपगिरि को बनाया। उस समय तक अनूपगिरि का राजनीतिक महत्व काफी बढ़ गया था और शुजाउद्दौला के समय में वह उत्तर भारत में काफी शक्तिशाली था और शुजाउद्दौला के आदेश पर कुछ भी करने के लिए तैयार रहता था। कहा जाता है कि नवाब के आदेश पर दोनों गोसाईं बन्धुओं ने एक खत्री की पुत्री को पलंग सहित उसके घर से उठवा लिया था और नवाब द्वारा बलात्कार के बाद उसे सुबह

[4]यह प्रकरण सुषमा शर्मा ने विस्तार से अपनी पुस्तक में दिया है।

घर छोड़ गये थे। इससे प्रकरण से यह जाहिर होता है कि वे नवाब के समय में काफी शक्तिशाली थे।

उत्तर भारत में इस समय तक न सिर्फ मराठे बल्कि अंग्रेज भी राजनीतिक रूप से दखल देने लगे थे जिनका उल्लेख हिन्दी कवियों ने छिटपुट रूप से किया है। स्वयं पद्माकर ने अंग्रेजों की बढ़ती शक्ति पर अपने एक पद में उल्लेख किया है जो यह साबित करता है कि अंग्रेज अपना शक्ति विस्तार तेजी से कर रहे थे और कोई भी भारतीय राजा उस खतरे की गंभीरता को नहीं समझ रहे थे जो उनके सामने तुरंत ही आने वाली थी।

पद्माकर का ***हिम्मतबहादुर विरूदावली*** इन्हीं ऐतिहासिक परिस्थितियों लिखा गया था। हालांकि जब यह युद्ध हुआ तब तक अवध अंग्रेजों के अधिकार में आ चुका था। हिम्मतबहादुर उर्फ अनूपगिरि की निष्ठा अब अवध में न होकर मराठों के साथ थी। वैसे तो इस ग्रंथ में सिर्फ एक ही युद्ध का वर्णन है और उसमें कवि का मुख्य उद्देश्य हिम्मतबहादुर अथवा अनूपगिरि की वीरता की प्रशंसा करना ही है। अतः पद्माकर केशव अथवा लालकवि की भांति कोई राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति हेतु इस ग्रंथ की रचना में प्रवृत्त होते नहीं दिखते या फिर हिम्मतबहादुर के जीवन के अन्य राजनीतिक घटनाओं का वर्णन भी नहीं करते।उस समय तक हिम्मतबहादुर एक राजा की भांति रहने लगे थे और दरबार भी लगाते थे। पद्माकर उनके दरबार में गये थे और वहीं पर उन्होंने ***हिम्मतबहादुर विरूदावली*** की रचना की। पद्माकर एक जगह टिककर कहीं भी किसी दरबार में नहीं रह पाये इसलिए भी वे किसी राजा पर कोई विस्तृत चरितकाव्य जैसा ग्रंथ नहीं लिख पाये। उन्हें उसकी जरूरत नहीं महसूस हुई होगी लेकिन वे जिस भी राजा के यहां रहे उसकी प्रशंसा में कुछ छंद अवश्य रचे हैं।

## 5.3 *हिम्मतबहादुर विरूदावली* का वर्ण्य विषय

***हिम्मतबहादुर विरूदावली*** की रचना के समय के सन्दर्भ में पद्माकर ने स्वयं जो सूचना दी है उसी को टीकमसिंह तोमर ने सही माना है। युद्ध के समय का उल्लेख पद्माकर ने जो दिया है वह 18 अप्रैल, 1792 ई. दिन बुधवार है। युद्ध के दौरान ही उसे पद्माकर ने

लिखा होगा।इस ग्रंथ का आरंभ युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए श्रीकृष्ण की स्तुति से होता है और कवि हिम्मतबहादुर की विजय के लिए उनसे प्रार्थना करते हैं। उसके बाद कवि हिम्मतबहादुर की प्रशंसा में अनेक छंद कहता है और हिम्मत बहादुर की वीरता, दानशीलता, धर्मप्रियता, दयालुता जैसे गुणों की प्रशंसा करता है। अन्य रीतिकालीन कवियों की तरह पद्माकर भी हिम्मतबहादुर को हिन्दुओं की लाज रखने वाला शासक कहते हैं, वह कहते हैं –

*''जग–मांझ दीनदयाल है, तन महाबाहु बिसाल है।*
*धन ध्रुव धरम को मूल है, अब हिंदु लाज दुकूल है।।''*[6]

यह कथन कि हिम्मतबहादुर ही अब हिंदुओं की रक्षा करने वाले रक्षक हैं। यह पद्माकर के तत्कालीन समय में हिन्दू राजाओं की स्थितियों पर प्रकाश डालने के लिए काफी है। स्वयं पद्माकर भी अपने समय के विभिन्न हिन्दू राजदरबारों में रहे जिनको उन्होंने निकट से देखा था। जब पद्माकर हिम्मतबहादुर के संरक्षण में थे तब हिम्मतबहादुर स्वयं कोई स्वतंत्र राजा नहीं था। वह उस समय शुजाउद्दौला के संरक्षण को छोड़कर मराठा सेनापति अलीबहादुर की शरण में आ गया था। पद्माकर ने स्वयं इंगित किया है कि हिम्मतबहादुर को अलीबहादुर ने बुंदेलखंड से धन प्राप्त करने के लिए भेजा था। यह युद्ध भी धन प्राप्ति के लिये ही किया गया था किन्तु पद्माकर इस युद्ध के विस्तृत कारणों पर प्रकाश नहीं डालते केवल संकेत भर करके छोड़ देते हैं। यह सिर्फ पद्माकर ही नहीं बल्कि समस्त रीतिकालीन कवियों की विशेषता है किन्तु यह भी उतना ही सच है कि उस समय के राजनीतिक सम्बंध इतने जटिल थे कि तत्कालीन सम्बंध ही युद्ध के कारण बनते थे और कोई भी राजनीतिक सम्बंध उस समय टिकाऊ नहीं था।

पद्माकर द्वारा अपने नायक को हिंदू धर्म का नायक बताना केवल हिम्मतबहादुर की प्रशंसा करना ही नहीं है अपितु यह हिम्मतबहादुर के राजनीतिक कद की ओर भी संकेत करता है जो निश्चित रूप से उस समय उत्तर भारत के हिन्दू राजाओं में काफी महत्व रखता था। हिम्मतबहादुर के आगे के जीवन से भी यह साबित हो जाता है। वह अपने समय के लगभग सभी महत्वपूर्ण राजदरबारों में अपनी सैन्य सेवाएं दे चुका था।यह उसके सैन्य महत्व को रेखांकित करता है। निश्चित रूप से पद्माकर ने उसके चरित्र के इस पहलू को

समझा और उसे अपने ग्रंथ का काव्य नायक बनाया जिससे प्रेरणा लेकर मानकवि ने अपना काव्य ग्रंथ ***अनूपप्रकाश*** लिखा।

### *5.3.1 अजयगढ़ पर युद्ध का कारण*

पद्माकर ने इस युद्ध का जो तत्कालिक कारण दिया है वह निम्नवत है –

*''गूजर गलीम लगाइ कै, सु बंदेलखंडहि आई कै।*
*दतिया सु प्रथम दबा दई, खंडी सु मनमानी लई।।''*[7]

इस छंद की व्याख्या बहुत स्पष्ट नहीं है क्योंकि इसमें जो शब्द **गूजर गलीम** के रूप में आये हैं, उनको अलग–अलग विद्वानों ने अलग–अलग ढंग से व्याख्यायित किया है। लाला भगवानदीन ने गूजर का अर्थ गुजरात शब्द से लगाकर यह निष्कर्ष निकाला है कि हिम्मतबहादुर ने गुजरात पर भी आक्रमण किया था। जबकि टीकमसिंह तोमर ने अनुमान लगाया है कि हिम्मतबहादुर ने बुंदेलखंड के गूजर शासक को हराया होगा इसलिए पद्माकर यहां उसका उल्लेख करते हैं। इन दोनों विद्वानों से अलग सुषमा शर्मा ने अपनी पुस्तक ***पद्माकर की रचनाओं का पुनर्मूल्यांकन*** में अलग तथ्य प्रस्तुत किया है। उनका मानना है कि इस पद का सन्दर्भ देवीसिंह गूजर से है जिसने 1785 ई0 में दतिया राज्य से खंडी या कर वसूल की थी और पद्माकर यहां उसी का उल्लेख कर रहे हैं। राजा रामचन्द्र के पुत्रों में उत्तराधिकार युद्ध होने पर वहां की रानी ने इन्द्रजीत सिंह को राजा बनाने के लिए तत्कालीन ओरछाधीश उदोतसिंह से मदद मांगी थी तब उदोतसिंह ने नोनेशाह गूजर समधर राज्य के संस्थापक को रानी की सहायता के लिए भेजा था जिसमें गूजर को सफलता मिली। दतिया की गद्दी इन्द्रजीत सिंह को मिलने पर रानी ने उनका सम्मान किया था। मराठों के उकसाने पर इन्हीं गूजरों ने दतिया से कर वसूल किया था।

बुंदेलखंड अपनी कमजोर स्थिति के कारण मराठों और अवध के नवाब दोनों के लिए धन प्राप्ति का महत्वपूर्ण क्षेत्र बन गया था। बुंदेलों में लगातार उत्तराधिकार युद्ध हो रहे थे और सम्पूर्ण बुंदेलखंड छोटे–छोटे राज्यों में विभाजित हो गया था जिससे हर किसी को उनके

आंतरिक मामलों मे हस्त़क्षेप करने का मौका मिल गया था। इस पर टिप्पणी करते हुए पद्माकर कहते हैं–

*''फिरि मुलुक नृप छतसाल को, दाबो प्रबल रिपु–जाल को।''*[8]

इस समय नोने अर्जुनसिंह ने पन्ना राजघराने को अपने पैरों तले रौंद दिया था जिसकी वजह से विरोधियों में उनका विरोध काफी बढ़ गया था। अतः इस युद्ध की भूमिका बननी शुरू हो गयी थी। मराठे इसी अवसर की ताक में बैठे हुए थे कि उन्होंने यह युद्ध शुरू कर दिया। नोने अर्जुनसिंह की वीरता की तारीफ करते हुए पद्माकर ने लिखा है –

*''जहं अमेल अर्जुन इक करैं, नहिं बादशाहन को डरै।*
*जिहि लूटि नृप बहुतै लये, बहु मारि–मारि भजा दये।*
*तिहि पै नृपति अति कौपि कै, आयौ अटल पग रोकि कै।*
*सब मुलुकि जयति करि लियौ, फिरि बांटि फौजन को दियौ।''*[9]

यही युद्ध का कारण था जिसे पद्माकर थोड़ा अतिशयोक्ति का आश्रय लेकर कहते हैं। हालांकि इसमें अर्जुनसिंह वास्तविक शासक नहीं थे बल्कि वह बांदा के अल्पवयस्क राजा बख्तसिंह के संरक्षक थे और उसकी सेना के सेनापति थे। जैसाकि पहले कहा गया कि अर्जुनसिंह पन्ना राज्य का बहुत सा हिस्सा बांदा राज्य में मिलाकर राज्य कर रहे थे अतः मराठों ने उनसे वह राज्य लेने के लिए अलीबहादुर के नेतृत्व में वहां सेना भेज दी जिसके साथ अनूपगिरि भी थे। अलीबहादुर मराठा पेशवा बाजीराव और मस्तानी के पुत्र शमशेर बहादुर का पुत्र था। वह बुंदेलखंड में मराठों की सेना लेकर आया और उसने अनूपगिरि को इस युद्ध का सेनापति नियुक्त कर अजयगढ़ पर आक्रमण करने का आदेश दिया।

अनूपगिरि ने ज्योतिषी को बुलाकर युद्ध शुरू करने का मुहूर्त निकलवाया। ज्योतिषी ने बैशाख महीने के द्वादशी, दिन बुधवार सम्वत् 1849 का दिन शुभ बताया और उस दिन युद्ध का नगाड़ा बज गया –

*''सुभ जोतिषी सु बुलाइ कै, पूछो सुदिन सिर नाइ कै।*
*यह सुनि हुकुम महाराज को, दिल खुसी जोतिषराज को।*
*सुर सास्त्र सकल बिचारि कै, सुभ दिन कह्यौ निरधारि कै।*
*संवत् अठारह सै सुनो, उनचास अधिक हिये गुनौ।*

*यह सुभ दिवस है लरन को, है जुवा सुर नृप–बरन को।''*[10]

इस समय अजयगढ़ की स्थिति भी काफी नाजुक थी अतः उसे आसानी से हस्तगत किया जा सकता था। अर्जुनसिंह की तरफ से 36 कुरियों के क्षत्रियों का लड़ना पद्माकर ने बताया है जो उस समय अलग–अलग उपनामों से जाने जाते थे।इनमें चौहान, धंधेर, बुंदेल, बघेल, रैकवार, सहरवार, बैस, गौतम, पड़िहार, सोलंकी, राणा, हाड़ा, राठौर, कछवाहा, सिसौदिया, तोंर, सेंगर, इटौरिहा, बिलकैत, नाहर, गौर, चंदेल जैसे कुरियो के नाम का उल्लेख मिलता है। अर्जुनसिंह की सेना का भी वर्णन कवि ने उत्साह से किया है उसकी सेना की विशालता का वर्णन किया है। अर्जुनसिंह अपनी सेना और तोपखाने के साथ केन नदी के किनारे बने किले में शत्रु सेना का सामना करने के लिए तैयार थे और युद्ध आरंभ हो गया।

इधर गोसाईं के नेतृत्व में नागा सेना भी तैयार होकर बनगांव के मैदान में आ डटी। सर्वप्रथम शत्रुसेना पर तोपखाने से आक्रमण किया गया। इसके बाद पद्माकर ने अनेक प्रकार के हथियारों के प्रयोग द्वारा युद्ध का अतिरंजित रूप में वर्णन किया है जो सूदन के तरह की वस्तुपरिगणनात्मक शैली का अनुकरण है। इससे यह पता चलता है कि पद्माकर को हथियारों का अच्छा ज्ञान था और वह उनके इस्तेमाल करने के तरीकों से परिचित थे। हिम्मतबहादुर और नोने अर्जुनसिंह दोनों की वीरता की कवि ने बराबर प्रशंसा की है। एक समय ऐसा लग रहा था कि अजयगढ़ फतह नहीं होगा क्योंकि उसकी भौगोलिक स्थिति काफी मजबूत थी –

*''अति कठिन भूमि मवास–उपर, अजैगढ़ सोहै किलौ।*
*चहुं ओर पर्वत बन–सघन, तहं आपु डोलनि नृप पिलो।*
*जहं और फौजन को न सपनेहुं, चित्त जैबे को चलै।*
*तहं नृपति बीर अनूप गिरि, पैठो हरषि हांकत दलै।''*[11]

कवि यहां पर हिम्मतबहादुर की तुलना राम से करते हुए कहता है कि जिस प्रकार राम निःसंक होकर लंका में चले गये थे उसी प्रकार हिम्मतबहादुर भी अजयगढ़ में प्रवेश कर गये। अजयगढ़ के पत्थरों की दीवारों को तोड़ने के लिए तोपों का सहारा लिया गया और और उनकी तरफ से सर्वप्रथम परमार युद्ध करने के लिए आगे आये। किन्तु हिम्मतबहादुर

के सैनिकों की वीरता देख उनके पांव उखड़ने लगे तब अर्जुनसिंह अपने हाथी पर चढ़कर आये और परमार सैनिकों को युद्ध लड़ने के लिए उत्साहित किया। अपने सैनिकों को उन्होंने जीवन और मृत्यु का तत्वसार समझाया और कहा कि अब जो होना होगा वह होकर रहेगा लेकिन वह युद्ध अवश्य करेंगे। हालांकि पद्माकर द्वारा अर्जुनसिंह के माध्यम से युद्ध के समय दिया गया उदासीन भाव का उपदेश निश्चित रूप से समयानुकूल नहीं था। इसीलिए संपादक विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने कवि की काव्य दृष्टि की आलोचना की है। विजय से उदासीन अर्जुनसिंह से अपने सैनिकों से कहते हैं –

*''जा कों बिजय प्रभु देइ सो, इत अनायासहिं पावहीं।*
*धरि कोट संगर में जु भिरि कै, कुल कलंक चढ़ावहीं।*
*जिन की बदी है मीच अब, तिन की इत–उत बचहिगी।*
*जिन की नहीं है बिधि रची, तिन के न तन को तचहिगी।''*[12]

युद्ध के अवसर पर वीरोचित वाक्य न कहकर जीवन मरण की निस्सारता और ईश्वर की इच्छा मात्र होने की बात सैनिकों में युद्ध के प्रति उत्साह का संचार नहीं करती बल्कि उन्हें युद्ध के प्रति उत्साहहीन बना देती है। पद्माकर ने यहां पर इस तरह के उपदेश का संयोजन कर अपनी अपरिपक्वता का ही परिचय दिया है। इतिहास में ऐसे कई प्रकरण मिलते हैं कि सैनिकों के उच्च मनोबल से अविजित दिखने वाली लड़ाईयां भी आसानी से जीती गयी हैं जबकि उनके पास सीमित संसाधन थे। श्रीधर के ***जंगनामा*** में ही इसकी अच्छा उदाहरण मिलता है। जहांदारशाह के पास फर्रूखसियर से अधिक सैनिक बल था लेकिन विजय फर्रूखसियर को ही मिली क्योंकि उसके सैनिकों का मनोबल जहांदारशाह के सैनिकों की अपेक्षा अधिक उच्च था। अतः वे संख्या में कम होते हुए भी अपनी पूरी शक्ति से लड़े थे। समय की नाजुकता पर ध्यान न देने के ही कारण विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इस प्रसंग की आलोचना की है। इसके अलावा अन्य जगहों पर कवि ने वीर रस का अच्छा संधान किया है और उसे परी तन्मयता से अभिव्यंजित किया है। इस युद्ध में हिम्मतबहादुर की तरफ से सबसुख राय और उसके पुत्र मन्धाता का वर्णन आया है जिनका उल्लेख कवि ने प्रमुखता से किया है। ऐतिहासिक ग्रंथों में इनका नाम नहीं मिलता। पद्माकर ने इनका परिचय देते हुए इन्हें कायस्थ बतलाया है और ये पिता–पुत्र हिम्मतबहादुर के काफी विश्वस्त व्यक्ति थे और मालिक का नमक अदा करने के लिए

उसके समस्त कार्यों को करने के लिए सदैव तत्पर रहा करते थे यहां तक कि वो उसके लिए अपने प्राण भी न्यौछावर करने के लिए तैयार थे। मन्धाता का कथन है –

*''हमरे जियत नृप ओर, जो हथियार अरि को आइहैं।*
*निज जनक सबसुखराय कों, फिरि बदन कौन दिखाइहैं।''*[13]

इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि मन्धाता को हिम्मतबहादुर ने काफी मान सम्मान दिया था और उसे अपने पुत्र की तरह पाला था। सबसुखराय को उसने अपने राज्य में महत्वपूर्ण पद दिया जिसका उल्लेख स्वयं मन्धाता ने किया है। अतः मन्धाता अपने शासक की विजय के लिए प्रयत्नशील था और युद्ध में वीरता का प्रदर्शन कर रहा था। पद्माकर ने हिम्मतबहादुर और मनधाता को साथ में लड़ते हुए दिखलाया है। इसके अलावा नवाब जुल्फिकार ने भी हिम्मतबहादुर की तरफ से युद्ध में भाग लिया। यह मेवात का सूबेदार था और हिम्मतबहादुर की तरफ से लड़ने आया था। इन सबने मिलकर पमारों को युद्ध से पैर पीछे खींचने पर मजबूर कर दिया।

### 5.3.2 युद्ध की समाप्ति और उसके परिणाम –

इस युद्ध में नोने अर्जुनसिंह वीरता से लड़े किन्तु अन्तिम विजय हिम्मतबहादुर को मिली और उसने नोने अर्जुनसिंह का सिर काटकर स्वयं अलीबहादुर को सौंपा –

*''नृप करि इमि रारनि, लरि तरवारनि, मारि परमारनि, फते लई।*
*लूटे बहु हय–गय, देत खलनि भय, जग में जय–जय सुधुनि भई।''*[14]

हिम्मतबहादुर द्वारा नोने अर्जुनसिंह का सिर काटने का वर्णन कवि इस तरह से करता है –

*''पटक्यो गज पर तें, उमड़ि उभर तें, अरि सिर धर तें, काटि लियौ।*
*रिपु रूंड धरा को, अरपत ताको हरहि हरा को, मुंड दियौ।''*[15]

इस युद्ध परिणाम यह हुआ कि नोने अर्जुनसिंह की मृत्यु को पश्चात् बांदा के शासक बख्त सिंह को अजयगढ़ दुर्ग छोड़ना पड़ा और वह वहां से भाग गया। इस युद्ध से पेशवा को बुंदेलखंड में हस्तक्षेप करने का पूरा अधिकार मिल गया और हिम्मतबहादुर एक बार फिर से पेशवा की नजरों में महत्वपूर्ण बन गया। इस ग्रंथ की समाप्ति इस युद्ध में हिम्मतबहादुर के विजय के पश्चात् ही हो जाती है। यह छोटा सा ही ग्रंथ है और पद्माकर का उद्देश्य केवल हिम्मतबहादुर की विरूदावली गाना ही है न कि किसी ऐतिहासिक महत्व की घटना की विवेचना करना अतः इस ग्रंथ को इसी नजरिये से देखना उचित होगा। वीरकाव्य की दृष्टि से यह सफल काव्य है। ऐतिहासिक तथ्यों के उल्लेख में उन्होंने कोई लापरवाही नहीं बरती है और सभी साक्ष्य ऐतिहासिक दृष्टि से सही हैं। केवल अर्जुनसिंह का सिर काटे जाने के प्रसंग में गोरेलाल तिवारी ने अपनी इतिहास पुस्तक में इस लिखा है –

''इस युद्ध का वर्णन पद्माकर ने हिम्मतबहादुर विरूदावली में किया है। इसमें हिम्मत बहादुर के हाथ से मारा जाना लिखा है। परन्तु यह ठीक नहीं, क्योंकि अर्जुनसिंह अपने ही घराने के एक मनुष्य के भाले से मारे गये थे। यह मनुष्य चरखारी का था। चरखारी का राजा हिम्मत बहादुर का सहायक था।''[16]

गोरेलाल तिवारी ने इस सूचना का आधार स्पष्ट नहीं किया है। जिसके मिलान से यह पता लगाया जा सके कि वास्तव में क्या हुआ था। अगर यह सूचना सही है तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि अपने नायक की वीरता के वर्णन के उत्साह में पद्माकर ने हिम्मतबहादुर द्वारा अर्जुनसिंह का सिर काटने की बात कही है।

हिम्मतबहादुर की वीरता का जो चित्र पद्माकर ने इस छोटे से ग्रंथ में खींचा है कि वह हिम्मतबहादुर के नायकत्व को स्थापित करने में बिल्कुल सटीक बैठा है। अपने समय में हिम्मतबहादुर एक प्रमुख रणनीतिकार के रूप में जाना जाता था और उसकी सैन्य क्षमता से सभी आस–पड़ोस के राजा उससे सशंकित रहते थे। पद्माकर ने उसके व्यक्तित्व के केवल उसी रूप को उभारा है जो उनके चरितनायक के अनुकूल हो सकता था। हिम्मतबहादुर का पूरा व्यक्तित्व इस ग्रंथ में नहीं आ पाया है। हिम्मतबहादुर का सम्पूर्ण क्रियाकलाप यह जाहिर करता है कि वह बहुत ही चतुर और महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। जिधर उसे अपना लाभ नजर आता था वह उधर ही मुड़ जाता था। अपने पूरे जीवनकाल

में वह विभिन्न राजाओं के यहां–वहां वह अपनी सेवाएं देता रहा और उसकी निष्ठा अपने स्वार्थवश बदलती रही। उसके विषय में गोरेलाल तिवारी अपने इतिहास में लिखते हैं –

''हिम्मतबहादुर बड़ा लालची मनुष्य था। उसने अपना लाभ अली बहादुर की मित्रता में समझा। उसने सेंधिया की नौकरी छोड़ दी और अली बहादुर को सहायता देने का वचन दे दिया। अली बहादुर ने हिम्मत बहादुर को देश का कुछ भाग देने का वचन दिया और हिम्मत बहादुर ने अली बहादुर को बांदा का नवाब बना देने की प्रतिज्ञा की।''[17]

उसके इस चरित्र की एक झलक हमें ठाकुर के कुछ पदों में मिलती है। जैसाकि उपर कहा गया है कि ठाकुर बुंदेलखंड वाले हिम्मतबहादुर के दरबार में गये थे जहां उनकी मुलाकात पद्माकर कवि से हुई थी। अंग्रेजो के उकसाने पर हिम्मतबहादुर ने जैतपुर नरेश पारीक्षत को धोखा देने के लिए बुलवाया। जैतपुर नरेश जब वहां जाने के लिए निकले तब ठाकुर ने उन्हें किसी तरह के धोखे की आशंका व्यक्त करते हुए उन्हें आगाह किया कि वे वहां न जायें –

*''कैसे सुचित भये निकसौं बिहंसी बिलसौ हरि दै गलबाहीं।*
*ये छल छिद्रन की बतियां छलती छिन एक घरी पल माहीं।*
*ठाकुर वै जुरि एक भईं, रचिहैं परपंच कछु ब्रज माहीं।*
*हाल चवाइन की दुहचाल की लाल तुम्हें है दिखात की नाहीं।''*[18]

तत्पश्चात् राजा पारीक्षत ने उनकी सलाह मानकर हिम्मतबहादुर से मिलने का विचार त्याग दिया और अपने राज्य में लौट गये। इस प्रकरण के बाद जब ठाकुर हिम्मतबहादुर के दरबारमें बुलवाने पर पहुंचे तब हिम्मतबहादुर ने उन्हें झिड़की दी। ठाकुर झिड़की सुनकर क्रोधित हो गये और तलवार म्यान में से निकाल कर यह कवित्त पढ़ा –

*''सेवक सिपाही हम उन रपपूतन के,*
*दान जुद्ध जुरिबे में नेकु जे न मुरके।*
*नीत देनवारे हैं महि के मही पालन को,*
*हिए के विसुद्ध हैं, सनेही सांचे उर के।।*
*ठाकुर कहत हम बैरी बेवकुफन के,*
*जालिम दमाद हैं अदानियां ससुर के।*

*चोजिन के चोजी महा, मौजिन के महाराज,*
*हम कविराज हैं, पै चाकर चतुर के।।'*[19]

ठाकुर की क्रोधित मुद्रा देखकर हिम्मतबहादुर ने उन्हें शांत कराया। यह सम्पूर्ण प्रकरण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में वर्णित किया है। इस प्रकरण से यह आसानी से लक्षित किया जा सकता है कि हिम्मतबहादुर एक अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए अपने मित्र के साथ भी वक्त पड़ने पर छल कर सकता था। राजा पारीक्षत को यदि ठाकुर ने रोका नहीं होता तो वह हिम्मतबहादुर और उसके मित्रों के जाल में फंसकर अपना नुकसान करवा बैठते। हिम्मतबहादुर के लिए ठाकुर ने *हाल चवाइन की दुहचालकी* कहकर अच्छा व्यंग्य कसा है। हिम्मतबहादुर के चरित्र के इन पहलुओं को समझने के लिए मानकवि का ***अनूपप्रकाश*** भी महत्वपूर्ण काव्यग्रंथ है। तत्कालीन इतिहासग्रंथों में भी उसके सम्बंध में महत्वपूर्ण जानकारियां मिलती हैं। पद्माकर या मानकवि अधिकांशतः उसके चरित्र के उज्ज्वल पक्ष को ही सामने रखते हैं और यही उनका उद्देश्य भीथा।

## 5.4 पद्माकर की अन्य रचनाओं में ऐतिहासिक साक्ष्य –

इस ग्रंथ के अलावा पद्माकर के अन्य रचनाओं में कई ऐसे छिटपुट छंद उपलब्ध हैं जो तत्कालीन राजनीति पर प्रकाश डालते हैं। हालांकि उन छंदों को सावधानी से पढ़ने की जरूरत है क्योंकि वह मुख्यतया राजाओं की प्रशंसा पर ही आधारित हैं और उसमें ऐतिहासिक तथ्य न्यून हैं। ऐसे छंद अलग–अलग ग्रंथों में मिलते हैं। उदाहरण के लिए नोने अर्जुनसिंह की प्रशंसा में लिखे छंद या जयपुर नरेश प्रतापसिंह, कालिंजर के महाराज भरतसिंह, दतियानरेश पारीक्षित, अलीबहादुर, बांदानरेश गुमानसिंह आदि राजाओं पर प्रशंसात्मक पद मिलते हैं। **पद्माकर के छंदों में एक अन्य महत्वपूर्ण छंद अंग्रेजों के सन्दर्भ में है जो हिन्दी साहित्य के इतिहासों में बहुधा उद्धृत किया जाता है।** पद्माकर से पूर्व के रीतिकालीन कवि अंग्रेजों का कोई उल्लेख नहीं करते जबकि 18 वीं सदी में अंग्रेज भारत में अपना पैर जमा चुके थे और उत्तरार्द्ध आते–आते वह लगभग सभी भारतीय राजाओं को अपने कदमों में झुका चुके थे। स्वयं पद्माकर इस छंद के अलावा उनका कहीं जिक्र नहीं

करते और ना ही तत्कालीन भारतीय राजाओं की अदूरदर्शिता पर कोई प्रकाश डालते हैं लेकिन यह एक छंद ही उस समय की राजनीतिक–आर्थिक गतिविधियों पर अच्छा प्रकाश डालता है और स्वयं पद्माकर की दूरदर्शी सोच को हमारे सामने लाता है। यह प्रसिद्ध छंद है –

*''मीनागढ़ बंबई सुमंद करि मंदराज,*
*बंदर को बंद करि बंदर बसावैगो।*
*कहै 'पद्माकर कटा के कासमीर हू को,*
*पिंजर सो घेरि कै कलिंजर छुड़ावैगो।*
*बांका नृप दौलत अलीजा महाराज कौ,*
*साजि दल दुपट्टि फिरंगिन दबावैगो।*
*दिल्ली दहपट्टि पटना हू को झपट्टि करि,*
*कबहूंक लत्ता कलकत्ता को उड़ावैगो।''*[20]

यह छंद कवि ने दौलतराव सिंधिया के दरबार में रहते हुए लिखा था जो सम्भवतः कवि ने उन्हें तत्कालीन स्थितियों के प्रति सचेत करने के लिए कहा होगा। उस समय के कवि राजाओं की आज की तरह आलोचना नहीं कर सकते थे अतः ऐसी कविताएं वह सलाह के रूप में रचते थे जो राजाओं को वास्तविक स्थिति का बोध कराने के लिए होती थी। इस तरह की कविताएं बिहारी ने भी काफी मात्रा में लिखी है जिसमें वह अपने आश्रयदाता जयपुर नरेश जयसिंह के लिए रची थीं। निश्चित रूप से यह आश्रयदाता तक अपनी बात कहने का एक सहज माध्यम था जिसे राजा सुनता था। पद्माकर ने जब यह छंद रचा तब वह यह बात भली–भांति जानते होंगे कि उस समय अंग्रेजों को केवल ग्वालियर का सिंधिया ही रोक पाने में समर्थ था और अन्य कोई भारतीय नरेश ऐसा करने में समर्थ नहीं था। अतः पद्माकर उसी को सलाह दे रहे थे और अंग्रेजों की बढ़ती शक्ति के विषय में उसे सचेत करने की कोशिश कर रहे थे। अंग्रेजों ने न सिर्फ मुगल सम्राट को पेंशन भोगी बना दिया था अपितु बंगाल और अवध के नवाबों की शक्ति को भी कुचल कर रख दिया था। मराठों को भी वह लगातार चार युद्धों में हरा चुके थे और भारतीय राजाओं के आपसी युद्धों में वह हस्तक्षेप बढाते चले जा रहे थे। अंग्रेजों की गतिविधियां अब केवल आर्थिक

नहीं रह गयी थीं। किन्तु हैरानी की बात है कि उस समय का कोई भी भारतीय राजा इन विदेशी शक्तियों के हस्तक्षेप को गंभीरतापूर्वक नहीं ले रहा था।

मुगल सम्राट शाहआलम अब केवल नाममात्र का ही बादशाह रह गया था। पद्माकर के समय में उसका राजनीतिक कद केवल प्रतीकात्मक रूप में ही था कि मुगल सम्राट अभी भी भारत का सम्राट कहा जाता था। सम्भवतः इसीलिए पद्माकर ने कहीं उसका उल्लेख नहीं किया है। सत्रहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारत छोटे–छोटे स्वतंत्र राज्यों में बंटा हुआ था और उनमें आपस में ही शक्ति संघर्ष चलता रहता था। स्वयं बुदेलखंड में अनेक छोटे राज्यों का उदय हो गया था। मुगल सत्ता की कमजोरियों का फायदा उठाकर ये राज्य स्वतंत्र हो गये थे और अपने राज्य का शासन प्रबंध स्वयं ही देखते थे। पहले–पहल अंग्रेजों के साथ भारतीय राजाओं के सम्बंध आपसी झगड़ों को निपटाने में प्रशिक्षित अंग्रेजी सेना की मदद लेने के साथ शुरू हुआ जिसका उपयोग बुंदेल राजाओं ने भी किया। स्वयं पद्माकर के काव्य नायक हिम्मतबहादुर ने भी अपने आखिरी दिनों में अंग्रेजी की शरण ले ली थी। यह सभी स्थितियां अचानक नहीं बनी। अंग्रेजों ने अपनी सैन्य कुशलता से भारतीय राजाओं को आकर्षित कर रहे थे इसके साथ ही उनकी व्यापारिक सफलताएं भी यहां के लोगों के आकर्षण का कारण बनी। व्यापार के नए तरीके भारतीय समाज में आकर्षण पैदा करने का काम कर रहे थे अतः लोग वह भी सीखने के लिए अंग्रेजों के साथ काम करने के लिए तैयार हो रहे थे।

## 5.5 भारत में अंग्रेज आगमन

पद्माकर ने जो साक्ष्य अंग्रेजों के सन्दर्भ में दिया है उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि जानना आवश्यक है। 17वीं सदी के आरंभ में जो अंग्रेज भारत में व्यापार के दृष्टिकोण से आये थे वह भारतीय राजाओं की आपसी फूट का फायदा उठाकर यहां शासन करने लगे। निश्चित रूप से यह घटना भारतीयों के लिए अभूतपूर्व थी। भारत में पहली बार यूरोपीयों का आगमन पुर्तगालियों के साथ शुरू हुआ जिसके बाद डच, अंग्रेज और फ्रांसीसी आये। सर्वप्रथम इनका सम्बंध भारत के साथ व्यापारिक कारोबार के लिए जुड़ा हुआ था। अपने

व्यापारिक हितों के लिए इनका आपस में भी संघर्ष हुआ और भारतीय उपमहाद्वीप में अंग्रेज कम्पनी ने अन्य सभी यूरोपीय कारोबारियों को बाहर निकाल दिया। इसी शक्ति संघर्ष में पुर्तगाल डच संघर्ष जिसमें डच विजयी हुए और अंग्रेज डच संघर्ष तत्पश्चात अंग्रेज फ्रांसीसी संघर्ष महत्वपूर्ण हैं। 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध तक यूरोपीय शक्तियों में ये संघर्ष चलते रहे और अंतिम विजय अंग्रेजों को मिली। पद्माकर ने जिस मीनागढ़, बंबई बंदरगाहों का वर्णन किया है वह अंग्रेजों के व्यापारिक गढ़ों पर उनके अधिकार की तरफ ही इंगित करता है।

वास्तव में अंग्रेज अपने व्यापारिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ही भारत के राजनीतिक मामलों में हस्तक्षेप की नीति पर चले। बंगाल में उनका राजनीतिक हस्तक्षेप इसी तरह का था। फर्रूखसियर के समय में अंग्रेजों को व्यापार करने की सुविधाएं दी गयी थीं। साथ ही बंगाल के नवाब को अंग्रेजों की सुरक्षा करने का शाही आदेश दिया गया था। लेकिन 1717 ई. में अतिरिक्त चुगी के बिना अंग्रेजों को व्यापार की छूट देना बंगाल में नवाब और अंग्रेजों को एक नये संकट में डालने के लिए काफी था। इससे अंग्रेजों को अपने मन मुताबिक कार्य करने की छूट मिल गयी जिसका उन्होंने खूब फायदा उठाया। मुगलों की कमजोर स्थिति ने भी इस पर असर डाला। बंगाल के नवाब का अंग्रेजों से टकराव बढता चला गया और इसकी परिणति 1757 ई. के युद्ध में हई जिसमें बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला की हार हो गयी। इस युद्ध ने अंग्रेजों को राजनीतिक रूप से भारत में स्थापित करने का कार्य किया। तत्पश्चात अवध के नवाब की हार ने उसे और सुदृढ़ कर दिया।

पद्माकर के एक और छंद में हमें अंग्रेजों की सूचना मिलती है जिसका सम्बंध दौलतराव सिंधिया के छावनी या कैंट की है। सिंधिया ने अंग्रेजों की देखादेखी एक अच्छी सेना की बनायी थी जिसके सैनिक कैम्पों में प्रतिदिन अंग्रेजी ढंग पर परेड किया करते थे। यह कवित्त छंद निम्नवत है –

*''कंपू बनबाग के कदंब कपतान खड़े,*
*सूबेदार साहब समीर सरसायो है।*
*कहै पद्माकर तिलंगी भीर भृंगन को,*
*मेजर तम्बूरची मयूर गुन गायो है।*
*का 'हट' करै को घरघराहट घटान को सु,*

*यों ही अरराहट अराबन को छायो है।*
*मन–मद भंगी सफजंगी सैन संगी लिये,*
*रंगी रितु पावस फिरंगी स्वांग लायो है।'*[21]

सेना की कवायद या परेड का यह बड़ा ही चित्रात्मक वर्णन है। पद्माकर ने इंगित किया है कि इस कैम्प या सैन्य छावनी के सभी अधिकारी अंग्रेज थे जिसे कवि भी मेजर और कप्तान शब्द के प्रयोग से अभिव्यंजित करता है। डॉ. सुषमा शर्मा की सूचना के अनुसार अपने समय में यह छावनी ग्वालियर में मौजूद थी और तब कंपूकोटी के नाम से प्रसिद्ध थी। यह कंपूकोटी आज भी ग्वालियर में है।[22] पद्माकर ने इस छंद में अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग किया है जहां 'हट' शब्द अंग्रेजी के हाल्ट शब्द का हिन्दी रूपांतर है।

***'हिम्मतबहादुर विरूदावली'*** में पद्माकर ने कहीं भी अनूपगिरि का अंग्रेजों से कोई सम्बंध नहीं बतलाया है जबकि उसका सम्बंध अंग्रेजों के साथ रह चुका था। सिंधिया के साथ उसके सम्बंध जब खराब हो गये थे तब हिम्मतबहादुर अंग्रेजों का साथ देने में नहीं हिचकिचाया और वह भी अंत में अंग्रेजों से जाकर मिल गयज्ञं ***अनूपप्रकाश*** में भी इससे जुड़ी कोई सूचना नहीं मिलती। सम्भवतः उस समय तक यह ग्रंथ लिखा जा चुका था। निश्चित रूप से अंग्रेजों की शक्ति को न पहचानना और उन्हें रोकने की संगठित कोशिश न करना भारतीय राजाओं की एक महत्वपूर्ण भूल साबित हुई और उनके आश्रयदाता कवि भी अपने राजाओं की अतिशय प्रशंसा में यह भूल गये कि उनका कर्तव्य उन राजाओं को आने वाली विपत्तियों से आगाह कराना भी है। समय के प्रवाह में कवि भी बह रहे थे और अपने समय की वास्तविकताओं से उनका कोई जुड़ाव नहीं था।

यह स्थिति जल्दी ही बदलने वाली थी क्योंकि अंग्रेजों का भारत आगमन न सिर्फ राजनैतिक–आर्थिक दृष्टि से भारतीय परिस्थितियों में आमूल–चूल परिवर्तन लाने वाला साबित हुआ अपितु साहित्य के क्षेत्र में भी बदलाव आने लगा था। रीतिकालीन कविता अब अपने आखिरी दौर में प्रवेश कर रही थी। इसी आखिरी दौर के महत्वपूर्ण कवि पद्माकर थे। ब्रज भाषा पद्माकर में अपने सम्पूर्ण सौन्दर्य के साथ प्रस्तुत हुई और इसी के साथ उसकी पूर्णाहुति हुई।

अंग्रेज अपने साथ ज्ञान–विज्ञान के नये तौर–तरीके साथ लेकर आये थे। धर्मभीरू भारतीय समाज की जबदी हुई मनोवृत्ति अब बदल रही थी। ब्रजभाषा जिन राजदरबारों में पली–बढ़ी थी; वे राजदरबार अब समाप्तप्राय हो रहे थे क्योंकि अंग्रेजी शासन ने उन्हें हस्तगत कर लिया था। मुगल शासन को पहले तो क्षेत्रीय राजाओं से हानि उठानी पड़ी थी और उसके शासक किसी–न–किसी क्षेत्रीय शक्ति के बल पर ही शासन सूत्र संभाल रहे थे। अंग्रेजों ने यह भी समाप्त कर दिया और अब मुगल शासक केवल अंग्रेजों का पेंशनधारक सम्राट था। अंतिम मुगल बादशाहों को इतना नोंचा–खसोंटा जा चुका था कि उनके पास कोई शक्ति ही नहीं बची थी जो अंग्रेजों को रोक सकने में उसे सक्षम बनाती। पद्माकर की कविता तक आते–आते यह बात साबित हो जाती है कि अब मुगल सम्राट के पास कोई शक्ति नहीं रह गयी थी अन्यथा पद्माकर जैसा घूमन्तु कवि अपने कवित्व प्रदर्शन के लिए वहां अवश्य जाता।

अन्तिम मुगल सम्राट बहादुरशाह जो कि स्वयं भी उर्दू में जफर नाम से कविताएं रचता था उसके पास दिल्ली के किले में बैठकर राग–रंग की की महफिल सजाने और अपनी शक्तिहीनता पर रोने के अलावा और कोई कार्य शेष नहीं बचा था। अपने पूर्वजों की गौरवशाली परंपरा का वह अंतिम बादशाह साबित हुआ। किन्तु इतना होने के बावजूद किसी भारतीय राजा ने दिल्ली की बादशाहत अपने नाम करने की कभी कोई कोशिश नहीं की। यानी प्रतीकात्मक रूप से ही सही भारतीय जनता में मुगल बादशाही के प्रति अभी भी सम्मान था। इसका एक उदाहरण 1857 की क्रांति में देखने को मिला। विद्रोह के समय भारतीय सैनिक बूढ़े बहादुरशाह जफर को अपना सेनापतित्व स्वीकार कराने की अर्जी लेकर उसके पास पहुंचे थे। 70 साल का वृद्ध बहादुरशाह बहुत असमंजस में रहा किन्तु अंग्रेजों के लूट और दमन ने उसे भी बहुत नुकसान पहुंचाया था और उसे पेंशन लेकर बैठे रहने के लिए मजबूर किया था। अतः वह एक बार फिर से अपनी मुगल बादशाही को प्राप्त करने के लिए इस विद्रोह का सेनापतित्व स्वीकार करने के लिए राजी हो गया। निश्चित रूप से यह विद्रोह मुगलों की प्रतिष्ठा को फिर से पाने का एक आखिरी अभियान था जो कि बदली हुई परिस्थितियों में सम्भव नहीं था। 1857 की क्रांति असफल सिद्ध हुई और अंग्रेज एक बार फिर भारतीयों पर अपना वर्चस्व बनाये रखने में सफल रहे। बहादुरशाह के नेतृत्व वाली सेना को हार का मुंह देखना पड़ा। फिर भी यह कहा जा सकता है कि

बहादुरशाह का यह आत्मघाती कदम मुगल सल्तनत को समाप्त करने वाला होते हुए भी मुगलों की प्रतिष्ठा के ही अनुरूप हुआ और मुगल साम्राज्य की एक भावभीनी विदाई हुई। बहादुरशाह के अंतिम दिन वर्मा की जेल में गुजरे और वहीं उसकी मृत्यु हुई।

1857 की क्रांति में कई भारतीय राजाओं ने अंग्रेजों का साथ दिया था और विद्रोहियों को कुचलने में उनकी मदद की थी। इसके साथ ही इसका अधिकांश असर उत्तर भारत में ही रहा जिससे अंग्रेजों को इस विद्रोह को दबाने में सफलता मिली। स्वयं भारतीय राजा एकजुट होकर नहीं लड़ पाये और अलग–अलग केन्द्रों से युद्ध किया जो उनकी हार का कारण बना। रीतिकालीन कवियों में अपने–अपने आश्रयदाता की निष्ठा के अनुसार इस विद्रोह से सम्बंधित कविताएं मिलती हैं।

उदाहरण के लिए हम गोकुल प्रसाद 'बृज' कवि को देख सकते हैं। गोकुल कवि बलरामपुर के राजा दिग्विजयसिंह के दरबार में रहते थे। उन्होंने अपने काव्यग्रंथ ***'दिग्विजयभूषण'*** में अपने राजा द्वारा अंग्रेजों की रक्षा के लिए उनके द्वारा की गयी मदद की सराहना करते हुए भारतीय विद्रोहियों को नमकहराम तक कहा है –

*''जबै तिलंगे निमकहरामी, अंगरेजन सौ कीन्है।*
*चीफ कमिसनर बहिराइच के, आये नृप सुख दीन्है।*
*नास किए बदमास लोग को, करि लखनउ प्रकास।*
*भूप दिग्विजयसिंह बहादुर, बोलि पठाए खास।''*[23]

यह कवि की अपने आश्रयदाता के प्रति बेशक नमकहलाली का अच्छा उदाहरण है। कवि के अपने संस्कार के अनुसार भारतीय विद्रोही नमकहराम और बदमाश की कोटि में आते थे क्योंकि वह अपने स्वामी के खिलाफ विद्रोह कर रहे थे और उस समय उनके स्वामी सात समुंदर पार बैठे शासक थे। विद्रोह के बाद भारत का शासन सूत्र ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया के हाथ में आ गया। ब्रिटिश शासन ने उन भारतीय राजाओं को सम्मान दिया जिन्होंने अंग्रेजों को विद्रोहकाल में मदद पहुंचायी थी। गोकुल कवि लिखते हैं –

*''केहरि सो बल किये, घेरि बागी करि मारे।*
*सील सींव कै सिन्धु सिकारी स्वच्छ बिचारे।*
*एक स्वामि को सेइ समर मैं जै जस पाये।*

*आदिल आदर अनी इसाई लोग बचाये।*
*यह बात बूझि विकटोरिया हेत छ इव अक्षर लिखे।*
*महाराज दिग्विजयसिंह को के सी एस आई लिखे।''*[24]

'के.सी.आई.एस' या 'नाइट' या 'राजा' की उपाधियां भारतीयों राजाओं को खुश करने के लिए बांटी गयीं थी जिसका अभिमानपूर्वक कवि ने वर्णन किया है। राजभक्ति का यह पुरस्कार निश्चय ही भारतीय राजाओं के लिए महंगा साबित हुआ क्योंकि जल्दी ही भारतीय राजदरबार समाप्त हो गये और उनके साथ ही मध्यकालीन कविता की प्रवृत्तियां भी धीरे–धीरे समाप्तप्राय हो गयी। भारतीय इतिहास में आधुनिक भारत की शुरूआत भी इस विद्रोह के पश्चात् ही मानी जाती है। साहित्य में आधुनिकता का श्रीगणेश भी यहीं से हुआ।

इस तरह से हम देखते हैं कि पद्माकर का संक्षिप्त किन्तु महत्वपूर्ण काव्यग्रंथ भारत की तत्कालीन परिस्थितियों पर खासकर उत्तर भारत की स्थिति पर ऐतिहासिक दृष्टि से प्रकाश डालने का काम करता है। वैसे तो इस कृति में अंग्रेजों का कोई वर्णन नहीं है किन्तु अपने अन्य स्फुट छंद के माध्यम से पद्माकर अंग्रेज आगमन एवं उनकी भारतीय रियासतों पर कब्जा करने की नीति का उल्लेख अवश्य करते हैं। निश्चित रूप से यह उनके अपने समय के प्रति जागरूकता का परिचायक है। पद्माकर के यहां लालकवि की समान इतिहासदृष्टि हम नहीं पाते। विरूदावली जैसी छोटी सी रचना में यह सम्भव भी नहीं था किन्तु छिटपुट छंदों में ही सही राजनीति के बदले स्वर हमें पद्माकर कवि में देखने को मिल जाते हैं। इस तरह यह अपने समय के विशिष्ट कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं। यहां यह भी कहना आवश्यक है कि पद्माकर के समय में ही भारत के अन्य क्षेत्रों में समाज में बदलाव का दृश्य देखने को मिलने लगा था किन्तु ब्रजभाषा कविता में वह अभी–भी छिटपुट रूप में ही दिख रहा था। अतः पद्माकर के यहां नये बदलाव उस तरह से नहीं लक्षित होते जिस तरह से दूसरे काव्यक्षेत्रों में मिलने लगे थे। ब्रजभाषा अब अपनी विशिष्ट ऐतिहासिक भूमिका पूरी कर चुकी थी। नए बदलावों की अभिव्यक्ति के लिए अब नई भाषा का प्रयोग होने लगा था जो हमें उस समय की हिन्दी खड़ी बोली के विकास रूप में देखने को मिलता है।

# सन्दर्भ सूची


[1]आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. सं. 184
[2]बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ. सं. 239
[3]संपा. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पंद्माकर पंचामृत, प्रकाशन काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृ. सं. 161
[4]सुषमा शर्मा, पद्माकर की कविताओं का पूनर्मूल्यांकन, अनुपम प्रकाशन, जयपुर, पृ. सं. 25
[5]सम्पा. राधाकृष्ण इास, सुजानचरित, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृ. सं. 191
[6]संपा. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पंद्माकर पंचामृत, प्रकाशन काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृ. सं. 4
[7]संपा. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पंद्माकर पंचामृत, प्रकाशन काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृ. सं. 5
[8]संपा. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पंद्माकर पंचामृत, प्रकाशन काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृ. सं. 5
[9]वही, पृ. सं. 6
[10]संपा. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पंद्माकर पंचामृत, प्रकाशन काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृ. सं. 5
[11]संपा. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पंद्माकर पंचामृत, प्रकाशन काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृ. सं. 14
[12]वही, पृ. सं. 16
[13]संपा. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पंद्माकर पंचामृत, प्रकाशन काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृ. सं. 21
[14]वही, पृ. सं. 35
[15]वही,
[16]गोरेलाल तिवारी, बुंदेलखंड का संक्षिप्त इतिहास, पृ. सं. 274
[17]वही, पृ, सं. 272
[18]आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. सं. 228
[19]वही, पृ. सं. 229
[20]संपा. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पंद्माकर पंचामृत, प्रकाशन काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृ. सं. 15
[21]सुषमा शर्मा, पद्माकर की कविताओं का पूनर्मूल्यांकन, अनुपम प्रकाशन, जयपुर, पृ. सं. 121
[22]वही, पृ, सं, 121
[23]डॉ. सुधीन्द्र कुमार, रीतिकाव्य की इतिहास दृष्टि, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. सं. 282
[24]वही, पृ. सं. 283

# उपसंहार

रीतिकालीन चरितकाव्यों की परंपरा के अध्ययन से जो सामान्य निष्कर्ष निकलते हैं उसकी मुख्य प्रवृत्तियां हैं : ऐतिहासिक युद्धों का वर्णन, समाज के एक खास वर्ग की राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं का प्रकटीकरण, मुगल साम्राज्य के विस्तार एवं विघटन के संकेत, औरंगजेब की बदली हुई रणनीतियां, उत्तराधिकार युद्ध, अमीर वर्ग का उभार और क्षेत्रीय शक्तियों का राजनीतिक, भौगोलिक विस्तार। ये सभी प्रवृत्तियां चरितकाव्यों में राजा के प्रशस्ति वर्णन के साथ ही उभर कर सामने आयी हैं। राजा का चरित्र चित्रण करते समय कवि ने प्रकारांतर से इन प्रवृत्तियों से जुड़ी घटनाओं पर प्रकाश डाला है जो उस समय के राजनैतिक इतिहास से जुड़ी हुई थी। चरितकाव्यों के रचयिता क्षेत्रीय राजाओं के राजदरबारी कवि थे अतः क्षेत्रीय राजदरबारों की प्रवृत्तियों पर भी अच्छा विवरण हमें उपलब्ध हो जाता है। मध्यकालीन क्षेत्रीय राजदरबारों के सन्दर्भ में यह जान लेना आवश्यक है कि उनमें किसी तरह की राष्ट्रीयता का निर्माण उस समय सम्भव नहीं था क्योंकि उनकी बुनावट उस आज के राष्ट्रीयता के अनुरूप नहीं थी। केवल राजनीतिक स्वार्थवश ही वे अपने क्षेत्र में विद्रोह करते थे और आम जनता का भरोसा हासिल करने के लिए हिन्दू धर्म की ऱक्षा का नारा देते थे।मराठों, बुन्देलों और जाटों के परवर्ती कार्य कलापों से यह साफ जाहिर हो जाता है कि वे मुगल सत्ता को उखाड़ कर एक नये केन्द्रीय राज्य या राष्ट्र की स्थापना के लिए कटिबद्ध नहीं थे।

इन चरितकाव्यों के राजदरबारों में रचे जाने के कारण इनका वास्तविक स्वरूप राजदरबारी ही रहा और राजदरबार की रूचि के अनुसार ही इसका विकास हुआ। इतिहास का जो पक्ष इसमें वर्णित हुआ है वह समाज के उच्च वर्ग से सम्बन्ध रखता था। इनके अध्ययन से यह साफ जाहिर होता है कि मुगलकाल में समाज के उच्च वर्ग को उस समय विशेष महत्व दिया जाता था और उसी वर्ग की सामाजिक हैसियत अन्य सभी वर्गों से बढ़कर थी। यह वर्ग अपने नीचे के वर्ग को अपने क्रिया–कलापों से काफी प्रभावित करता था और स्वयं को उनसे श्रेष्ठ मानता था। यह प्रवृत्ति राजनीतिक क्षेत्र में भी देखने को मिलती है। मुगल

काल में मुगल राजदरबार सबसे प्रभावशाली था और उसके राजदरबार की नकल भारत के अन्य क्षेत्रीय राजदरबार भी करते थे। मुगलों की तड़क–भड़क के अनुसरण की प्रवृत्ति क्षेत्रीय राजाओं के यहां भी देखने को मिलती है। मुगल राजदरबार के सम्राट की तरह पादशाही का पद धारण करने की प्रवृत्ति शिवाजी में भी मिलती है और छत्रसाल में भी। उनके द्वारा राज्याभिषेक कराकर पादशाही को धारण करना इसी प्रवृत्ति का उदाहरण है।

केशव के समय तक मुगल साम्राज्य अकबर के नेतृत्व में एक विशाल साम्राज्य की शक्ल ले रहा था। केशव ने अकबर की विस्तारवादी नीति के बावजूद धार्मिक दृष्टि से उदार राज्य की स्थापना और उसकी मृत्यु के बाद जहांगीर द्वारा उसी की नीतियों को आगे बढ़ाते हुए मुगल साम्राज्य का जो चित्र खींचा है वह वास्तविक है। ***वीरसिंहदेवचरित*** में जिस अकबर को उन्होंने अपने राजा के विरोधी के रूप में चित्रित किया वहीं ***जहांगीर–जस–चन्द्रिका*** में उसी को वह बड़े सम्मान के साथ याद करते हैं। अर्थात् अकबर का विरोध केवल राजा के प्रति निष्ठा के कारण था अन्यथा राजनीतिक गुरू के रूप में केशव अवश्य इस बात समझते होंगे कि अकबर वास्तव में अपने समय का उदार और विद्वान शासक था। अगर अकबर के सन्दर्भ में उन्हें यह अन्दाजा नहीं रहा होता तो इन्द्रजीत सिंह की नर्तकी राय प्रवीन के कहने पर वह उसका संदेश लेकर कभी अकबर के दरबार में कभी नहीं जाते। केशव द्वारा राय प्रवीन के संदेश को सुनकर अकबर ने राय प्रवीन को अपने दरबार में बुलाने के अपने आदेश को रद्द ही नहीं कर दिया अपितु इन्द्रजीत सिंह पर लगाया हुआ कर भी माफ कर दिया।

केशव काव्य में जहांगीर का चरित्र साम्राज्य पाने के लिए उतावले एक शहजादे के रूप में मिलता है जो अपने ही पिता के खिलाफ विद्रोही बना हुआ है। केशव की पूरी सहानुभूति जहांगीर के प्रति है जो उनके नायक वीरसिंह के जहांगीर के प्रति वफादारी के कारण है। वह जहांगीर के विद्रोह को कहीं भी गलत नहीं ठहराते और ना ही अबुल फजल की नृशंस हत्या पर उसकी भर्त्सना करते हैं। इसके अलावा अपने नायक के लिए भी वह पूरी तरह से निष्ठावान हैं। वीरसिंह का नायकत्व अपने युग के महात्वाकांक्षी राजा के रूप में है जो अपने राजनीतिक हितों के लिए के लिए हर तरह के दांव–पेंच लगाने में माहिर है। केवल वीरसिंह ही नहीं उस युग के हर नायक की यह विशेषता रही है। उनके लिए उनके स्वार्थ

से जुड़ा हित ही सर्वोपरि है और वे अपने अपने उद्देश्यों की पूर्ति में केवल राजनीतिक नैतिकता का ही पालन करते हैं।

भूषण और गोरेलाल औरंगजेबकालीन रचनाकार है। वीर काव्य में भूषण की कविता का बहुत महत्व है किन्तु उसमें आये ऐतिहासिक साक्ष्य भी काफी महत्वपूर्ण हैं। शाहजहां के पश्चात मुगल ताज के लिए उसके पुत्रों में उत्तराधिकार युद्ध शुरू हो गया। इतिहास में इस उत्तराधिकार युद्ध पर इतिहासकारों में बहुत अधिक बहस हुई है क्योंकि इसे मुगल नीतियों में बदलाव का समय माना गया। औरंगजेब ने उत्तराधिकार युद्ध में कट्टर मुसलमान अमीरों का सहयोग पाने के लिए धार्मिक आवरण का सहारा लिया और युद्ध में विजय प्राप्त की। उसके बाद उसके पूरे काल में धार्मिकता राजनीति का एक महत्वपूर्ण अंग हो गयी और इसी कट्टरता के बीच पहली बार हिन्दू राज्य का स्वप्न लेकर मराठा नेता शिवाजी ने दक्षिण में अपना वर्चस्व स्थापित किया। यह औरंगजेब के समय का सबसे महत्वपूर्ण घटनाक्रम रहा। शिवाजी के विद्रोह को दबाने की कोशिशें कमतर साबित हुई और कालांतर में मराठा पूरे भारत में एक प्रमुख राजनीतिक सैनिक संगठन के रूप में उभरे। औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता की नीति भूषण जैसे कवि को पसंद नहीं थी और उन्होंने औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता पर जमकर प्रहार किया है और शिवाजी को हिन्दू धर्म के रक्षक के रूप में चित्रित किया है। ***सिवाजी न होतो तौ सुन्नत होती सबकी*** जैसे वाक्यों में इसे आसानी से लक्षित किया जा सकता है।

दरअसल भूषण भी मराठाओं की उन आकांक्षाओं का वर्णन कर रहे थे जिसका प्रतिफलन शिवाजी के छत्रपति का पद धारण करने में हुआ था। मराठा शिवाजी के नेतृत्व में अपने प्रदेशों में नए राज्य की स्थापना कर रहे थे जिसमें उस प्रदेश की जनता का भी सहयोग उन्हें प्राप्त हुआ। राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए धर्म का उपयोग अब हिन्दू राजा भी करने लगे थे जिसका उल्लेख न केवल भूषण में मिलता है अपितु लालकवि के यहां भी इसके साक्ष्य उपलब्ध हैं। भूषण के यहां औरंगजेब की धार्मिक नीतियों पर खुलकर प्रहार किया गया है और वह शिवाजी के नायकत्व को औरंगजेब के समक्ष इसी आधार पर अपनी कविता में उभारते हैं और उसे हिन्दू धर्म का रक्षक घोषित करते हैं। भूषण की ही भांति लालकवि भी महाराजा छत्रसाल के विद्रोही रूप का वर्णन अधिक सक्रियता से करते हैं। निश्चित रूप से क्षेत्रीय राजाओं के दरबारी कवियों की पूरी सहानुभूति अपने राजा के प्रति

ही होती थी। अतः वे उन राजाओं का वर्णन परंपरानुसार ही करते थे। लालकवि शिवाजी द्वारा छत्रसाल को दिये आशीर्वाद के साथ ही अपने ग्रंथ की शुरूआत करते हैं और जब–तक छत्रसाल का मुगल साम्राज्य के साथ विरोध रहा तब–तक वह छत्रसाल को नायक मानकर उसकी प्रशस्ति रचते रहे किन्तु जैसे ही छत्रसाल का यह रूप बदलने लगा ***छत्रप्रकाश*** की समाप्ति हो जाती है।

सभी रीतिकालीन चरितकाव्यों में ***छत्रप्रकाश*** कविता में इतिहास प्रस्तुति का अच्छा उदाहरण है। कवि अपनी कल्पनाशीलता में भी कहीं भटकता नहीं और ऐतिहासिकता का पूरा ख्याल रखता है। यही कारण है कि बुन्देलखंड का इतिहास जानने के लिए इस ग्रंथ का उपयोग इतिहासकारों ने भी किया है। भूषण की कविता में कविताई अधिक है तो गोरेलाल में कविता और इतिहास दोनों का सम्मिलित समन्वय है। जहां भूषण में सन्, तिथि या घटनाओं की क्रमबद्धता नहीं पायी जाती वहां गोरेलाल में ये कमियां नहीं मिलती और ऐतिहासिक दृष्टिकोण भी भूषण की अपेक्षा उनमें अधिक संतुलित और व्यावहारिक है। सम्भवतः इसका एक कारण प्रबंधकाव्य का शैलीगत विभेद भी है। जहां लालकवि ने चरितकाव्य की रचना के लिए चौपाई–दोहा शैली का प्रयोग किया है वहीं भूषण सवैया, छप्पय और कवित्त जैसे छंदों का प्रयोग करते हैं। ये छंद वीर रस के छंद माने गये हैं जिसमें उसकी रसात्मकता का उद्रेक अधिक सफलतापूर्वक होता है।स्फुट छंदों में क्रमबद्धता भी बाधित होती है, इसी लिए चरितकाव्यों के अधिकांश कवियों ने दोहा चौपाई शैली का ही प्रयोग किया है। हालांकि इसके अपवाद भी हैं।

मुगल काल के औरंगजेबकालीन राजनीतिक गतिविधियों में मराठा और बुन्देल क्षेत्रों में नए राज्य की स्थापना खासकर मराठाओं के सन्दर्भ में कुछ इतिहासकारों द्वारा नवीन हिन्दू राज्य के उदय के रूप में उसकी व्याख्या की गयी है तथा इसे राष्ट्रवादी इतिहासकारों द्वारामराठों की राष्ट्र की संकल्पना, हिंदू नवजागरण या स्वतंत्रता संग्राम भी कहा गया। नवीनराज्य की स्थापना तक तो यह सच है किन्तु मध्यकालीन भारत के सन्दर्भ में यह राष्ट्रीयता उस अर्थ में नहीं थी जिस अर्थ में हम उसे अंग्रेजों के काल में पाते हैं। इन क्षेत्रीय अस्मिताओं का स्वरूप एक क्षेत्र तक ही सीमित था। भारत में राष्ट्रीयता का उदय 19वीं सदी की कुछ खास परिस्थितियों में विभिन्न कारणों से हुआ था।उसे नवजागरण कहना भी अब सही नहीं माना जाता और परवर्ती इतिहासकारों ने इन मान्यताओं का खंडन

पुष्ट साक्ष्यों के आधार पर कर दिया है। हिन्दू रक्षक होने की मान्यताओं को इस रूप में बल मिला कि शिवाजी ने गायों की रक्षा और ब्राह्मणों की रक्षा का प्रण लिया था। भूषण ने भी शिवाजी के हिंदू रक्षक होने का विवरण दिया है जो निश्चित रूप से शिवाजी के अपने प्रदेश में उनकी लोकप्रियताऔरंगजेब के हिंदू विरोधी क्रियाकलापों के प्रति थी। शिवाजी को मिली अभूतपूर्व लोकप्रियता ने उनको आसानी से हिन्दू रक्षक नेता के रूप में उनको प्रतिष्ठा दिला दी थी तभी तो उत्तर भारत के भूषण अपने आश्रयदाता की खोज में महाराष्ट्र तक गये थे। निश्चित रूप से यह हिन्दू रक्षक की उपाधि शिवाजी की राजनीतिक प्रतिष्ठा को बढ़ाने में काफी कारगर सिद्ध हुयी। परन्तु यह सभी कवायद अपने राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ही की गयी थी जिसके कई साक्ष्य प्रमाणस्वरूप दिये जा सकते हैं। उदाहरण के लिए सूरत की लूट को देखा जा सकता है जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों समान रूप से लूटे गये थे। भूषण ने कहीं भी इस घटना का उल्लेख इस रूप में नहीं किया है कि हिन्दुओं को इस लूट से बख्श दिया गया हो। शिवाजी के पश्चात मराठों के परवर्ती नेतृत्व से भी इस तरह की धारणाओं को कोई बल नहीं मिलता।

इसी तरह बुंदेल नरेश छत्रसाल को भी देखा जा सकता है। छत्रसाल भी मुगलों से मोहभंग के बाद अपन उद्यम से एक स्वतंत्र राज्य की नींव डालते हैं और स्वयं को हिन्दू धर्म के रक्षक के रूप में प्रस्तुत करते हैं किन्तु अपने राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अपने विरोधी मुगलों से हाथ मिलाने से नहीं हिचकते और औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात उसके पुत्रों के बीच हुए उत्तराधिकार युद्ध में शामिल होते हैं तत्पश्चात उन्हें बहादुरशाह से मनसबदारी भी प्राप्त होती है और वह मुगलों की तरफ से महत्वपूर्ण युद्ध अभियानों में भेजे जाते हैं। इन तथ्यों से यह जाहिर होता है कि हिन्दू धर्मरक्षक की ये उपाधियां हिन्दू राजाओं में स्वयं को स्वीकृति दिलाने के लिए ली जाती थी। राजदरबार के कवि अपने आश्रयदाता को इसी रूप में वर्णित करते थे और उन्हें मान्यता दिलाने की कोशिश करते थे। सम्भवतः कवि इस कार्य को अधिक स्थायी महत्व प्रदान करने में सक्षम थे अतः इन राजदरबारों में इनका सम्मान किया जाता था और स्वयं राजा भी इन्हें राजकवि या सलाहकार के रूप में इन्हें अपने पास रखा करते थे। स्वयं शिवाजी एवं छत्रसाल द्वारा भूषण को सम्मानित किये जाने का साक्ष्य हमारे पास मौजूद हैं। केशवदास और गोरेलाल

जैसे कवि चतुर राजनीतिज्ञ भी थे अतः राजदरबार में उन्हें राजगुरू का पद भी मिला हुआ था।

मुगल साम्राज्य में उत्तराधिकार या साम्राज्य का ताज हासिल करने के लिए बाबर के बाद से ही खूनी संघर्ष होने लगा था। हालांकि बाबर ने इसे रोकने के लिए कुछ प्रयास अपनी तरफ से अवश्य किया था किन्तु वह सफल नहीं हो पाया। हुमायूं लगातार अपने भाइयों से साम्राज्य से संघर्षरत रहा। अकबर के लम्बे शासनकाल में स्वयं उसके पुत्र ने साम्राज्य के लिए विद्रोह किया था और एक लम्बे समय तक अपने पिता से उसका गतिरोध बना रहा। केशव ने पिता–पुत्र के इस द्वन्द्व को विस्तार से अपने प्रबंधकाव्य में उठाया है। केशव के पश्चात् औरंगजेब के अपने भाइयों से हुए संघर्ष को भूषण और गोरेलाल ने अपने–अपने काव्य में जगह दी है और युद्ध में उसकी कूटनीतिक चतुराई के कारण ही उसे 'नवरंगजेब' या 'नवरंगशाह' जैसे शाह जैसे शब्द उसके लिए इस्तेमाल किये हैं जो निश्चित ही उसके चरित्र की विशेषताओं के प्रकटीकरण के लिए ही कवियों ने इन व्यंग्यार्थक शब्दों का प्रयोग किया है। उत्तराधिकार का यह युद्ध आगे भी औरंगजेब के पुत्रों में भी हुआ और उसके भी पुत्रों में यह चालू रहा। साम्राज्य में कम अंतराल में हुए इन युद्धों ने दरबार के अमीरों में गुटबंदी का एक नया दौर शुरू किया जिसने अंततः मुगल बादशाह को कमजोर करने और अमीरों को शक्तिशाली बनाने का काम किया। इन उत्तराधिकार युद्धों में शहजादों को अमीरों और उनकी सेनाओं की आवश्यकता पड़ती थी। अतः वे उन्हें अपने पक्ष में करने का हरसंभव प्रयास करते थे। औरंगजेब तक तो अमीरों पर लगाम लगा रहा लेकिन उसके अयोग्य उत्तराधिकारियों ने अमीरों पर अपना प्रभाव बना पाने में असफल रहे और बाद में उनके हाथ की कठपुतली बन गये।

श्रीधर और सूदन की रचनाओं मे हम उभरते हुए अमीर वर्ग और शक्तिशाली वजीर की नयी भूमिका को देख सकते हैं। श्रीधर तो अपने जंगनामा के शुरूआत में ही कहते हैं कि वह जंगनामें में अमीरों की करतूतों का वर्णन कर रहे हैं। फर्रूखसियर के विजयी होने में सैयद बंधुओं की सैन्य सफलता और मीर जुमला द्वारा जहांदारशाह के अमीरों को युद्ध में तटस्थ रहने के लिए राजी कर लेने की रणनीति ही काम आयी थी।फर्रूखसियर के सम्राट बनने के पश्चात सैयद बंधुओं ने विजारत के पद को काफी शक्तिशाली बना दिया और वही साम्राज्य के वास्तविक शासक बन बैठे। यहां तक फर्रूखसियर द्वारा उनके विरूद्ध

किये गये षड्यंत्रों की वजह से सैयद बंधुओं द्वारा उसकी हत्या कर दी गयी। यह मुगल साम्राज्य के लिए एक नवीन घटना थी, बादशाह की हत्या ने यह साबित कर दिया कि मुगल शासक अब अमीरों के हाथ की कठपुतली बन कर रहेंगे।

सैयद बंधुओं ने वजीर के पद को पुनः सृजित कर उसे काफी शक्तिशाली बना दिया था। हालांकि उनके पतन ने यह बात साबित कर दिया था कि बादशाहत का प्रतीकात्मक महत्व अभी भी साम्राज्य के लिए जरूरी था अतः सभी अमीर स्वयं बादशाह बनने की अपेक्षा वजीर बनकर शासन करने के लिए गुटबाजी करने लगे। सूदन के सुजानचरित में यह और गहनता से उभर कर सामने आया है। वजीर सफदरजंग को दरबार में अमीरों और बादशाह दोनों के षड्यंत्रों का सामना करना पड़ा। उसके लिए प्रशासन को संभालकर रखने की उसकी सारी कवायद पर पानी फिर गया और सम्राट ने अन्य विरोधी अमीरों के उकसाने पर उसे वजीर पद से हटा दिया। हालांकि सूदन ने इन घटनाओं का अपने आश्रयदाता सूरजमल के सन्दर्भ में ही वर्णन किया है फिर भी सम्राट और वजीर के सम्बन्धों की जानकारी हमें उक्त ग्रंथ से मिल जाती है। साथ ही जाटों की दिल्ली लूट से भी मुगल साम्राज्य की कमजोरियों पर भी प्रकाश पड़ता है। सूदन के माध्यम से हम उत्तर भारत की राजनीति में उभरते हुए एक नये जाट राज्य को देखते हैं जो धीरे–धीरे अपनी शक्ति को बढ़ाकर मुगलों से मनसबदारी प्राप्त कर लेता है। राजपूतों के विरोध के बाद भी जाट राज्य का शक्तिशाली होना जाटों की रणनीतिक सफलता का अच्छा उदाहरण है। सूरजमल ने जाटों को कुशल नेतृत्व प्रदान कर उसे तत्कालीन समय का महत्वपूर्ण राजनीतिक केन्द्र बना दिया। सूदन का काव्य सूरजमल की ऐतिहासिक उपलब्धियों की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है।

भारतीय इतिहास में 18वीं सदी को राजनीतिक दृष्टि से भारी उथल–पुथल का समय माना जाता है। किसी–किसी इतिहासकार ने तो इसे महाअराजकता का युग करार दिया। मुगलिया केन्द्रीय सत्ता के कमजोर होने के साथ क्षेत्रीय राजाओं का उभार एक स्वाभाविक सी घटना है। ये क्षेत्रीय शासक मुगल दरबार से जुड़ होने के बावजूद अपने–अपने प्रदेशों में अधिक स्वायत्तता का अनुसरण करने लगे थे। मराठा, राजपूत, बुन्देल, जाट, अवध तथा दक्षिण में निजाम एक स्वतंत्र रियासत के रूप में सामने आ चुके थे। इनके साथ ही भारतीय परिदृश्य पर अंग्रेज जैसी विदेशी शक्ति भी भारत में प्रवेश कर चुकी थी। इनमें से

किसी भी भारतीय रियासत ने मुगलों को हटाकर अपना राज्य स्थापित करने की कोशिश नहीं की सम्भवतः इसलिए भी भारत में बाहरी लूटेरों और अंग्रेजों को यहां आकर पैर पसारने में अपेक्षाकृत अधिक आसानी हुई। हालांकि हिन्दी के कवियों में इन ऐतिहासिक घटनाओं पर अधिक टिप्पणियां देखने को नहीं मिलती किन्तु छिटपुट रूप से पद्माकर और गोकुल प्रसाद बृज कवि में देख सकते हैं लेकिन जहां पद्माकर में अंग्रेजों के प्रति विरोध भाव मिलता है वहीं बृज कवि में अंग्रेजों के प्रति सहानुभूति का भाव दिखता है। तत्कालीन कवियों में यह विभिन्नता अपने–अपने आश्रयदाता की प्रवृत्ति के अनुसार थी। पद्माकर की कविता में अलग–अलग क्षेत्रीय राजदरबारों में रहने व उनकी प्रशंसा में छंदों की विविधताओं को देखते हुए यह अंदाजा लगाना सहज है कि उस समय मुगल दरबार की स्थिति काफी कमजोर थी और क्षेत्रीय राजा स्वार्थवश आपस में ही युद्धरत थे। किसी भी भारतीय शासक में अंग्रेजों के खिलाफ एकजुट होकर उनका विरोध करने की कोई इच्छाशक्ति नहीं दिखायी देती। किन्तु ऐसा भी नहीं था कि अपने स्तर पर अपने हितों का बचाव करने के लिए भारतीय राजा सजग नहीं थे। अंग्रेजों के खिलाफ उस समय की लगभग सभी बड़ी भारतीय शक्तियों ने प्रतिरोध किया था और अन्ततः एक संगठित प्रयास हमें 1857 ई0 की क्रांति में देखने को मिलता है।

1857 ई0 की क्रांति के पश्चात न सिर्फ भारत में मुगल सत्ता का अंत हुआ अपितु मध्यकाल की भी विदाईहुई। इसके साथ ही साहित्य में रीतिकाल नामक युग का भी समापन हुआ। ये दोनों घटनाएं एक साथ घटित हुई। हालांकि कविता के क्षेत्र में रीतिकालीन काव्य संस्कार भारतेन्दू युग तक अपना स्थान बनाये रखा लेकिन हिन्दी में गद्य के उदय ने साहित्य के क्षेत्र में क्रांति ला दी। नए–नए विषयों पर लिखना आसान हो गया और इस तरह से कविता में इतिहास कहने की परंपरा इसके साथ ही कमजोर पड़ गयी।

इस शोध प्रबंध का उद्देश्य यही था कि साहित्येतिहास में हाशिये पर डाल दिये गये रीतिकाल के मूल्यांकन को नए दृष्टिकोण से देखा और परखा जाए। रीतिकालीन चरितकाव्य उस विशाल साहित्य का एक महत्वपूर्ण अंश है जिसे व्याख्यायित करने के प्रयास बहुत कम हुए हैं। मुगल काल का यह साहित्य अपने समय के राजनीतिक क्रियाकलापों को काफी गहराई से अभिव्यक्त करने में सक्षम है। अतः यह एक महत्वपूर्ण

ऐतिहासिक साक्ष्य है। राजाओं की प्रशस्तियां होते हुए भी मध्यकालीन युद्धकला, राजदरबारी जीवन और राजनीतिक क्रियाकलापों के दर्शन अपने पूरे आभिजात्य संस्कृति के साथ मौजूद हैं। कवियों ने भले ही पेशेवर इतिहासकार की तरह तिथि और घटनाक्रम की क्रमबद्धता का ध्यान न रखा हो लेकिन अतीत को कलात्मक रूप में सुरक्षित रखकर एक महत् कार्य जरूर किया है। जब साहित्य में गद्य जैसी किसी विधा का चलन नहीं था कि ये कवि या रचनाकार उस इतिहास को अभिव्यक्त कर सकें तब चरितकाव्यों के माध्यम से उनका यह प्रयास अवश्य सराहनीय है।

राजदरबार की संस्कृति में रचे जाने के कारण इन चरितकाव्यों का स्वरूप भी उसी तरह से निर्मित हुआ है। इसी वजह से इसमें आम जनता का वर्णन नहीं मिलता और आम जन–जीवन के चित्र यहां मुश्किल से मिलेंगे। किन्तु इसके लिए ये कवि ही उत्तरदायी नहीं थे अपितु वे शासक भी उत्तरदायी थे जो इन कवियों की प्रेरणा के स्त्रोत थे। राजदरबार में बैठकर आम जनता के गीत ये कवि गा भी नहीं सकते थे जहां केवल राजनीति के दांव–पेंच आजमाये जाते हों, दिन–रात युद्धों की रणनीतियां बनायी जाती हों और शत्रु को अपने रास्ते से हटाने के लिए सभी साम–दाम–दंड–भेद की नीतियों का पालन किया जाता हो। किन्तु फिर भी ये कवि अपने कवि धर्म का पालन करते थे और अपने नायक को लोकरक्षक के ही रूप में प्रस्तुत करते थे। चाहे वह भूषण के शिवाजी हों या गोरेलाल के छत्रसाल या फिर सूदन के सूरजमल। अपने प्रदेशों में ये आज भी लोकनायक के रूप में ही देखे जाते हैं। उनकी लोकनायक की छवि को देखकर ही इन कवियों ने उनकी प्रशंसा में गीत गाये हैं। इसके अलावा इन नायकों ने भी अपने लोकभाषा के कवियों के प्रति सम्मान भाव प्रदर्शित किया था और उन्हें अपने दरबार में रखकर सम्मानित किया था अतः यह भी तथ्य उन नायकों के प्रति कवियों की निष्ठा का एक कारण बना।

रीतिकाल के कवियों पर बहुधा यह आरोप लगाया जाता है कि उन्होंने साहित्य की मूल भावना के अनुसार अपनी प्रतिभा का उपयोग नहीं किया और समय की धारा में प्रवाहित होकर लिखाजिससे एक औसत कोटि का साहित्य लिखा गया और महान साहित्य नहीं रचा जा सका। कहा यह गया कि ये कवि साहित्य की मानवीय संवेदना के उस पक्ष को नहीं छू सके जो सामान्य मनुष्य की वकालत करता है और उसके पक्ष में अपनी लेखनी

को धार देता है। कबीर, जायसी, सूर और तुलसी को सामने रखकर उनकी तुलना में इन कवियों को कमतर करके देखने की आलोचना की शुरूआत हुई।किन्तु क्या यही उनकी विशिष्टता को कम करके उनका आंकलन करने की छूट दे देता है। ये कवि अपने समय के मुखर वक्ता के रूप में आज हमारे सामने उपस्थित हैं जो अपने समय की धारा में बहते हुए ही अपने समय की मूल संवेदना से हमें परिचित कराते चलते हैं। युद्ध और प्रेम हमेशा से काव्य की केन्द्रीय संवेदना रहे हैं और यह रीतिकाल में भी मुख्य संवेदना के रूप में हमारे सामने आये हैं। रीतिकालीन चरितकाव्यों में युद्ध ही मुख्य के विषय के रूप में चित्रित हुआ है। युद्ध पूरे मध्यकाल केअभिजात्य समाज में अपने वर्चस्व को बनाये रखने के लिए एक अवश्यंभावी अनिवार्यता के रूप में हमें देखने को मिलताहै। अतः इसका मूल्यांकन करते समय हमें इन संवेदनाओं का विवेचन भी उस युग की प्रवृत्ति के अनुसार ही करना चाहिए।

रीतिकाल की श्रृंगारिकता पर भी कुछ कहना आवश्यक प्रतीत होता है। रीतिकाल का मूल्यांकन करते समय श्रृंगार की अतिशयता की चर्चा विशेष रूप से की जाती है पर अधिकांश में उनके नायिका भेदों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भेदों–उपभेदों पर आलोचकों का नकारात्मक रवैया ही देखने को मिलता है लेकिन ये नायिका भेद उस समय की स्त्री की भी एक छवि प्रस्तुत करते हैं। श्रृंगारिकता के घटाटोप से परेशान आलोचक उस स्त्री छवि को एक यांत्रिकता की दृष्टि से देखकर उसमें कुछ और पाने की कल्पना भी नहीं कर सकते। श्रृंगार का वर्णन करने में जिन नायिकाओं की छवियों की कवियों ने कल्पना की वे स्त्रियां उस युग की हकीकत भी हो सकती हैं इसपर कम लोगों का ध्यान गया है। रीतिकालीन नायिकाओं की सेक्सुआलिटी पर आधुनिक दृष्टिकोण से विचार करने का पहला प्रयास डॉ. सुधीश पचौरी ने अपनी पुस्तक ***रीतिकाल : सेक्सुआलिटी का समारोह*** नामक पुस्तक में किया है तथा इस बात की पुरजोर वकालत की है कि रीतिकालीन नायिकाओं को यांत्रिकता के आवरण से बाहर निकालकर उन्हें वास्तविक मानकर उनकी व्याख्या की जानी चाहिए। निश्चित रूप से इस तरह के दृष्टिकोण रीतिकाल के काव्य को समझने में सहायक सिद्ध होंगे और आलोचना के क्षेत्र में भी नये दृष्टिकोण के आने से साहित्येतिहास में इसका मूल्यांकन अधिक तटस्थता से हो सकेगा।

# ग्रंथानुक्रमणिका

## प्राथमिक ग्रंथ


| | | |
|---|---|---|
| केशव ग्रंथावली भाग 1,2 एवं 3 | संपादक : विश्वनाथ प्रसाद मिश्र | हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, उ0 प्र0, संस्करण : 1959 |
| भूषण ग्रंथावली | संपादक : विश्वनाथ प्रसाद मिश्र | वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण : 1994 |
| छत्रप्रकास | लालकवि<br>संपादक : डॉ. महेन्द्रप्रताप सिंह | श्रीपटल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण : 1973 |
| जंगनामा | श्रीधर<br>संपादक : डॉ. रघुवीर सिंह, श्री ओंकारदान चारण | नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण : 1989 |
| सुजानचरित | सूदन<br>संपादक : राधाकृष्णदास | नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण :सम्वत् 1990 |
| हिम्मतबहादुरविरूदावली (पद्माकर पंचामृत में संकलित) | पद्माकर<br>संपादक : विश्वनाथ प्रसाद मिश्र | नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण : 1935 |


## कोश


केशवकोश–भाग एक एवंदो, सम्वत् 2035, संपादक– डॉ0 विजयपाल सिंह, नागरी प्रचारिणी सभा

साहित्यिक ब्रजभाषा कोश–भाग एक, दो, तीन, 1985, सम्पादक– डॉ0 विद्यानिवास मिश्र, डॉ0 रमानाथ सहाय, डॉ0 रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

लघु हिन्दी शब्दसागर, संवत् 2050, संपादक–कमला प्रसाद त्रिपाठी, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी

# सहायकग्रंथ

## हिन्दी पुस्तकें


| | | |
|---|---|---|
| इलियट और डाउसन, 1903 | भारत का इतिहास | शिवलाल एण्ड कम्पनी,आगरा |
| कानूनगो, कालिका रंजन,1997 | जाटों का इतिहास (उत्तरी भारत के इतिहास में योगदान) अनु0 दिनेश चन्द्र चतुर्वेदी | नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली |
| कार, ई0 एच0, 1979 | ठतिहास क्या है? | मैकमिलन प्रकाशन, नई दिल्ली |
| कुमार, सुधीन्द्र, 2006 | रीतिकाव्य की इतिहासदृष्टि | वाणी प्रकाशन, दिल्ली |
| गुप्त, जगदीश, 1984 | केशवदास | साहित्य अकादमी, नई दिल्ली |
| गुप्त, नर्मदाप्रसाद, 1995 | बुंदेलखंड की लोक संस्कृति का इतिहास | इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, दिल्ली |
| चंद्र, बिपिन, 2006 | भारत का स्वतंत्रता संघर्ष | हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विवि, दिल्ली |
| चंद्र, सतीश, 2007 | मध्यकालीन भारत : राजनीति, समाज और संस्कृति (आठवीं सदी से सत्रहवीं सदी तक), अनु0 नरेश नदीम | ओरियंट ब्लैकस्वान प्रा0 लि0, नई दिल्ली |
| चंद्र, सतीश, 2003 | मध्यकालीन भारत में इतिहास लेखन, धर्म और राज्य का स्वरूप, अनु0 एन0 ए0 खान 'शाहिद' | ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, नई दिल्ली |
| चंद्र, सतीश, 1998 | उत्तर मुगलकालीन भारत | हिन्दी माध्यम कार्यान्यवन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली |
| चतुर्वेदी, रामस्वरूप, 2009 | हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास | लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद |

| | | |
|---|---|---|
| जैन, निर्मला, हरिमोहन शर्मा, 2007 | निबन्धों की दुनिया : विजयदेव नारायण साही | वाणी प्रकाशन, दिल्ली |
| जैन, मीनाक्षी, 2003 | मध्यकालीन भारत | एन0 सी0 ई0 आर0 टी0, नई दिल्ली |
| टाड, जेम्स, 1983 | एनल्स एंड एंटिक्विटीज आफ राजस्थान हिन्दी अनुवाद : श्री केशव कुमार ठाकुर | |
| डफ, जेम्स कनिंघम ग्राण्ट | मराठों का इतिहास : 1000 ई. से 1755 ई. अनु0 लक्ष्मीकान्त मालवीय | महामना प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद |
| तिवारी, गोरेलाल, संवत् 1090 | बुन्देलखंड का संक्षिप्त इतिहास | इंडियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद |
| तैलंग, भालचन्द्रराव, 1969 | पद्माकरश्री | पद्माकर अनुसंधान शाला, औरंगाबाद |
| तोमर, टीकम सिंह, 1954 | हिन्दी वीरकाव्य (1600–1800 ई0) | हिन्दी एकेडमी, इलाहाबाद |
| थापर, रोमिला, 1975 | भारत का इतिहास | श्राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली |
| थापर, रोमिला, 1999 | टादिकालीन भारत की व्याख्या अनु0 मंगलनाथ सिंह | ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, नई दिल्ली |
| देसाई, ए. आर. 1988 | भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि | मैकमिलन इंडिया, दिल्ली |
| द्विवेदी, हजारीप्रसाद, 2014 संस्करण | हिन्दीसाहित्य की भूमिका | राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली |
| द्विवेदी, हजारीप्रसाद, 1970 | मध्यकालीन धर्म साधना | साहित्य भवन प्रा0 लि0, इलाहाबाद |
| पालीवाल, कृष्णदत्त संपा0, 2014 | अज्ञेय रचनावली : खंड 10 | भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली |
| डॉ. नगेन्द्र, संपा0, 2006 संस्करण | हिन्दीसाहित्य का इतिहास | मयूर पेपरबैक्स, इलाहाबाद |
| पानसरे, गोविन्द, 1988 | शिवाजी कौन थे? | पीपुल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली |
| बाबूब्रजरत्नदास, 1990 | जहांगीरनामा (जहांगीर की आत्मकथा) | नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी |
| बोरा, राजमल, 1979 | हिन्दी वीरकाव्य (1600–1800 ई0) | नमिता प्रकाशन, औरंगाबाद |

| | | |
|---|---|---|
| बोरा, राजमल, 2014 | भूषण | साहित्य अकादमी, नईदिल्ली |
| मिश्रबन्धु, संवत् 1970 | मिश्रबन्धु विनोद भाग 1,2,3 एवं 4 | हिन्दी ग्रंथ प्रसारक मंडली, खंडवा व प्रयाग |
| मिश्र, पं0 श्यामबिहारी, पं0 शुकदेवबिहारी (सम्पादकद्वय), संवत् 2046 | भूषण ग्रंथावली | नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी |
| | शिवराज भूषण : भाषा टीका सहित 1982 | किताबघर प्रकाशन, दिल्ली |
| मिश्र, पं0 कृष्णबिहारी, संवत् 2032 | मतिराम ग्रंथावली | गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ |
| मिश्र, भगीरथ, संवत् 2029 | हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास (सम्पादित) | नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी |
| मिश्र, सुरेश | मध्य प्रदेश का इतिहास, खंड 2 (मध्यकाल और मराठा काल) | मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ, अकादमी, म.प्र. |
| मुखिया, हरबंस, 1998 | मध्यकालीन भारत : नए आयाम अनु0 नरेश नदीम | राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली |
| मेनारिया, मोतीलाल, 1958 | राजस्थान के हिन्दी कवियों द्वारा रचित ब्रजभाषा साहित्य का इतिहास | हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, मुम्बई |
| लालकिशोरी, | रीतिकाव्य शब्दकोश | स्मृति प्रकाशन इलाहाबाद |
| लुकाच, ग्यार्ग, 2014 | इतिहास और वर्ग चेतना अनु0 नरेश नदीम | प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली |
| वर्मा, लालबहादुर, 2010 | इतिहास : क्यूं–क्या–कैसे | हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विवि, नई दिल्ली |
| वर्मा, रामकुमार, | रीतिकालीन साहित्य का पुनर्मुल्यांकन | साहित्य भवन प्रा0 लि0, |
| वर्मा, हरिश्चंद्र (संपा0), 2011 | मध्यकालीन भारत : भाग–दो (1540–1761) | हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विवि, नई दिल्ली |
| श्यामलदास, | वीरविनोद | सरस्वती पुस्तकालय, |

| | | |
|---|---|---|
| | | उदयपुर |
| शर्मा, डॉ. सुषमा, 1988 | पद्माकर की रचनाओं का पुनर्मूल्यांकन | अनूप प्रकाशन, जयपुर |
| शुक्ल, दीनानाथ, 1991 | चरितकाव्य की परम्परा और रामचरितमानस | किताबमहल, इलाहाबाद |
| शुक्ल, रामचन्द्र, 2007 | हिन्दी साहित्य का इतिहास | प्रयाग पुस्तक सदन, इलाहाबाद |
| शुक्ल, डॉ. शिवबालक, 1990 | रीतियुगीन प्रबंधकाव्य | आराधना ब्रदर्स प्रकाशन, कानपुर |
| सिंह, गंगा, 1967 | भरतपुर राजवंश का इतिहास (1637–1738) | कोठी श्रीगंगाविहार, भरतपुर |
| सिंह, नटवर, 1985 | महाराजा सूरजमल : जीवन और इतिहास | राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली |
| सिंह, डॉ. सुरेन्द्र, 2017 | महाराजा सूरजमल | यूनिक टेडर्स, जयपुर |
| सिंह, विजयपाल, | केशव और उनका साहित्य | नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली |
| सिंह, विजयपाल (संपा0) | केशवदास | लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद |
| सिंह, महेन्द्रप्रताप, 1975 | ऐतिहासिक प्रमाणावली और छत्रसाल | नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली |
| सिंह, महेन्द्रप्रताप, 1977 | रीतिकालीन हिन्दी की ऐतिहासिक व्याख्या | हिन्दी बुक सेन्टर, श्रीपटल प्रकाशन, नई दिल्ली |
| सिन्हा, अतुलकुमार, 2003 | इतिहास : मूल्य और अर्थ | अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा0 लि0, नई दिल्ली |
| सिंह, बच्चन, 2008 | हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास | राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली |
| हबीब, इरफान (संपा), 2003 | मध्यकालीन भारत : अंक 8, 9<br>अनु0 नरेश नदीम | राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली |
| हाब्सबाम, एरिक, 2007 | इतिहासकार की चिंता | ग्रंथशिल्पी |

| | | |
|---|---|---|
| | | प्रकाशन, नई दिल्ली |
| श्रीधरन, ई0, 2011 | इतिहासलेख : एक पाठ्य पुस्तक (अनु0 मंजीत सिंह सलूजा) | ओरियंट ब्लैकस्वान प्रा0 लि0 |


## अंग्रेजी पुस्तकें


| | | |
|---|---|---|
| एलिसन बुश्च, 2012 | पोयट्री आफ किंग्स : द क्लासिकल हिन्दी लिटरेचर आफ मुगल इंडिया | आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली शाखा |
| कैप्टन डब्ल्यू. आर. पाग्सन,<br>प्रथम संस्करण : 1828<br>द्वितीय संस्करण : 1974 | ए.हिस्ट्री आफ द बुंदेलाज | बी. आर पब्लिशिंग कार्पोरेशन, दिल्ली |
| छंदा चटर्जी (संपा) 2014 | लिटरेचर ऐज हिस्ट्री : फ्राम अर्ली टू कान्टेम्परेरी टाइम्स | प्राइमस बुक्स, दिल्ली |
| बी. के. अहलुवालिया, शशि अहलुवालिया, 1984 | शिवाजी एंड इंडियन नेशनलिज्म | कल्चरल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली |
| जदुनाथ सरकार, संस्करण : 1973 | शिवाजी एंड हिज टाइम्स, फाल आफ द मुगल एम्पायर | ओरियंट लांगमैन लिमिटेड, दिल्ली |
| हरबंस मुखिया, 2004 | द मुगल्स आफ इण्डिया | ब्लैकवेल पब्लिशिंग लिमिटेड, आस्ट्रेलिया |

# पत्र–पत्रिकाएं

आलोचना, सम्पादक अरूण कमल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सहस्त्राब्दी अंक : 24, जनवरी–मार्च : 2007

आलोचना, सम्पादक अरूण कमल, राजकमल प्रकाशन,दिल्ली,सहस्त्राब्दी अंक : 23 अक्टूबर–दिसम्बर 2005

इतिहास, सम्पादक इशरत आलम, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, दिल्ली, जुलाई 2010

परमिता, अवधेश दीक्षित, वाराणसी, अंक : जुलाई–सितम्बर 2008, भारतीय मध्यकाल विशेषांक

सोशल साइंटिस्ट, प्रभात पटनायक, इंडियन स्कूल आफ सोशल सांइसेज, दिल्ली, वोल्यूम. 43, अंक : मई–जून, 2015